...vited for the following as per details given below:

...la...	Approx. quantity	Earnest Money	Date of opening of tender
	4	5	6
...teel skull, scrap)	10000 t	Rs. 1 Lakh	20-5-83 at 1-00 P.M.
...ron skull scrap)	25000 t	Rs. 2 Lakhs	20-5-83 at 1-00 P.M.
...teel skull scrap)	15000 t	Rs. 1.50 Lakhs	20-5-83 at 1-00 P.M.
...teel skull scrap)	3000 t	Rs. 50,000/-	20-5-83 at 1-00 P.M.

...ment of Rs. 50/- (non-refundable) plus Sales Tax per set from ...urgapur-713203 or from Branch Manager, Durgapur Steel ...Avenue, Calcutta-700013 or SAIL Branch Office Bombay/Mad-...s House, Kasturba Gandhi Marg, New Delhi.

...nd sealed cover superscribing the reference No. of the Tender ...with all other required papers/documents duly filled in and ...ersigned upto 1-00 P.M. on the date of the opening of tender ...ediately thereafter in the presence of such tenderers as may

...will be treated as invalid tenders.

...each lot and each tender should accompany requisite earnest

...will be treated as cancelled.

...rves the right to accept or reject any or of all the tenders or ...nderers without assigning any reason whatsoever.

Superintendent,
Marketing Department.

...id assets

...Limca in the house

...zers.

In a resolution ...sued ... Ministry of Labour on ... tea... Mr O. P. Saxena, regional ... commissioner, Chandigarh, ... ber convener, will go into th... tions for the State ... of Haryana, Jammu and K... Orissa, Himachal Pradesh, West Bengal, Madhya Prade... the Union Territory of Del... representatives of these St... members.

The other team with M... Das, regional labour commi... Bombay as member conver... look into the questions re... the States of Andhra Prade... Maharashtra with member... senting these States.

67/192

Ha...

Speech by Mr ...
A... ho...
at the Thirty-fou...
on ...

Rev...

The travails faced by ... during 1982, are now c... restrictions imposed by ... fected the offtake of ... the precipitous fall in off... due to funding constra... demand for both vehicle...

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

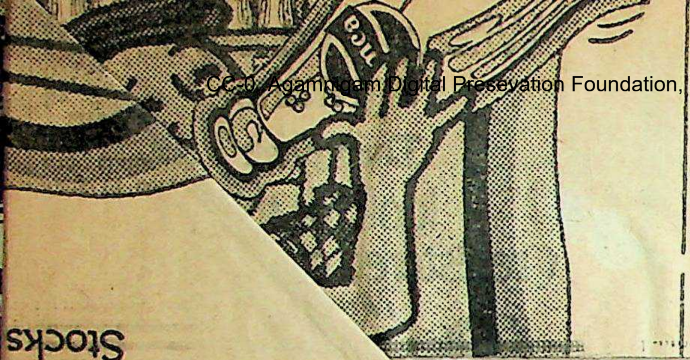

capacity ar
painful.
The acc
necessitate
Plant from
avoid a cor

Rs. 313 cr
in 1982; D

it is a m
adverse cc
marginal ir
touching a
favourable
improved
previous y
before/aft

Stocks

Liqu

MKTG|4|(52)|XIII|83
dated 20-4-83

...TG|4(52)|XII|83
...dated 20-4-83

...XI|83
...-83

Tender documents can be obtained o
the Chief Cashier, Durgapur Steel Pla
Plant, Branch Office at 6 Ganesh Cha
ras|RR Office, DSP, SAIL, Hindustan
The tender should be submitted in clo
Notice and the name of the material a
signed on each page of the office of th
mentioned above and will be opened
be present.
Tenders without earnest money as a
Separate tender should be submitted
money.
Tender papers containing more than o
Managing Director, Durgapur Steel Plan
allot the material to one or more than o

(736223)

...DIA LTD.
...L PLANT
...BENGAL

Department,

Separate tender form for each lot is to be submitted

Panels
migra

Hindustan T
NEW DELH
ernment yest
constitution

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

७
192

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

9/192

954.01

State Museum,
LUCKNOW.

The British Book Depot,
88, Hazratganj,
LUCKNOW.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक

(हिन्दी अनुवाद)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

एस० चन्द एण्ड कम्पनी
फव्वारा दिल्ली
माई हीरागेट जलंधर
जयहिन्द सिनेमा बिल्डिंग लखनऊ

मूल्य ७॥)

प्रकाशक : एस० चन्द एण्ड कम्पनी, फव्वारा दिल्ली ।
मुद्रक : क्रॉनिकल प्रेस, मोरीगेट, दिल्ली–६ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राक्कथन

अशोक के विषय में इतना अधिक कहा और लिखा गया है कि जो लोग इस पुस्तक को देखेंगे उनमें से कुछ शायद आश्चर्य से यह पूछेंगे कि इस भारतीय नरेश के बारे में अभी और कौन सी नई बातें कहने के लिए शेष हैं। लेकिन यह न भूलना चाहिए कि अशोक पत्थर पर जो अभिलेख छोड़ गया है, वे अपने-आप में एक साहित्य हैं और उनमें उसने जो कुछ कहा है वह सब ठीक-ठीक समझने में अभी विद्वानों को बहुत वर्ष लगेंगे। भारतीय शिलालेख-शास्त्र के किसी विद्यार्थी को यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि इन अभिलेखों में बहुत से ऐसे संदर्भ हैं जो स्पष्ट नहीं हैं और विद्वान् लोग प्रति-दिन उनके नये और अच्छे निर्वचन पेश कर रहे हैं। दूसरा काम यह है कि इन लेखों से प्राप्त होने वाली अनेक सूचनाओं को ऐसे ढंग से जोड़ा जाय जिससे इस धर्म-प्रचारक राजा का सजीव चित्र प्रस्तुत हो सके।

मरा ख्याल है कि जोड़ने का यह काम अभी तक पूर्ण नहीं हुआ और अभी कुछ और वर्ष जारी रहना चाहिए। भारतीय शिलालेख-शास्त्र का कोई हिस्सा इतना मनोरंजक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और इतना परिष्कारक नहीं है, जितना वह अंश जिसे अशोक के ये अभिलेख निरूपित करते हैं और क्योंकि मैंने उसके लेखों के न केवल निर्वचन के काम में, बल्कि क्रमेक्षण (Collation) और एकीकरण के काम में भी हिस्सा लिया है, इसलिए मैं समझता हूं कि मुझे यह पुस्तक लिखने के लिए, जो इस बौद्ध राजा के बारे में मेरे विचार प्रस्तुत करती है, कोई सफाई देने की आवश्यकता नहीं।

मेरा अशोक के लेखों का अध्ययन १८९८ में शुरू हुआ। उस समय मेरे सम्मु ख न केवल प्रिंसेप, विलसन, और बरनोफ के, बल्कि प्रोफेसर कर्न, प्रोफेसर सेनार्ट और प्रोफेसर बूलर के भी अनुवाद और टिप्पणियां थीं। मैंने इन सब पुस्तकों की सामग्री को अच्छी तरह पढ़ा। परन्तु मुझे श्री सेनार्ट की "दि इन्स्क्रिप्शन आफ पियदसी" के समान मनोरंजक और लाभदायक कोई पुस्तक नहीं लगी। यह पुस्तक 'इन्डियन एन्टीकरी' में अंग्रेजी रूप में प्रकाशित हुई थी। मुझे तुरन्त यह दिखाई पड़ा कि यह फ्रेंच विद्वान न केवल शिलालेख-शास्त्री या संस्कृत, पालि और प्राकृत का विद्वान है, बल्कि एक इतिहासकार भी है, जिसका लक्ष्य यह है कि शिलालेखीय और साहित्य अभिलेखों से प्राप्त होने वाली सूचनाओं की अनेक कड़ियों को मिलाकर एक सिलसिलेवार पूर्ण वस्तु बनाई जाय। इस प्रकार उनकी पुस्तक का चौथा अध्याय न केवल इतिहास के क्रम में अशोक की या उसके लेखों की स्थिति बताता है बल्कि उसके राज्य के सीमा-विस्तार, उसकी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रशासन प्रणाली, उसके स्वतन्त्र पड़ोसियों, ग्रीक जगत के साथ उसके सम्बन्ध, उसकी बौद्ध धर्म की दीक्षा, उसके धम्म के स्वरूप, इत्यादि, का भी उल्लेख करता है। सबसे पहले श्री सेनार्ट ने ही यह रास्ता दिखाया कि उसके अभिलेखों के व्यवस्थित अध्ययन से किस तरह अशोक के इतिहास की रचना की जा सकती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि मैंने अशोक के लेखों का, इस दृष्टि से कि वे भारत के इतिहास पर क्या प्रकाश डालते हैं, लगभग चौथाई शताब्दी अध्ययन किया है। मैंने वास्तव में कोई प्रगति की है या नहीं, और यदि की है तो कितनी, यह बात तो विद्वान और इतिहासज्ञ ही बता सकते हैं। परन्तु यह जानने के लिए कि मेरा प्रयत्न कहां तक सफल हुआ है, मैंने अपनी पुस्तक के पहले सात अध्यायों के पेज प्रूफ उपलब्ध होते ही फ्रेंच विद्वान को भेजे थे और उनसे यह प्रार्थना की थी कि वे इस पुस्तक के बारे में अपना विचार निःसंकोच होकर बताएं। परन्तु बहुत दिनों तक कोई उत्तर नहीं आया और जिस समय प्राक्कथन कम्पोज हो रहा था, ठीक उस समय वह चिर-प्रतीक्षित पत्र आया। इसमें शुरू में लिखा है "एक वृद्ध सहयोगी के कुछ-कुछ जर्जर स्वास्थ्य के कारण हुई देरी को क्षमा कीजिए। मैं पहले ही आपके भेजे हुए अशोक के पेजों के लिए आपको धन्यवाद देना चाहता था। मैंने वर्षों पहले इस धार्मिक राजा और उसके बहुमूल्य शिला-लेखों का जो अध्ययन किया था, आपने उसे स्मरण रखने की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कृपा की। मैं आप जैसे प्रबुद्ध निर्णायक के निर्णय से क्यों प्रभावित न होता ? आप समझ सकते हैं कि अपने यौवन काल की वे गवेषणाएं मुझे हमेशा प्रिय और नई लगती हैं। आपकी पुस्तक मुझे एक बार फिर उन्हीं गवेषणाओं में पहुंचा देती है। मैं इसके लिए बड़ा कृतज्ञ हूं। कृतज्ञ मैं इसलिए हूं क्योंकि इससे उस प्रतिभासम्पन्न और उत्साहमय कौशल का एक उज्ज्वल उदाहरण मेरे सामने आया है, जिससे आधुनिक भारत अपने अतीत की पुनः रचना का यत्न कर रहा है।"

श्री सेनार्ट ने अपने पत्र में मुझे स्पष्ट रूप से बता दिया है कि वे किस-किस बात में मुझसे मतभेद रखते हैं। एक को छोड़कर ये सब मतभेद गौण मतभेद हैं। मुख्य मतभेद उस उत्तरदायित्व के विषय में है, जो मैंने उसकी विदेश नीति के परिवर्तन के विषय में उस पर डाला है, अर्थात् उसके दयापूर्ण विचारों की वह कमजोरी जिसने उसके बाद देश पर होने वाले अनेक ग्रीक और तूरानी विदेशी आक्रमणों की सफलता को आसान बना दिया। "यह सर्वथा सम्भव है", आपने लिखा है, "कि बौद्ध शान्तिवाद के कारण अन्ततोगत्वा कुछ लोगों में कमजोरी आई—वे लोग इसके कारण अधिक नम्र तो नहीं हुए, सिर्फ कर्म करने में कम समर्थ हो गये[१] ....

---

१. यह कह देना उचित होगा कि यह विचार मेरे मन में भी आया था, पर मुझे इसे त्याग देना पड़ा क्योंकि अशोक और उसके बाद हुए ग्रीक आक्रमण के बीच बहुत थोड़ा व्यवधान था। अशोक की मृत्यु २३६ ई० पू० में हुई मानी जाती है और पहले बैक्ट्रियन ग्रीक आक्रान्ता यूथाई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मुझे तो उसमें सिर्फ एक आदर्शवाद की और गहरी धार्मिकता की, जिससे हम सुपरिचित हैं, भावना दिखाई देती है क्योंकि भारत का सारा सुदीर्घ अतीत इससे अनुप्राणित है, और शायद इससे भारत को अधिक आध्यात्मिक सम्मान प्राप्त हुआ है। इसकी तुलना में भारत को वैदेशिक सफलताओं की प्राप्ति, जिसके विषय में यह संदिग्ध है कि भारत की प्रतिभा ने इसे कभी इसके योग्य बनाया भी था या नहीं, बहुत गौण है।" इसलिए जब उन्होंने मेरी इस पुस्तक पर ऐसी स्पष्ट आलोचना करने की कृपा की है, तब यह मानना ही पड़ता है कि मेरी सारी पुस्तक के बारे में उन्होंने जो अपना निम्नलिखित विचार प्रकट किया है वह उनका सच्चा हार्दिक अभिमत है: "आपका प्रयोजन यह नहीं था कि शिलालेखीय जानकारी के अनुकूल अनुश्रुतियों की साधारण परीक्षा के द्वारा अशोक का एक आलोचनात्मक इतिहास लिख दिया जाय, बल्कि आप तो

डेमस की मृत्यु १९० ई० पू० के आस-पास हुई मानी जाती है। इस प्रकार मुश्किल से पचास वर्ष का अन्तर है, और इसमें भी एन्टीओकस महान का मौर्य साम्राज्य के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त पर सफल हमला हो चुका था (दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इन्डिया, पृष्ठ ४४२ और ४४४)। इस प्रकार अशोक की मृत्यु के लगभग अविलम्ब बाद ही ग्रीक आक्रमण हो गया। क्या इतने थोड़े से समय में बौद्ध धर्म का प्रसार हो गया और उसने जनता को, और उससे भी बढ़कर, मगध सेना को इतना कोमल और शान्तिप्रिय बना दिया कि वह सैनिक कार्य में असमर्थ हो गई?——यह वही सेना थी जिससे सिकन्दर के सैनिक कांपते थे, और जिसने उसके बाद सैल्यूकस की सेना को मार भगाया था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिलालेखों के विश्लेषण द्वारा यह प्रकट करना चाहते थे कि एक बुद्धिमान और जिज्ञासाशील गवेषक को उनसे अब तक अप्रत्याशित क्या जानकारी प्राप्त हो सकती है। संबंधित साहित्य से अपने दीर्घ परिचय के कारण आप इस कार्यभार के लिए सबसे अधिक सज्जित व्यक्ति हैं। यह आपकी अद्वितीय शक्ति का चमत्कार है कि आपने पुस्तकों की सहायता से स्मारकों पर प्रकाश डालकर अपने चित्र को सजीव कर दिया है।"

अशोक के सम्बन्ध में अनेक प्रश्न अब भी उलझे हुए हैं। इनमें से एक यह भी है कि भारत पर उसकी वैदेशिक नीति का क्या प्रभाव हुआ। ऐसा ही एक और प्रश्न यह है कि क्या पश्चिमी एशिया में बौद्ध धर्म उसके प्रयत्नों से फैला और यदि हां-तो कहां तक। यदि इन प्रश्नों पर स्वतन्त्रता और निर्भयता से विचार न किया जाय तो किसी अन्तिम निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा जा सकता। मेरे जो कुछ विचार हैं वे मैंने प्रकट कर दिये हैं और अव यह देखना है कि विद्वान लोग, और उनसे भी वढ़कर, इतिहासकार क्या-क्या विचार प्रकट करते हैं। ये सम्मतियां जितनी विविध होंगी, इस प्रश्न को देखने के उतने ही दृष्टिकोण सामने आयेंगे और परिणामतः उनके शीघ्र हल होने की उतनी ही अधिक सम्भावना होगी।

यह सच है कि इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य इतिहास है, शिलालेख-शास्त्र नहीं; तो भी, वह समय अभी नहीं आया, और जहां तक प्राचीन भारत का सम्बन्ध है, शायद वह कभी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी नहीं आये, जब इतिहास को शिलालेख-शास्त्र, पुरातत्व या संस्कृत और संस्कृत साहित्य से पूर्णतया पृथक् किया जा सके। अशोक के लेखों में अब भी कुछ ऐसे शब्द और, संदर्भ हैं, जिन्हें ठीक-ठीक समझने की आवश्यकता है, यद्यपि डाक्टर एफ० डब्लू० टामस ने इस क्षेत्र में हाल में ही बड़ा भारी कार्य किया है। इसलिए मैंने अपने प्राचीन इतिहास के इस आधार की उपेक्षा नहीं की मैंने इसकी ओर काफी ध्यान दिया है। यह बात विशेष रूप से अध्याय आठ में देखी जा सकती है, जिसमें अशोक के प्रज्ञापनों का अनुवाद और उनपर टिप्पणियां हैं।

मैं कह चुका हूं कि अशोक के लेखों ने मुझे चौथाई शताब्दी तक व्यस्त रखा, परन्तु मैं इतनी बात कहे बिना नहीं रह सकता कि इस कार्य में मैं अधिक प्रगति तभी कर सका जब मैं प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृत के कारमाईकेल प्राध्यापक के पद पर नियुक्त होकर कलकत्ते आया और मैंने कलकत्ता विश्वविद्यालय के शुद्ध बौद्धिक वायुमण्डल में सांस लिया जो स्वर्गीय सर आशुतोष मुकर्जी सरस्वती की महान् प्रतिभा की अनुपम सृष्टि है। खेद है कि हम स्नातकोत्तर अध्ययन की उन्नति में उनके पथ-प्रदर्शन से सदा के लिए वंचित हो गए। उन्हें इस पुस्तक के प्रकाशित होने में विशेष दिलचस्पी थी, और मुझे स बात का सदा अत्यधिक दुःख रहेगा कि वे इस पुस्तक को देखने के लिए जो अब दो वर्ष में छपकर तैय्यार हुई है, कुछ दिन और जीवित न रह सके।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस पुस्तक की अनुक्रमणिका श्री गिरीन्द्र मोहन सरकार ने तैयार की है जो कुछ समय पहले मेरे शिष्य थे। प्रूफ पढ़ने तथा साधारण सहायता देने के लिए मैं कलकत्ता विश्वविद्यालय के दो उपाध्यायों श्री जितेन्द्रनाथ बनर्जी और श्री नानीगोपाल मजूमदार का, तथा अपने शिष्यों श्री राकोहरी चटर्जी और श्री चिन्ताहरण चक्रवर्ती का, बहुत अधिक ऋणी हूं और अपने इस प्राक्कथन का सबसे अधिक अच्छा उपसंहार उन्हीं शब्दों में कर सकता हूं जिन शब्दों में फ्रेंच विद्वान ने अपने पत्र का उपसंहार किया है : "आप, जो अपनी सुन्दर परम्पराओं के प्रति निष्ठावान और ठोस ज्ञान के अनुरागी हैं, अपने इस पूर्वज को अपने गवेषणाओं और अपने देश-प्रेम की स्फुरणाओं की श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहते थे। आपके कार्य का उचित मूल्यांकन करने के लिए ब्योरे की बातों में जाना होगा, और वैसा करना इस छोटे से पत्र में संभव नहीं, अतः मेरा हार्दिक अभिनन्दन स्वीकार कीजिए। मैं सहानुभूति और परिश्रम के इस फलप्रद संयोग को--जिसमें भारत की धार्मिकता और पश्चिम के आदरपूर्ण कौतूहल को एक हो जाना चाहिए--हमारे साझे चरितनायक के संरक्षण में रखना चाहता हूं।"

डी० आर० बी०

[अनुवाद में अनुक्रमणिका नहीं दी जा सकी है।--अनु०]

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संक्षेपों की तालिका

ABORI--एनल्स आफ दि भंडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीच्यूट ।

AR-ASEC--वार्षिक रिपोर्ट, आर्कियोलौजिकल सर्वे, ईस्टर्न सर्कल ।

ASI-AR--आर्कियोलौजिकल सर्वे आफ इण्डिया--वार्षिक रिपोर्ट ।

ASSI--आर्कियोलौजिकल सर्वे आफ सदर्न इंडिया ।

ASWI--आर्कियोलौजिकल सर्वे आफ वेस्टर्न इंडिया ।

CASR--कनिगहम की आर्कियोलौजिकल सर्वे रिपोर्टें ।

CCII--कनिंगहम, कौर्पस इन्स्क्रिप्शिनम इंडिकेरम ।

CL--कारमाइकेल लेक्चर्स ।

EB--एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटैनिका ।

EC--एपिग्राफिया कर्नाटिका

EHI--अर्ली हिस्ट्री आफ इंडिया

EI--एपिग्राफिया इंडिका

ERE-- साइक्लोपीडिया आफ रिलीजन एण्ड एथिक्स

EZ--एपिग्राफिया जेलानिका

GI--गुप्त इन्स्क्रिप्शन्स

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

HAS--हैदराबाद आर्कियोलौजिकल सर्वे ।

HASL--हिस्ट्री आफ एंशेंट संस्कृत लिटरेचर ।

HIEA--हिस्ट्री आफ इन्डियन एंड ईस्टर्न आर्किटेक्चर।

IA --इंडिअन एंटिकरी

IHQ--इंडिअन हिस्टौरिकल क्वार्टरली

JAOS--जर्नल आफ दि अमेरिकन ओरिएंटल सोसाइटी ।

JASB--जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल ।

जात--जातक ।

JBBRAS--जर्नल आफ दि बौंबे ब्रांच आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी ।

JBORS--जर्नल आफ दि विहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी ।

JDL--जर्नल आफ दि डिपार्टमेंट आफ लैटर्स (कलकत्ता विश्वविद्यालय)

JPTS --जर्नल आफ दि पाली टेक्स्ट सोसाइटी ।

JRAS(NS)--जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी (न्यू सीरीज)

MASB--मेमोइर्स आफ दि एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल ।

MASI--मेमोइर्स आफ दि आर्कियोलौजिकल सर्वे आफ इंडिया ।

MCNL--मणीन्द्रचन्द्र नन्दी लैक्चर्स, १९२५, (जो बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में श्री डी० आर० भंडारकर ने दिये थे) ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

PR-ASNWFP—उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त के आर्कियोलौजिकल सर्वे की प्रगति रिपोर्ट।

PR-ASWI—पश्चिमी भारत के आर्कियोलौजिकल सर्वे की प्रगति रिपोर्ट।

PTFOC—पहली ओरिएंटल कान्फरंस, पूना, की कार्यवाही।

PTS—पालि टेक्स्ट सोसाइटी।

SAMSJV—सर आशुतोष मुकर्जी सिलवर जुबिली वाल्यूम।

SBB—सेक्रेड बुक्स आफ दि बुद्धिस्ट्स।

SBE—सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट।

SSPS—संस्कृत साहित्य परिषद सीरीज, कलकत्ता।

VOJ—विएना ओरिएंटल जर्नल

VP—विष्णु पुराण

ZDMG—जेइट्सक्रिफ्ट डेर डुएटशेन मौर्गनलैंडिशेन जैसैलशैफ्ट।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विषय-सूची

अध्याय १	पृष्ठ
अशोक और उसका आरम्भिक जीवन	१–२६
अध्याय २	
अशोक का साम्राज्य और प्रशासन	२७–७३
अध्याय ३	
अशोक बौद्ध के रूप में	७४–१०१
अध्याय ४	
अशोक का धम्म	१०२–१३३
अध्याय ५	
अशोक धर्म-प्रचारक के रूप में	१३४–१६८
अध्याय ६	
अशोक-कालीन स्मारकों के आधार पर सामाजिक और धार्मिक जीवन	१६९–२१९
परिशिष्ट	२१९–२२२
अध्याय ७	
इतिहास में अशोक का स्थान	२२३–२५२
अध्याय ८	
अशोक के लेख	२५३–३४४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विभाग G ....
उत्तरा प्राप्त संख्या 192
Museum Library, Lucknow

अध्याय १

अशोक और उसका आरम्भिक जीवन

भारत में शायद ही कोई शिक्षित व्यक्ति ऐसा हो जिसने अशोक और उसके शिलालेखों का नाम न सुना हो। हर कोई जानता है कि अशोक एक मौर्य वंश का नरेश, और चन्द्रगुप्त का पोता था। ग्रीक लेखकों ने चंद्रगुप्त को सैंड्रैकोट्टोस नाम से याद किया है और वह कुछ समय तक सिकन्दर महान् का समकालीन था। यह भी सबको पता है कि इस नरेश के शिलालेख भारत भर में पाये जाते हैं। पर सम्भव है कि यह बात सबको न मालूम हो कि उन शिलालेखों पर क्या लिखा है और उनसे उस मौर्य राजा का क्या विवरण प्राप्त होता है। कुछ ऐसे बौद्ध ग्रन्थ अवश्य हैं जिनमें उसके जीवन और कार्य का वृत्तान्त मिलता है, पर उनकी विश्वसनीयता पर सन्देह किया गया है, जो उचित ही है। उनमें बहुत-सी कथाएं दी गयी हैं जिनमें उसे पहले कालाशोक, अर्थात् काले अशोक, के रूप में, और उसके बौद्ध हो जाने के बाद धर्माशोक, अर्थात् पवित्र अशोक, के रूप में चित्रित किया गया है। क्योंकि इन ग्रन्थों का एक ध्येय बौद्ध धर्म की प्रशंसा करना है और उसके लिए वे यह बताते हैं कि बौद्ध धर्म ने अशोक को किस तरह दानव से देवता बना दिया, इसलिए उनके विवरण की सत्यता के बारे में स्वभावतः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन में संदेह पैदा हो जाता है। पर उसके शिलालेखीय स्मारकों के बारे में यह बात नहीं है —— इन स्मारकों की, जो समकालीन अभिलेख (records) हैं और उसके आदेशों से खोदे गये थे, प्रामाणिकता असंदिग्ध है। इतना ही नहीं, बल्कि जब हम उन्हें पढ़ते हैं तब हम अनुभव करते हैं कि मानो अब भी उसकी वाणी हमें सुनायी दे रही है और उसके अन्तस्तल की भावनाएं हमें सुना रही है। आगे के पृष्ठों में दी जाने वाली अशोक की कथा, लगभग पूरी तरह, इन स्मारकों के आधार पर है, और हम बहुत निश्चय से कह सकते हैं कि हमारा विवरण कल्पना नहीं, बल्कि इतिहास है।

अशोक अपने पीछे किस तरह के अभिलेख छोड़ गया है? क्या उनकी संख्या इतनी अधिक है और क्या वे इतने महत्त्वपूर्ण हैं कि उनसे ब्योरे की बातों पर प्रकाश पड़ सके? यदि हम उसके शिलालेखीय स्मारकों का पूरा विवरण यहां देने लगें तो निश्चय ही पाठक उकता जाएगा, और इसलिए हमने वह एक बाद के अध्याय के लिए रख छोड़ा है। पर इस तथा अगले अध्याय का विषय अच्छी तरह से हृदयंगम कराने के लिए इन अभिलेखों के स्वरूप की कुछ रूप-रेखा यहां देना आवश्यक है। ये अभिलेख, जैसा कि हम जानते हैं, सबके सब पत्थर पर खुदे हुए हैं। वे शिलाओं पर, स्तम्भों पर या गुफाओं में खोदे गये हैं। शिलाओं पर के लेख भी दो प्रकार के हैं, अर्थात् (१) चौदह शिला प्रज्ञापन (Fourteen Rock Edicts) और (२) गौण शिला प्रज्ञापन (Minor Rock Edicts)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चौदह शिला प्रज्ञापनों का यह नाम इसलिए पड़ा है क्योंकि वे मिलकर क्रमबद्ध चौदह विभिन्न लेखों (inscriptions) का संग्रह है, और सात विभिन्न स्थानों में पाये गये हैं जो सबके सब भारत के सीमा-प्रदेशों पर हैं। गौण शिला प्रज्ञापनों में दो भिन्न प्रकार के अभिलेख हैं। वे इकट्ठे तो सिर्फ मैसूर वाली तीन प्रतियों में खुदे हुए हैं; और सब स्थानों में, जिनकी संख्या चार से कम नहीं है, सिर्फ प्रज्ञापन १ खुदा हुआ है। अशोक के स्तम्भ लेखों को भी दो भागों में बांट सकते हैं: (१) सात स्तम्भ प्रज्ञापन और (२) गौण स्तम्भ लेख। इनमें से पहले सात मिलकर एक समूह बनाते हैं, पर पिछले चार अलग-अलग शिलालेख हैं। अशोक के गुफा लेख वे ही हैं जो बिहार के बराबर पर्वत की गुफाओं में खुदे हुए हैं। ये सब मिलाकर तेंतीस विभिन्न लेखों से कम नहीं हैं, और, जैसा कि हम अपने विवरण में आगे देखेंगे, वे अशोक, उसके प्रशासन, उसके धार्मिक विश्वास और उसके धर्म-प्रचार के कार्यों आदि से सम्बन्धित अनेक बातों पर प्रकाश डालते हैं। आवश्यकता सिर्फ यह है कि अशोक के बारे में जो कुछ जानने योग्य और ऐतिहासिक दृष्टि से स्वीकार्य है उसका अधिकतम अंश हस्तगत करने के लिए इन अभिलेखों की सावधानी से तुलना की जाए।

जिन लोगों ने इन शिलालेखों का अध्ययन किया है वे अच्छी तरह जानते हैं कि ये लेख अपना उद्भव एक राजा से बताते हैं जो अपने आपको पियदसी, अर्थात् प्रियदर्शी, कहता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। जब लगभग तीन-चौथाई शताब्दी पहले, जेम्स प्रिंसेप, जिसे ब्राह्मी लिपि का रहस्य उद्घाटित करने का श्रेय मिलना चाहिए, इन्हें पहली बार पढ़ रहा था, तब प्रियदर्शी नाम से वह बड़े चक्कर में पड़ गया था। वह नहीं जानता था कि यह प्रियदर्शी कौन था, किस वंश का था, और किस काल में राज्य करता था। पर उसके कुछ ही समय बाद टर्नर (Turner) ने, जो श्रीलंका सिविल सर्विस का अफसर था और स्वयं पालि का बड़ा विद्वान था, बताया कि प्रियदर्शी अशोक ही है। उसने बताया कि सिंहली भाषा की इतिहास-पुस्तक दीपवंश में पियदस्सी या पियदस्सन, मौर्यवंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक का ही एक और नाम है। यह सच है कि तब से इस कथन पर कोई आपत्ति नहीं की गयी, पर यह बात निश्चित रूप से तब ही प्रमाणित हुई जब सिर्फ छह वर्ष पहले गौण शिला प्रज्ञापन १ की छठी प्रति शोलापुर जिले (निजाम राज्य) के मस्की नामक स्थान पर प्राप्त हुई। इस लेख में अशोक के नाम का स्पष्ट रूप से और पहली ही पंक्ति में उल्लेख है। इसलिए अब इस बात में संदेह नहीं किया जा सकता कि अशोक और प्रियदर्शी एक ही व्यक्ति हैं, और इन लेखों का प्रणेता वास्तव में उस चन्द्रगुप्त का पोता है जिसने मौर्य साम्राज्य की स्थापना की।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हमारे पुरालेखीय अभिलेखों का प्रणेता, अशोक और प्रियदर्शी इन दोनों नामों से प्रसिद्ध था। प्राचीन भारत के राजाओं में एक से अधिक नाम रखने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की प्रथा थी, जिनमें से एक तो उनका व्यक्तिवाचक नाम होता था और अन्य नाम उनके विशेषण होते थे जो विरुद कहलाते थे। इन दोनों शब्दों में से एक निश्चित रूप से उसका नाम रहा होगा और दूसरा विशेषण होगा। और प्रतीत होता है कि प्रियदर्शी उसका विशेषण था क्योंकि हम जानते हैं कि श्रीलंका के एक इतिहास-ग्रंथ में अशोक के दादा चन्द्रगुप्त को भी, उसकी तरह, पियदस्सन कहा गया है। इसमें किसी को संदेह नहीं कि चन्द्रगुप्त उसका अपना नाम था। इसलिए प्रियदर्शन या प्रियदर्शी उसका विरुद या गौण नाम माना जाना चाहिए। हम जानते हैं कि अशोक के लिए यह विशेषण प्रियदर्शी था और यह बिलकुल सम्भव है कि उसके दादा का विरुद भी प्रियदर्शी था, प्रियदर्शन नहीं। क्योंकि बाद के ज़माने में हम देखते हैं कि एक ही वंश के दादा और पोता एक ही विरुद धारण करते हैं। श्रीलंका के इतिहास-ग्रंथ में अशोक को प्रियदर्शी के अलावा प्रियदर्शन भी कहते हैं जिससे प्रकट होता है कि वे दोनों शब्दों को एक ही अर्थ में प्रयुक्त करते हैं। और क्योंकि अशोक के शिलालेखों से हमें पता चलता है कि वह प्रियदर्शी कहलाता था, प्रियदर्शन नहीं, अतः यह मानना स्वाभाविक है कि उसका दादा भी प्रियदर्शी था, प्रियदर्शन नहीं। यह विलक्षण बात है कि उसके अभिलेख राजा को सिर्फ एक बार अशोक नाम से, और अन्य सब स्थानों पर प्रियदर्शी नाम से, पुकारते हैं। पर ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं जिनमें राजा लगभग सदा अपने विरुदों से ही पुकारे जाते रहे हैं। इस

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रकार, मान्यखेत के राष्ट्रकूट कुल के गोविन्द तृतीय का पुत्र अब तक के सब लेख्यों (documents) में अपने विरुद, अमोघवर्ष, के नाम से ही मिलता है। अपने पुरालेखों के प्रणेता के बारे में तो हमारे पास अधिक पुष्ट प्रमाण हैं। क्योंकि कम से कम एक अभिलेख में उसका निजी नाम, अशोक, दिया हुआ है।

अपने अधिकतर पुरालेखों में अशोक अपने आपको 'देवानाम्प्रिय प्रियदर्शी राजा' कहकर अभिहित करता है। यह राजा का पूरा अभिधान (appellation) है। पर कभी-कभी इस अभिधान के एक या अधिक अंश का विलोप करके इसे संक्षिप्त कर दिया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अशोक को देवानाम्प्रिय प्रियदर्शी, प्रियदर्शी राजा, देवानाम्प्रिय राजा, या सिर्फ देवानाम्प्रिय[1] भी कहा गया है। अशोक के पूरे नाम का दूसरा भाग प्रियदर्शी है जिस पर हम अभी विचार कर चुके हैं। इसका शाब्दिक अर्थ है "प्रेम से देखने वाला" और भावार्थ यह भी हो सकता है कि "सौम्य स्वरूप वाला"। उसने यह विरुद कब और क्यों धारण किया, यह हम नहीं जानते, पर यह निश्चित है कि वह इसे करीब-करीब अपने निजी नाम की ही तरह प्रयुक्त करता था। इसलिए अधिक अच्छा हो कि हम इसका अनुवाद न करें और इसे इसके मूल-रूप में ही रहने दें। यह ध्यान देने योग्य बात है कि यद्यपि अशोक सर्वोच्च शासक था पर वह अपने को सिर्फ 'राजा' शब्द से निर्दिष्ट करता है। 'महाराजा' और 'राजाधिराज' जैसी

१. JRAS, १९०८, ४८२-३.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भारी-भरकम या आडम्बरपूर्ण उपाधियां, जो अलग-अलग या मिलाकर प्रयुक्त की जाती हैं, अशोक के समय में प्रचलित नहीं हुई थीं। जो और भी अधिक ध्यान देने योग्य बात है वह यह कि वह अपने आपको 'देवानाम्प्रिय' कहता है, और आसानी से समझ में आ सकता है कि व्याकरण के आधुनिक विद्यार्थी को इस पर क्यों हंसी आने लगेगी। क्योंकि क्या सिद्धान्त-कौमुदी के रचयिता भट्टोजी दीक्षित, और अभिधान चिन्तामणि के प्रणेता हेमचन्द्र हमें यह नहीं बताते कि देवानाम्प्रिय का अर्थ 'मूर्ख' या 'मूढ़मति' है? इसलिए उन्हें यह कुतूहल होना स्वाभाविक है कि अशोक का अपने आपको देवानाम्प्रिय कहने का क्या अभिप्राय है। पर यह ध्यान रहना चाहिए कि यद्यपि यह शब्द अब अप्रतिष्ठाकारी भाव रखता है, पर शुरू में, और विशेष रूप से अशोक के समय में, यह ऐसा नहीं था। हम जानते हैं कि पतंजलि इस शब्द को 'भवत्' 'दीर्घायुः' और 'आयुष्मत्' के साथ रखता है। इससे पता चलता है कि इन आदरसूचक शब्दों के समान देवानाम्प्रिय शब्द भी संबोधन या नामोल्लेख की शुभावह रीति के रूप में प्रयुक्त किया जाता था। अब यदि हम शिला प्रज्ञापन ८ पर ध्यान दें तो हम देखेंगे कि कुछ जगह जिसे 'देवानाम्प्रिय' कहा गया है, उसे ही और जगह 'राजानो' कहा गया है। इसका मतलब यह हुआ कि देवानाम्प्रिय, राजाओं को सम्बोधित करने की एक शुभावह रीति थी। और, वस्तुतः दीपवंश[1] में तिस्स को देवा नाम्प्रिय

---

१. XI, १४, १९, २०, २५ आदि।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कहा गया है जो श्रीलंका का शासक और अशोक का समकालीन था, और उस राजा का उल्लेख करने के लिए अनेक बार अकेले इस शब्द का प्रयोग किया गया है। अन्य पुरालेखीय अभिलेखों से भी यही निष्कर्ष निकलता है। इस प्रकार, नागार्जुनी पर्वत के गुफालेखों[१] में देवानाम्प्रिय शब्द दशरथ नाम के एक राजा को निर्दिष्ट करने के लिए प्रयुक्त किया गया है, जिसे अशोक का पोता माना गया है। इसी तरह श्रीलंका के एक पुरालेख में यह विरुद अन्य राजाओं के अतिरिक्त वंकनासिकतिस्स, गजबाहुक-गामिनी, और महल्लक-नाग[२] के साथ लगा हुआ है। इस प्रकार देवानाम्प्रिय, ईसाई काल से पहले, सिर्फ राजाओं के लिए, संबोधन की शुभावह रीति या सादर उल्लेख को प्रकट करता था, और सम्भवत: इस विश्वास को सूचित करने के लिए प्रयुक्त किया जाता था कि राजाओं की रक्षा देवता करते हैं। इसलिए इस पद का अधिक अच्छा अनुवाद होगा "देवताओं का प्रिय"। इस प्रकार अशोक की पूरी राजकीय उपाधि थी : "राजा प्रियदर्शी, देवताओं का प्रिय।"

अशोक के बहुत सारे पुरालेख इस पदावलि से शुरू होते हैं : **देवानाम्प्रियो पियदसी राजा एवं आह,** "देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी ऐसा कहता है।" श्री सेनार्ट[३] ने, ठीक ही, इसकी तुलना उस पदावलि से की है, जिससे एकिमीनाइडों

---

१. IA, XX. ३६४ और आगे।

२. EZ, १. ६० और आगे।

३. IA, XX· २५५–६।

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

(Achaemenides)– डेरिअस से लेकर आर्टेजेक्सिस ओक्स तक––की उद्घोषगाएं (Proclamations) शुरू होती हैं। ऐसा एक उदाहरण है **थातीय दारयवौश त्तयाथिय** "राजा डेरिअस ऐसा कहता है।" दोनों जगह संबोधन का रूप अन्य पुरुष (third person) की पदावलि से आरम्भ होता है, और जो बात विशेष ध्यान देने योग्य है वह यह कि इस पदावलि के तुरन्त बाद उत्तम पुरुष का प्रयोग किया गया है । निःसंदेह, अब कोई यह प्रतिपादन नहीं कर सकता कि अशोक ने इस सूत्र की, सीधे ईरान से, नकल कर ली, क्योंकि वास्तव में, हम जानते हैं कि यह राजसभा का एक आचार (Protocol) था जिसका कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में उल्लेख किया है और इसलिए जो अशोक के काल से पहले ही प्रचलित था।[1] पर हमें फ्रेंच विद्वान के इस कथन से सहमत होने में कोई बाधा नहीं है कि भारतीयों ने ईरानी आचार ग्रहण कर लिया था, और इसका कारण यह था कि एकिमीनियनों ने उत्तर-पश्चिमी भारत को जीत लिया था और उस पर उनका शासन था।

अपने अभिलेखों में अशोक जब कभी कोई गिनती देता है तब वह वर्षों की गणना अपने राज्याभिषेक के समय से करता है। इसके कारण विद्वान लोग सिंहल की इस किंवदन्ती को सत्य मानने लगे हैं कि अशोक का अभिषेक उसके राज्यारोहण के चार वर्ष बाद हुआ। पर यह किंवदन्ती यह भी बताती है

१. वही, XLVII ५१–२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि अशोक ने, अपने पिता की मृत्यु के बाद, अपने निन्यानवें भाइयों का वध करके सिंहासन प्राप्त किया और सिर्फ एक, सबसे छोटे भाई, तिष्य, को जीता छोड़ा। पर उसके शिलालेख इस बात का खंडन करते हैं—इनमें उसके न केवल एक बल्कि कई भाइयों का उल्लेख हैं, जो जीवित हैं, और जो न केवल उसकी राजधानी पाटलिपुत्र में हैं बल्कि उसके साम्राज्य के विभिन्न नगरों में भी हैं। और यदि यह बात सिद्ध हो जाती है तो यह समझ में नहीं आता कि उस किंवदन्ती के उस भाग को क्यों सत्य माना ज़ाय जो उसका अभिषेक उसके राज्यारोहण के चार वर्ष बाद हुआ बताता है। असल में यह बात जरा भी स्पष्ट नहीं कि यदि वह कुछ घटनाओं की तिथिगणना अपने राज्याभिषेक के समय से करता है तो इससे यह कैसे सिद्ध हुआ कि उसके राज्याभिषेक और राज्यारोहण के बीच कुछ समय का व्यवधान था। फिर, नागार्जुनी पर्वत की गुफाओं में कम से कम तीन लेख ऐसे हैं जिन पर अशोक के पोते दशरथ के राज्याभिषेक के तुरन्त बाद से तिथिगणना है। तो क्या यहां भी हम यह कल्पना करें कि क्योंकि इन अभिलेखों में, तिथिगणना में दशरथ के अभिषेक का जिक्र है, इसलिए अभिषेक और आरोहण एक ही समय में नहीं हुए, और उन दोनों के मध्य कुछ व्यवधान अवश्य रहा होगा? इसलिए यह मानने के लिए कोई पुष्ट कारण नहीं है कि अशोक के राज्याभिषेक और राज्यारोहण के बीच चार वर्ष जैसा लम्बा व्यवधान रहा था।

प्रतीत होता है कि अशोक अपने अभिषेक की वार्षिक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तिथि बन्दियों को मुक्त करके मनाया करता था। स्तम्भ प्रज्ञापन ५ के अन्त में वह जो कुछ कहता है उससे यह अनुमान किया जा सकता है। उसमें वह कहता है कि "छब्बीस वर्ष पूर्व मेरा अभिषेक होने के बाद की अवधि में पच्चीस बार बन्दियों की मुक्ति हो चुकी है।" क्योंकि छब्बीस वर्ष की अवधि में पच्चीस बार बन्दी मुक्त किये गये थे, अतः इसका यह अर्थ हुआ कि जब यह स्तम्भ प्रज्ञापन प्रख्यापित किया गया तब उसके शासन का छब्बीसवां वर्ष समाप्त नहीं हुआ था। इस तरह इससे पता चलता है कि अपने जीवन के प्रसंगों के लिए वह जो तिथियां निर्दिष्ट करता है वे चालू शासनीय वर्ष हैं; वे समाप्त वर्ष नहीं हैं जैसा कि विद्वानों ने मान लिया है।

कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में विधान किया है कि राजा को कुछ विशेष दिनों पर खस्सी करने और पशु भ्रूण (Animal Foetus) को नष्ट करने पर पाबन्दी लगानी चाहिए। इनमें राजा और देश के नक्षत्र वाले दिन भी शामिल हैं। स्तम्भ प्रज्ञापन ५ में अशोक ने खस्सी करने और दागने की चर्चा की है और उन दिनों का निर्देश किया है जिन पर उसने इन दोनों कार्यों का निषेध किया है। बड़ी विलक्षण बात है कि इनमें से अधिकतर दिन कौटिल्य द्वारा बताये गये दिनों से मेल खाते हैं। और जो ध्यान देने की बात है वह यह कि उसमें वह सिर्फ दो नक्षत्र दिनों, अर्थात् तिष्य और पुनर्वसु, का नामोल्लेख करता है। बहुत संभाव्यतः, इनमें से एक राजा का नक्षत्र है और दूसरा देश का। तो यह प्रश्न पैदा होता है कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कौनसा नक्षत्र देश का है और कौनसा राजा का ? यह ध्यान देने की बात है कि तिष्य नक्षत्र का उल्लेख धौलि और जौगड़ा के दो पृथक् प्रज्ञापनों में भी है। हम जानते हैं कि अशोक के ये प्रज्ञापन नये जीते हुए कलिंग प्रान्त के अफसरों के उद्बोधन और कर्त्तव्य-निर्देशन के लिए थे, और वह यह आदेश जारी करता है कि उनके लाभ के लिए ये प्रज्ञापन प्रत्येक तिष्य नक्षत्र वाले दिन पढ़कर सुनाये जायेंगे। स्पष्ट है कि इन दो नक्षत्रों में से तिष्य को पुनर्वसु की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया गया है। यह बात इस तथ्य से भी दिखायी देती है कि यद्यपि नक्षत्रों की साधारण सूची में तिष्य, पुनर्वसु के बाद आता है, पर स्तम्भ प्रज्ञापन ५ में यह न केवल एक बार, बल्कि दो बार, पुनर्वसु से पहले रखा गया है। बलात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि क्योंकि तिष्य को इतना अधिक महत्त्व दिया गया है, अतः यह अवश्य ही राजा का नक्षत्र होगा। यदि यह अनुमान सही है तो पुनर्वसु देश का नक्षत्र हुआ, जिससे हमारा ख्याल है, हमें मगध देश समझना चाहिए।

अशोक के प्रज्ञापन उसके धम्म के विषय में, और धम्म के प्रचार के लिए उसने जो साधन अपनाये उन साधनों के विषय में हैं। इसलिए स्वभावतः वे उसके बौद्ध बन जाने के बाद के जीवन और कार्य पर बहुत अधिक प्रकाश डालते हैं। पर यहां हम यह देखने का यत्न करेंगे कि ये अभिलेख उसके आरम्भिक जीवन के बारे में, उसके निजी और सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्रों में, क्या थोड़ी-बहुत बात बताते हैं। हम पहले ही देख चुके हैं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि उसके कई भाई और बहनें थीं जो उसके शासन के तेरहवें वर्ष तक जीवित थीं, और वे न केवल पाटलिपुत्र में बल्कि अन्य नगरों में भी रह रही थीं। निःसंदेह, अशोक का अपना **अवरोधन,** या स्त्रियों के रहने का बन्द स्थान, था। उसकी वास्तव में कितनी रानियां थीं, यह हमें नहीं मालूम। पर उसकी कम से कम दो रानियां थीं, क्योंकि उसके एक शिलालेख में उसकी दूसरी रानी का निर्देश है। और यह तथ्य ही कि उसे द्वितीय रानी कहा गया है, प्रकट करता है कि उसके समय में रानियों का पंक्तिक्रम निर्धारित हो चुका था। इस द्वितीय रानी का नाम कारुवाकी था और उससे उसका पुत्र तीवर था। इस शिलालेख का उद्देश्य यह था कि यदि यह रानी कोई दान करे तो उसका यश सुनिश्चित रूप से उसे मिले। स्तंभ प्रज्ञापन ७ में अशोक कहता है कि मैंने कुछ अफसर नियुक्त किये हैं जो मेरे अन्तःपुर के परिजनों को दान देने के लिए प्रेरित करेंगे और उस दान की उचित व्यवस्था करेंगे। अब यह देखिए कि वह इस प्रसंग में अपने परिवार के किन सदस्यों की चर्चा करता है। सबसे पहले तो वह अपना और अपनी रानियों का उल्लेख करता है। पर रानियों के तुरन्त बाद वह अपने अवरोधन का जिक्र करता है और कहता है कि अवरोधन के सदस्य सिर्फ राजधानी में नहीं रहते बल्कि प्रान्तों में भी रहते हैं। लेख के इस अंश को ध्यान से पढ़ने वाला व्यक्ति यह सोचे बिना नहीं रह सकता कि उसके अवरोधन में सिर्फ उसकी रानियां ही नहीं थीं। तो उसमें और कौन हो सकते हैं? वे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसके पुरुष संबंधियों की पत्नियां तो हो नहीं सकतीं, क्योंकि उन्हें अशोक का अवरोधन कहना उचित नहीं। क्या वे उसकी अ-सहधर्मचारिणी भार्याएं (Left-handed wives) थीं ? तब उसके अवरोधन में रानियों के अलावा नीचे दर्जे की स्त्रियां भी हुईं। इससे हमें सिंहल की वह किंवदन्ती याद आ जाती है जिसके अनुसार, जब अशोक अपने पिता के समय में उज्जैन में राजप्रतिनिधि (Viceroy) था तब उसका भिलसा के पास बैसनगर में वेदिसगिरि में रहने वाली एक सेठी जाति की स्त्री से मेल-जोल हो गया था और सिंहासन पर अधिकार कर लेने के बाद भी अशोक वहीं रहता रहा और उस स्त्री से उत्पन्न संतान अशोक के साथ पाटलिपुत्र चले गये। यह किंवदन्ती स्तम्भ प्रज्ञापन से निकलने वाले इस अनुमान की साफ तौर से पुष्टि कर देती है कि अशोक के अवरोधन में रानियों के अतिरिक्त स्त्रियां भी थीं, और उसका सारा अवरोधन पाटलिपुत्र में ही नहीं था, इसके कुछ सदस्य अन्य नगरों में भी रहते थे। उसी स्तम्भ प्रज्ञापन में और राजकीय अन्तःपुर के दान की व्यवस्था करने के ही सिलसिले में अशोक अपने पुत्रों और अन्य **देवीकुमारों** का उल्लेख करता है। इस तरह वह अपने पुत्रों और देवीकुमारों में भेद करता है। ये अन्य देवीकुमार कौन हो सकते हैं ? बहुत संभाव्यतः अशोक यहां अपनी देवियों अर्थात् रानियों के पुत्रों की चर्चा नहीं कर रहा बल्कि अपने पिता की रानियों के पुत्रों की अर्थात्

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने अ-सहोदर भाइयों की चर्चा कर रहा है। हम नहीं जानते कि अशोक के कितने पुत्र थे। पर उसके कम से कम चार पुत्र अवश्य रहे होंगे। प्राचीन काल में यह प्रथा थी कि राजा यथासंभव अपने पुत्रों को दूरवर्ती प्रान्तों में अपना प्रतिनिधि बनाकर भेजता था। ऐसे चार कुमारों का उल्लेख हमें इन पुरालेखीय अभिलेखों में मिलता है——ये चार कुमार चार प्रदेशों——तक्षशिला, उज्जयिनी, सुवर्णनगरी और तोसली——में राज-प्रतिनिधि थे। अगले अध्याय में हम देखेंगे कि इन चार प्रदेशों में कौन-कौन से प्रान्त थे। यहां तो हमें सिर्फ यह बात देखनी है कि अशोक के कम से कम चार पुत्र थे। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि अशोक का परिवार बहुत बड़ा था। उसके कई भाई-बहन थे जो न केवल पाटलिपुत्र में बल्कि पाटलिपुत्र से बाहर, साम्राज्य के अन्य भागों में भी रहते थे। उनमें से कुछ तो निश्चित रूप से उसके सहोदर भाई थे, पर कुछ ऐसे भी थे जो उसके पिता ही से, अन्य माताओं के उत्पन्न पुत्र थे। अशोक का अवरोधन, अर्थात् महिलाओं के रहने का सुरक्षित स्थान, उसकी राजधानी ही में न था बल्कि और प्रान्तों में भी था। उसमें सिर्फ उसकी रानियां ही न रहती थीं, बल्कि वे स्त्रियां भी रहती थीं जिनके साथ उसका सम्बन्ध था। उसकी कम से कम दो रानियां थीं, जिनमें से एक का नाम कारुवाकी था, और कम से कम चार पुत्र थे। पर यह निर्धारण करना कठिन है कि कारुवाकी का पुत्र तीवर भी इन चार में ही था या नहीं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक के निजी जीवन के विषय में हमें बहुत कम जानकारी है । उसके अभिलेख इस पर बहुत कम प्रकाश डालते हैं। पर शिला प्रज्ञापन ६ में एक मनोरंजक वाक्य आता है । इस प्रज्ञापन में यह वर्णन है कि अशोक कितनी बार और कहां-कहां राजकार्य करता था । इसमें वह कहता है कि मैंने सब स्थानों पर और सब समय राजकार्य करने की व्यवस्था की है, जैसा मुझसे पहले किसी राजा ने नहीं किया । इसलिए स्वभावतः वह बताता है कि वह पहले कहां-कहां अपना समय गुजारा करता था जहां अब राजकार्य करेगा । वह कहता है, "मैंने यह प्रवन्ध किया है कि प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थान पर चाहे मैं भोजन करता होऊं, चाहे अन्तःपुर में होऊं, चाहे भीतर के कमरे (गर्भागार) में, चाहे पशुशाला (वज) में, चाहे अश्व-पृष्ठ (विनीत) पर और चाहे बागीचे में होऊं, सब जगह प्रतिवेदक (शाही पेशकार) प्रजा के बारे में मुझे सूचना दे सकते हैं ।" इसलिए स्पष्ट है कि जब अशोक के पास कोई काम न होता था, तब वह, सोने के समय के अतिरिक्त और समय, अपनी राजधानी में या तो अपने अन्तःपुर की स्त्रियों के साथ भोजनालय में होता, या अपने शयनागार में गपशप करता, या राजकीय अश्वशाला का निरीक्षण करता और घुड़सवारी का आनन्द लेता, या उद्यानों में सैर-सपाटा करता था । इनमें से, उसकी विशेष रुचि और आकर्षण की कौन-कौन सी चीजें थीं, यह हमें कुछ नहीं मालूम, पर हम इतना जानते हैं कि उसकी रसना को कौनसा भोजन तृप्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करता था। जब वह जीव-हत्या को रोकने के कार्यक्रम का बड़ी कठोरता से पालन करा रहा था तब भी उसने अपने भोजन के बारे में कुछ छूट कर रखी थी। अपने शिला प्रज्ञापन १ में वह कहता है, "पर जिस समय यह लेख लिखवाया गया, केवल तीन जीव, दो मोर और एक हरिण, मारे जाते हैं, इनमें हरिण रोज नहीं मारा जाता। ये तीन जीव भी भविष्य में नहीं मारे जाएंगे।" इसमें अशोक यह स्वीकार करता है कि यद्यपि मैंने अन्य सब जीवों की हत्या रोक दी है, पर अपने भोजन के लिए मोर और हरिण मारने की इजाजत दे रखी है। और उसके इस कथन से कि मेरे भोजन के लिए प्रतिदिन मारा जाने वाला प्राणी मोर है, हरिण नहीं, प्रतीत होता है कि उसे मोर का बहुत शौक था। इस सिलसिले में यह बात भी ध्यान रखने योग्य है जो बुद्धघोष ने अपनी संयुत्त निकाय की टीका में लिखी है। "सीमावर्ती प्रान्तों के लोगों को "गंदुप्पाद" बड़े स्वादिष्ट लगते हैं पर मध्यदेश वाले उनसे घृणा करते हैं। मध्यदेश वालों को मोर का मांस पसन्द है। पर और लोग इससे घृणा करते हैं।"[1] इसलिए यदि अशोक, जो मध्यदेश का निवासी था, बहुत दिनों तक मोर का मांस खाना नहीं छोड़ सका, तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं। परन्तु इस बात में कोई संदेह नहीं रहना चाहिए कि अन्त में उसने मोर का मांस खाना भी छोड़ दिया, जैसा कि अपने प्रज्ञापन में

१. सारत्थप्पकासिनी, बुद्धघोष द्वारा लिखित और १८९८ में थेर विमलबुद्धि द्वारा श्रीलंका में प्रकाशित, पृष्ठ १०५ और आगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वचन दिया था, और वह कट्टर निरामिषभोजी हो गया।

एक और लेख में हमें अशोक के निजी जीवन की एक और झांकी मिलती है। शिला प्रज्ञापन ८ में बताया गया है कि बहुत पुराने समय से राजा लोग विहार-यात्राएं किया करते थे जिनमें वे शिकार तथा इसी प्रकार के दूसरे कार्य से अपना मनोविनोद करते थे, पर अशोक ने अपने अभिषेक के दसवें वर्ष से, जब उसने बुद्ध के बोध-प्राप्ति के स्थान, संबोधि, की यात्रा की थी, विहार-यात्राओं के स्थान पर धर्म-यात्राएं शुरू कर दी हैं। यहां अशोक जो बात प्रकट करना चाहता है वह यह है कि दसवें वर्ष से पहले मैं भी और राजाओं की तरह विहार-यात्राएं किया करता था और उनमें तरह-तरह के आनन्द-विनोद करता था, जिनमें मुख्य विनोद मृगया या शिकार था। परन्तु इस विहार-यात्रा के विषय में हम कोई स्पष्ट कल्पना नहीं कर सकते क्योंकि इसके बारे में न तो अशोक हमें विस्तार से कुछ बताता है और न साहित्य के ही किसी ग्रंथ से इसका कोई विवरण प्राप्त होता है। महाभारत के आश्रम-वासिक पर्व में तो विहार-यात्रा का अवश्य उल्लेख है--इन यात्राओं की व्यवस्था युधिष्ठिर ने धृतराष्ट्र के लिए की थी ताकि वह अपने सौ पुत्रों की मृत्यु के शोक को भूल सके--परन्तु उसमें सिर्फ एक श्लोक है जो यह बताता है कि विहार-यात्रा में क्या-क्या होता था। उसमें कहा गया है कि "इन यात्राओं में आरलिक (जादूगर ?), भोजन बनाने में निपुण लोग, और राग तथा षाडव गाने वाले धृतराष्ट्र का उसी तरह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अनुरंजन करते थे जैसे नगर में।"[1] इस तरह धृतराष्ट्र की विहार-यात्रा में संगीत, स्वादिष्ट भोजन और जादूगरों के खेल ही थे। इसमें शिकार का उल्लेख नहीं है, क्योंकि धृतराष्ट्र जैसे बूढ़े और अंधे आदमी को शिकार में आनन्द मिलने की आशा नहीं की जा सकती। पर अशोक सिर्फ शिकार की चर्चा करता है और विहार-यात्रा के प्रसंग में और किसी मनोरंजन का उल्लेख नहीं करता। इससे प्रतीत है कि उसके समय में विहार-यात्रा का मुख्य अंग शिकार ही था। वस्तुतः राजा लोग शिकार इतना अधिक खेलते थे कि हिन्दू राजशास्त्र (Politics) के कुछ प्राचीन लेखकों ने इसे बुरा कार्य बताया है और इससे दूर रहने की प्रेरणा की है। उदाहरण के लिए, पिशुन ने शिकार को बुरा बताया है क्योंकि शिकार में डाकुओं का, शत्रुओं का, हिंस्र पशुओं का और दावानल का खतरा रहता है, तथा ठोकर खाने और दिग्भ्रान्ति होने का भय रहता है, इत्यादि। इसके विपरीत, कौटिल्य ने इसकी उपादेयता पर बल दिया है क्योंकि उसके अनुसार, शिकार से व्यायाम होता है, चर्बी और पित्त घट जाते हैं, खड़े और भागते हुए प्राणियों पर निशाना मारने का अभ्यास होता है, और पशुओं के मनोविकारों का, तथा उनके क्रुद्ध होने पर उनकी गतिविधि में होने वाले परिवर्तनों का ज्ञान होता है। हम जानते हैं कि इनमें से कुछ बातों की चर्चा कालिदास ने अभिज्ञान शाकुंतल के दूसरे अंक में की है, जबकि दुष्यन्त से शिकार

---

१. १. १८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की प्रशंसा करायी गयी है। कवि ने नाटक के पहले दो अंकों में शिकार का एक अच्छा चित्र भी प्रस्तुत किया है । राजा के शिकार का वर्णन मेगास्थनीज ने भी किया है जो अशोक का लगभग समकालीन था। उसने लिखा है कि "राजा जिन प्रयोजनों के लिए प्रासाद से बाहर जाता है उनमें से एक है शिकार को जाना। इसके शिकार के जाने के समय बड़ा आनन्दोत्सव होता है --चारों ओर से वह स्त्रियों से घिरा होता है और इस घेरे के बाहर भाले लिये हुए सैनिक कतार बांधे खड़े होते हैं। सड़क के दोनों ओर रस्से बंधे रहते हैं और इन रस्सों के भीतर आने वाले को--चाहे वह स्त्री हो, चाहे पुरुष--मौत की सजा दी जाती है। ढोल और शंख बजाते हुए लोग जलूस के आगे-आगे चलते हैं। राजा घेरों के अन्दर शिकार करता है और एक ऊंचे स्थान पर खड़ा होकर बाण चलाता है। उसके पास दो या तीन सशस्त्र युवतियां खड़ी रहती हैं। अगर वह खुले मैदान में शिकार खेलता है तो हाथी पर बैठकर बाण चलाता है। युवतियों में से कुछ रथों में, कुछ घोड़ों पर और कुछ हाथियों पर भी सवार होती हैं और ये सब तरह के शस्त्रों से ऐसी सज्जित होती हैं कि मानो किसी दुश्मन पर चढ़ाई करने जा रही हों।"[१] शाकुन्तल में भी दुष्यन्त की शिकार यात्रा का वर्णन ऐसा ही है कि जैसे यह कोई चढ़ाई हो और राजा के साथ धनुर्धारिणी यवन ।स्त्रयों के रहने का भी उल्लेख है। यह माना जा सकता है कि अशोक भी अपने आरम्भिक जीवन में, अपने

१. IA, VI, १३२.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समकालीन या पूर्ववर्ती राजाओं की तरह शिकार का आनन्द लेता होगा, पर बाद में उसके मन पर पशु-जीवन की पवित्रता की अमिट छाप पड़ गयी और उसकी आत्मा इस प्रकार के मनोरंजन से पीछे हट गयी, और उसने शिकार तथा ऐसे सब विनोद त्याग दिये जिनमें क्रूरता या जीव-हत्या होती थी।

अब हम यह विचार करेंगे कि बौद्ध धर्म का कट्टर प्रचारक बनने से पहले अशोक का राजकीय रूप क्या था। उसके इस रूप के बारे में बहुत कम बातें ज्ञात हैं और जो कुछ थोड़ा-बहुत ज्ञात भी है वह शिला प्रज्ञापन १ से ज्ञात होता है। इससे पता चलता है कि अन्य सब राजाओं की तरह अशोक भी अपने प्रजाजनों को दावतें दिया करता था और उनका मनोरंजन किया करता था—संभाव्यतः अपनी प्रजा को प्रसन्न और संतुष्ट रखने के लिए यह उसकी कूटनीतिक चाल थी। सार्वजनिक मनोरंजन की एक रीति यह थी कि वह समाज कराता था। समाज दो प्रकार का होता था। एक में जनता को स्वादिष्ट भोजन कराया जाता था जिसमें मांस का सबसे प्रमुख स्थान होता था। दूसरे में नृत्य, संगीत, मल्लयुद्ध तथा अन्य कला प्रदर्शनों का आयोजन होता था। स्पष्टतः पहले प्रकार का समाज मिल-जुलकर खाने-पीने का एक आयोजन था। दूसरे प्रकार के समाज का ध्येय जनता का मनोरंजन था, और इस अर्थ में **समाज, रंग** तथा **प्रेक्षागार** या नाटक घर का पर्यायवाचक था, और कभी-कभी इस शब्द से, वहां एकत्र 'जनसमूह' भी सूचित होता था। ब्राह्मण और बौद्ध साहित्य में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रयुक्त 'समाज' शब्द के सब उदाहरणों से यही पता चलता है कि समाज जनता की रसना या आंख और कान को तृप्त करने के लिए होते थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि भारत के प्राचीन नरेश समाजों का आयोजन करते रहते थे। इस प्रकार कटक के हाथीगुंफा शिलालेख से पता चलता है कि कलिंग का राजा खारवेल अपने नगरनिवासियों के विनोद के लिए **उत्सवों** और **समाजों** का आयोजन करता था। नासिक के एक गुफा-लेख में भी दक्षिण के एक राजा गौतमीपुत्र शातकर्णी के बारे में ठीक यही बात कही गयी है। और स्वयं कौटिल्य ने भी यह विधान किया है कि "अपने देश या धर्म के समाज, उत्सव या विहार में जनता का जो अनुराग है उसका राजा को अनुकरण करना चाहिए।"[१] मालूम होता है कि अशोक दोनों प्रकार के समाज कराता था। पर जब उसने धम्म का प्रचार शुरू किया, तब स्वभावतः उसने वे समाज निषिद्ध कर दिये जिनमें मांस खिलाने के लिए पशुओं की हत्या की जाती थी, जैसाकि शिला प्रज्ञापन १ से अनुमान होता है। और समाजों में उसके लिए कोई आपत्तिजनक बात न थी, इसलिए उसने उन्हें जारी रखा परन्तु सार्वजनिक प्रदर्शनों का रूप थोड़ा-सा परिवर्तित कर दिया। निःसंदेह उसने ऐसे दृश्यों की व्यवस्था की होगी जिनसे जनता का न केवल मनोरंजन हो बल्कि उसमें धम्म की उत्पत्ति, विकास और प्रचार हो। ये दृश्य क्या थे, यह हम आगे चलकर देखेंगे।

---

१. अर्थशास्त्र, पृ० ४०७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसी दिशा में एक और कदम उठाने के लिए, उसे राज्य सम्बन्धी कारणों से भी प्रेरणा मिली होगी। उसी अभिलेख में अशोक कहता है कि इस प्रज्ञापन के प्रख्यापन से पहले राजकीय रसोईघर में लाखों जीव मारे जाते थे। यह ठीक वैसा ही है जैसा महाभारत के वन पर्व में है जिसमें बताया गया है कि रन्तिदेव नामक राजा के रसोईघर में प्रतिदिन दो हजार पशु और दो हजार गौएं मारी जाती थीं, और अपने प्रजाजनों को मांस बांटकर उसने अतुल कीर्ति उपार्जित की। और वास्तव में, सैकड़ों आदमियों को प्रतिदिन भोजन वितरित करने का नियम भारत की देशी रियासतों में आज भी प्रचलित है। रन्तिदेव की तरह अशोक भी अपनी प्रजा में मांस वितरित किया करता होगा और ऐसा करने में उसका लक्ष्य भी ठीक वही रहा होगा, अर्थात् प्रजा का प्रिय बनना। परन्तु जब उसका अन्तःकरण जागृत हुआ और उसने धम्म का प्रचार आरम्भ किया तब उसने इस भीषण जीवनाश को बन्द कर दिया।

इस प्रकार हमने अशोक का, बौद्ध धर्म ग्रहण करने से पहले का; व्यक्तिगत और राजकीय रूप देख लिया। जो चित्र हमारे सामने आया है वह उतना स्पष्ट और पूर्ण तो नहीं है जितना हम चाहते हैं परन्तु हमें एक ऐसा स्वरूप प्राप्त हो गया जो विश्वासयोग्य है और जो सिर्फ किंवदंतियों पर आधारित नहीं है। हम जानते हैं कि उसका परिवार कैसा था, उसकी व्यक्तिगत अभिरुचि और पसन्द क्या थी, और अपने नित्य के राजकार्य से मुक्त होने पर वह किन कार्यों में व्यस्त रहता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हम यह भी जानते हैं कि राजा के रूप में उसने क्या-क्या उपाधि धारण की थी, उसने राजा के रूप में अपना जीवन कैसे आरंभ किया, और अपनी प्रजा के मनोरंजन के लिए और उसका अनुराग प्राप्त करने के लिए वह क्या-क्या किया करता था। वह अपने अभिषेक का वार्षिक उत्सव भी कारागारों से बन्दियों को मुक्त करके मनाया करता था। उसके बौद्ध होने से पहले, अर्थात् उसके अभिषेक के आठवें वर्ष के बाद तक, जबकि उसने कलिंग को जीता, राजा के रूप में उसके बारे में हम इतना ही जानते हैं। उसके राज्यकाल का आरम्भिक भाग घटनाशून्य था या उसमें उसने ऐसी विजय की या नहीं, यह हम नहीं जानते। उसके राज्यकाल की सबसे पहली घटना, जिसका शिलालेखों में उल्लेख मिलता है, उसकी कलिंग-विजय है-- कलिंग मोटे तौर से बंगाल की खाड़ी के तट के उस भू-भाग का नाम था जो वैतरणी और लांगूलिया नदियों के बीच में है। उसने युद्ध की भयानकता और कष्टों का सजीव वर्णन किया है। वह कहता है, "१,५०,००० आदमी कैदी बनाये गये, १,००,००० मौत के घाट उतारे गये और इससे कई गुने मर गये।" ये संख्याएं सिर्फ कलिंग के बारे में हैं और इनमें अशोक की सेना के हताहतों की संख्या नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि कलिंग जैसे छोटे-से प्रान्त में भी १,००,००० व्यक्ति खेत रहे, कई गुने घावों और भुखमरी के शिकार हो गये, और सबसे बड़ी बात यह कि १,५०,००० व्यक्ति दासों के रूप में कैद कर लिये गये। निश्चय ही कलिंग जैसे जरा से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रदेश के लिए ये संख्याएं बड़ी भयंकर हैं और इनसे पता चलता है कि उस प्राचीन काल में भी जब विनाशक शस्त्र इतने राक्षसी और घातक न थे जितने आज हैं, युद्ध कितनी भयंकर वस्तु था! इस युद्ध के शीघ्र बाद अशोक बौद्ध हो गया और उसने धम्म का प्रचार आरम्भ कर दिया। इस युद्ध की स्मृति ने उसमें अत्यधिक और सच्चा पश्चात्ताप पैदा कर दिया। वह कहता है कि जब कोई नया प्रदेश जीता जाता है तब हत्या, मृत्यु और कैदी अवश्यम्भावी हैं। यह बड़े दुःख की बात है। पर इससे भी अधिक खेदजनक बात यह है कि जो लोग मरते हैं, मारे जाते हैं या कैदी बनाये जाते हैं, उनमें से बहुत सारे ऐसे होंगे, जिनकी धम्म में निष्ठा थी, और कि यदि इन आदमियों पर फिर ऐसा संकट आया तो वह उनके मित्रों, परिचितों और सम्बन्धियों पर, जो स्वयं तो सुरक्षित हैं पर उनसे अनन्य प्रेम करते हैं, मुसीबत और कष्ट का पहाड़ ढा देगा। "सब आदमियों की यही गति है और देवानाम्प्रिय इसे खेदजनक समझता है।" यह भाषा वैयक्तिक अनुभूति से ओतप्रोत है, और ये शिलाएं इतने युगों बाद भी एक पश्चात्तापी आत्मा के क्रंदन को मुखरित कर रही हैं। इसमें कुछ संदेह नहीं कि यह सच्चा पश्चात्ताप था। क्योंकि जब यह प्रज्ञापन जारी किया गया तब वह उस देश में धम्म के संरक्षण, जिज्ञासा और शिक्षण का आरम्भ कर चुका था। जब कोई नया प्रदेश जीता जाता है और अभी अस्थिर दशा में होता है, तब उस देश में प्रशासन और शांति-स्थापन के लिए नियुक्त अधिकारी बहुत बार न्याय और दया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की सीमा का अतिक्रमण कर जाते हैं। उसके अधिकारियों ने भी ऐसे अतिक्रमण किये थे और उसके एक शिलालेख से हम जानते हैं कि उसने उनसे कितना कठोर व्यवहार किया और भविष्य में ज्यादतियों को रोकने के लिए क्या-क्या कदम उठाए। इतना ही नहीं युद्ध का अमानवीय और अन्यायपूर्ण रूप उसके दिमाग में इतना चक्कर काटता रहता था कि उसे कलिंग देश में यह प्रज्ञापन खुदवाने में लज्जा अनुभव हुई। कलिंग में उसके शिला प्रज्ञापन दो स्थानों पर उत्कीर्ण हैं। उसकी विजय का वर्णन करने वाला प्रज्ञापन अन्य सब स्थानों पर तो अन्य शिला प्रज्ञापनों के साथ खोदा गया है, लेकिन कलिंग में प्राप्त हुई प्रतियों में सिर्फ यह एक प्रज्ञापन छोड़ दिया गया है। इससे अधिक पश्चात्ताप और लज्जा की भावना क्या हो सकती है?

करीब-करीब निश्चय से कहा जा सकता है कि अशोक ने इसके बाद और कोई विजय नहीं की। परन्तु अपने विशाल साम्राज्य के होते हुए भी उसने कलिंग को क्यों जीता और अपने अधीन किया, यह रहस्य कुछ समझ में नहीं आता। अगले अध्याय में हम देखेंगे कि उसका साम्राज्य कितना विस्तृत था और वह कितनी विपुल सत्ता का अधीश्वर था।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय २

अशोक का साम्राज्य और प्रशासन

इस अध्याय में हम भरसक यह पता लगाने का यत्न करेंगे कि अशोक का साम्राज्य कहां-कहां तक फैला हुआ था और यह जानने का यत्न करेंगे कि उसकी सत्ता और प्रभुत्व किस क्षेत्र में था। और इसके बाद हम विचार करेंगे कि वह अपने राज्य में कैसे प्रशासन करता था, और क्या उसने अपने प्रशासन में कोई नयी बातें जारी कीं। इन दोनों बातों की जांच, हम मुख्यतः, उसके लेखों के साक्ष्य से ही करेंगे। इनमें से पहले प्रश्न के बारे में, अर्थात् उसके राज्य के विस्तार के विषय में, हमें अन्तरंग साक्ष्य (internal evidence) और बहिरंग साक्ष्य दोनों, विचार के लिए उपलब्ध हैं। बहिरंग साक्ष्य तो वह है जो उसके स्मारकों के प्राप्ति-स्थानों से मिलता है। हमारे लिए इनमें से सबसे महत्त्वपूर्ण लेख शिला प्रज्ञापन हैं क्योंकि वे इस देश की सीमाओं पर मिले हैं। अब हम पूर्व से शुरू करके पश्चिम की ओर चलेंगे। उसके चौदह शिला प्रज्ञापनों की दो प्रतियां बंगाल की खाड़ी के पास, उसके राज्य-क्षेत्र के दक्षिण-पूर्वी भाग में मिली हैं। इनमें से उत्तर वाली प्रति उड़ीसा के पुरी जिले में, भुवनेश्वर से लगभग सात मील

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूर, धौलि नामक गांव में है । दक्षिण वाली प्रति मद्रास प्रान्त के गंजाम जिले में जौगड़ा कस्बे में अवस्थित है। शिला प्रज्ञा-पनों के ये दोनों रूप नये जीते गये कलिंग प्रान्त में खोदे गये थे; यह कलिंग ही, जो भारत के सबसे अधिक दक्षिण-पूर्वी भाग में था, अशोक के साम्राज्य की सबसे अधिक दक्षिण-पूर्वी सीमा बनाता होगा । उत्तर की ओर आने पर हम देखते हैं कि अशोक के शिला-प्रज्ञापनों की एक तीसरी प्रति देहरादून जिले में कालसी गांव के पास मिलती है। पश्चिम की ओर चलने पर हमें दो रूप मिलते हैं, जो दोनों उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में पाये जाते हैं। इनमें से एक ऐबटाबाद से पन्द्रह मील उत्तर में, मानसेरा (जिला हज़ारा) में खोदा गया है और दूसरा पेशावर जिले में, पेशावर से चालीस मील उत्तर-पूर्व में शाह-बाजगढ़ी में उत्कीर्ण है। यहां से दक्षिण की ओर चलें और पश्चिमी तट पर पहुंच जाएं तो हमें एक प्रति काठियावाड़ में जूनागढ़ के पास मिलती है और एक दूसरी प्रति बम्बई से लगभग सैंतीस मील उत्तर में, थाना जिले के सोपारा स्थान पर प्राप्त होती है। अशोक के साम्राज्य की दक्षिणी सीमा पर इन चौदह शिला प्रज्ञापनों में से एक भी नहीं मिला, और वास्तव में, बहुत दिनों तक इसके साम्राज्य के दक्षिणी सीमान्त पर इसका एक भी स्मारक विद्यमान होने का पता नहीं चला था। पर १९०३ में, श्री लुइस राइस के यत्न से, गौण शिला प्रज्ञा-पनों की (चौदह शिला प्रज्ञापनों की नहीं) तीन प्रतियां उत्तरी मैसूर के चित्तलदुर्ग जिले में, एक-दूसरे के आस-पास, तीन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थानों पर मिलीं। इन शिला प्रज्ञापनों से, जिनके प्राप्ति-स्थानों का उल्लेख हमने अभी किया है, हमें अशोक के राज्य-क्षेत्र के विपुल विस्तार की काफी यथार्थ धारणा हो जाती है। अब हम यह देखेंगे कि इन अभिलेखों में जो कुछ लिखा हुआ है वह हमें इस विषय में क्या बताता है। दूसरे शब्दों में, अब हमें यह देखना है कि बहिरंग साक्ष्य अंतरंग साक्ष्य से कहां तक मेल खाता है।

कम से कम दो प्रज्ञापनों (शि० प्र० २ और १३) में अशोक अपने समकालीन राजाओं का उल्लेख करता है। इनमें से जो भारत के बाहर शासन कर रहे थे उनमें यवन राजा अंतियोक और उससे परली ओर, चार राजा––तुरमाय, अंतेकिन, मग और अलिकसुन्दर––थे। अशोक के साम्राज्य के दक्षिण में, पर भारत में ही, चोड़, पांड्य, केरल पुत्र, सातियपुत्र और तंबपंनि थे। फिर यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि दो स्थानों पर (शि० प्र० ५ और १३), अशोक अपने बहिर्वर्ती प्रान्तों का उल्लेख करता है। वे हैं योन, कंबोज, गंधार, रास्तिक-पेतेनिक, भोज-पेतेनिक, नाभक, नाभपंति, आंध्र, और पुलिंद। शिला प्रज्ञापन १३ में एक पदावलि के गलत पढ़ लिये जाने तथा गलत अर्थ कर लिये जाने के कारण, बहुत दिनों तक वे सबके सब **हिंद-राजा** या अशोक के राज्य के सामंतीय सरदार माने जाते रहे। पर इस प्रज्ञापन के गिरनार वाले लेख के एक नष्टांश की पुनः प्राप्ति से यह अर्थ गलत सिद्ध होता है। और हमें ये नाम उन पराधीन जातियों के मानने पड़ते हैं जो अशोक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के साम्राज्य के सीमांत प्रदेशों में बसी हुई थीं। यह परमावश्यक है कि पहले इन प्रदेशों की, और बाद में उन राज्यक्षेत्रों की जिन पर भारत में उसके स्वाधीन पड़ौसियों का शासन था, सीमाएं तय कर ली जाएं।

योन कौन थे? वे निश्चित रूप से ग्रीक थे। पर उनका स्थान कहां तय किया जाय? यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि वे अशोक के साम्राज्य का हिस्सा थे और इसलिए उनका उसके ग्रीक पड़ौसियों के राज्यक्षेत्र से कोई वास्ता नहीं था। इस योन प्रान्त को, जो अशोक के शासन के अधीन था, अब तक संतोषजनक रूप से नहीं पहचाना जा सका। पर मैंने एक और स्थान पर सिद्ध किया है[1] कि भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर, पूर्व-सिकन्दर काल का एक ग्रीक उपनिवेश था और यह कोफेन और सिन्धु नदियों के बीच में बसा हुआ था। मेरा अब भी यही विचार है। शिला प्रज्ञापन १३ में अशोक कहता है कि मेरे साम्राज्य में यवनों के प्रदेश के अलावा और कोई ऐसा स्थान नहीं जहां ब्राह्मण संघ और श्रमण संघ न हों। इसका यह अर्थ हुआ कि यवन प्रान्त ही एक ऐसा स्थान था जहां हिन्दू आर्य सभ्यता का प्रसार नहीं हुआ था। भारत के एक पड़ौसी क्षेत्र में यह बात तभी संभव हो सकती है जब यह माना जाय कि इसमें यवन लोग रहते थे और इसलिए वहां सिर्फ हैलैनिक सभ्यता फली हुई थी। फिर, यदि ग्रीकों से भारतीयों का पहला परिचय सिकन्दर महान् ही के समय हुआ होता तो उनकी

१. CL, १९२१, पृ० २५ और आगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किसी और नाम से प्रसिद्धि होती, यवन (आयोनियन) नाम से कभी न होती, क्योंकि सिकन्दर के साथ जो ग्रीक आये थे वे आयोनियन नहीं थे। आयोनिया में ही ग्रीकों की व्यापारिक उन्नति सबसे पहले और सबसे अधिक हुई थी। बहुत दूर-दूर के प्रदेशों में सबसे पहले आयोनियनों ने ही कदम रखा।[1] आयोनियनों ने भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमाओं पर कोई उपनिवेश वस्तुतः बसाया था, यह बात संदिग्ध है। पर इसमें कोई संदेह नहीं कि आयोनियनों की साहसपूर्ण भावना के कारण ईरानियों ने सब ग्रीकों के लिए एक प्रजातीय शब्द (generic word) यौन, बनाया। और भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा पर बसाये गये उपनिवेश को, चाहे उसे बसाने वाले आयोनियन थे या कोई और ग्रीक थे, ईरानियों के पड़ोसी भारतवासियों ने इसी कारण यौन कहना शुरू कर दिया होगा। वही शब्द संस्कृत में यवन है जो पालि में योन है, और यौन का पर्यायवाचक है। पर यौन शब्द का उल्लेख भी संस्कृत साहित्य में मिलता है, और विलक्षण बात यह है कि यह, कम से कम एक बार, महाभारत[2] में कंबोज और गंधार के साथ उसी क्रम में लिखा हुआ है जिस क्रम में अशोक के शिला प्रज्ञापन ५ में है। यदि मेरा यह विचार सही है कि योनों का स्थान कहीं सिन्धु और कोफेन के बीच में था, तो वह प्राचीन

---

१. EB, XII; XIV. ७३०

२. XII, २०७ ४३; इसकी ओर सबसे पहले डा० एच० सी० रायचौधुरी ने अपनी पुस्तक "अर्ली हिस्ट्री आफ दि वैष्णव सैक्ट" पृष्ठ १७, में ध्यान खींचा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्थान जिसके खंडहर शाहबाजगढ़ी के पास मिले हैं (शाहबाजगढ़ी में अशोक के शिला प्रज्ञापन का एक पाठ मिला है), और जिसे ह्वेन्त्सांग ने पो-लु-शा कहा है, अशोक के बहिर्वर्त्ती प्रान्त का मुख्यालय (हैडक्वार्टर) हो जाता है। और कंबोज को इस योन प्रान्त के कहीं आस-पास रखना होगा। महाभारत में उत्तर-पश्चिम के प्रसिद्ध योद्धाओं के रूप में यवनों के साथ ही कंबोजों का उल्लेख किया गया है। और द्रोणपर्व[1] में उनकी राजधानी राजपुर का भी उल्लेख है। यदि यह राजपुर वही है जिसे ह्वेन्त्सांग[2] ने हो-लो-शे-पु-लो कहा है और यदि हो-लो-शे-पु-लो को कनिंगहम[3] ने कश्मीर के दक्षिण में स्थित राजौरी के रूप में ठीक पहचाना है तो हम कंबोज का स्थान कुछ निश्चय के साथ निर्धारित कर सकते हैं। यह राजौरी के चारों ओर का प्रान्त रहा होगा, जिसमें उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त का हज़ारा जिला भी शामिल होगा और शायद मानसेरा (मनसहरा) के समीप ही, जहां अशोक के चौदह शिला प्रज्ञापनों की एक प्रति मिली है, एक सब-डिवीजन का मुख्यालय होगा। इस प्रकार कंबोज प्रान्त योन को छूता होगा, और ये दोनों गंधार को छूते होंगे जिसकी राजधानी अशोक के समय में तक्षशिला थी, जहां राज-प्रतिनिधि के रूप में एक राजकुमार रहता था, जैसा कि हम और आगे चल कर देखेंगे।

१. ४.५; इस निर्देश के लिए मैं डा० रायचौधुरी का ऋणी हूँ।

२. बील, १. १६३; मैटर्स, L. २८४।

३. Ancient Geography of India, पृ. १२९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

श्री सेनार्ट की यह कल्पना सही मालूम होती है कि शिला प्रज्ञापन १३ में वहिर्वर्त्ती प्रान्तों की गणना एक निश्चित क्रम में की गयी है। इसलिए नाभक के नाभपंतियों की खोज योन-कंबोजों और भोज-पेतनिकों के बीच में, अर्थात् उत्तर-पश्चिमी सीमाप्रान्त और भारत के पश्चिमी तट के बीच में किसी जगह, करनी चाहिए। इससे बूलर [1] का यह सुझाव कमजोर पड़ जाता है कि अशोक के प्रज्ञापन का नाभक शब्द नाभिकपुर होगा जिसे ब्रह्मवैवर्त्त पुराण उत्तर कुरु या किसी हिमालय-पार प्रदेश में बताता है। और किसी अन्य विद्वान ने कोई नया सुझाव नहीं प्रस्तुत किया। दक्षिण की ओर चलने पर हम देखते हैं कि शिला प्रज्ञापन १३ में भोज-पैतनिक का उल्लेख है जो शिला प्रज्ञापन ५ के रास्तिक-पेतनिक का संवादी (Corresponding) है। विद्वान लोग अब तक पैतनिक को रास्तिक और भोज दोनों से अलग करते रहे हैं और इसे एक अलग जाति 'पैठ' का वाचक मानते रहे हैं। पर यह गलती है। निःसंदेह पेठनिक जैसे शब्द को प्रतिष्ठान (पैठन) से व्युत्पादित करना सम्भव है। पर इस शब्द का अर्थ 'पैठ के निवासी' हो सकता है, यह शब्द कंबोज या गंधार जैसे किसी कबीले का वाचक नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त, पेठनिक में मूर्धन्य 'ठ' है और पेतनिक में दंत्य 'त'। इस तरह पेतनिक पेठनिक का सूचक नहीं हो सकता जैसा कि सबसे पहले बूलर ने सही

1. Beitrage Zur Erklasung der Asoka-Inschrifte, पृ० ११८.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तौर से बताया था। फिर, जैसा कि मैं अन्यत्र प्रदर्शित कर चुका हूँ[1], 'रट्ठिक पेत्तनिक' पदावलि अंगुत्तर निकाय में उस शासक को सूचित करने के लिए प्रयुक्त हुई है जिसका दर्जा निचला, राजा से ठीक पिछला, है, और टिप्पणीकार ने व्याख्या करते हुए पेत्तनिक उसे बताया है "जिसके पास मौरूसी सम्पत्ति हो।" इसलिए अशोक के लेखों में प्रयुक्त रास्टिक-पेतनिक को एक शब्द मानना चाहिए, जो "किसी राष्ट्र या प्रान्त के आनुवंशिक (यानी मौरूसी) शासक का वाचक है, चाहे शुरू में उस शासक का पूर्वज किसी राजा द्वारा नियुक्त राज्यपाल ही रहा हो। प्राचीन भारत में ऐसे कितने ही शासक हुए होंगे। परन्तु शिला प्रज्ञापन ५ में उल्लिखित शासकों को हमें कहीं पश्चिमी तट पर तलाश करना है क्योंकि वहां उन्हें अपरान्तों—पश्चिमी तट के लोगों—में रखा गया है। स्वभावतः ये वही माने जाएंगे जो पश्चिमी भारत के गुफा लेखों में महारठी कहे गये हैं—ये छोटे शासक मालूम होते हैं, जिनका पूना और महाराष्ट्र के उसके आसपास वाले जिलों पर अधिकार था। इन लेखों में महाभोजों का भी छोटे शासकों के रूप में, तथा बंबई प्रान्त के वर्त्तमान थाना और कोलाबा जिलों के अधिपति के रूप में उल्लेख है। वे निश्चित रूप से वही होंगे जो शिला प्रज्ञापन १३ के भोज-पेतनिक हैं, और ये अपरान्त की कोई और जाति थे जिसका उल्लेख शिला प्रज्ञापन ५ में ध्वनित होता है। प्राचीन काल में अपरान्त की

१. I. A. १९१९, पृ० ८०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजधानी शूरपारक (आजकल का सोपारा जो थाना जिले में है) थी, जहां चौदह शिला प्रज्ञापनों की एक प्रति भी मिली है।

कृष्णा और गोदावरी जिलों के बीच के प्रदेश को आजकल आंध्र देश, अर्थात् आंध्रों का देश, कहते हैं। पर यह स्पष्ट नहीं है कि क्या आंध्रों का मूल स्थान यही था। एक बौद्ध जातक में आंध्रपुर (आंध्रों की राजधानी) नामक एक स्थान का जिक्र है और यह तेलवाहा नदी पर बताया गया है। मैंने अन्यत्र यह सुझाव प्रस्तुत किया है कि तेलवाहा आजकल की तेल या तेलिंगिरि नदियों में से है जो एक दूसरी के आस-पास मद्रास और मध्य प्रदेश की सांझी सीमा पर बहती हैं।[1] इससे कुछ हद तक यह सिद्ध होता है कि आरम्भिक काल में आंध्र देश में जयपुर और मद्रास प्रान्त के विशाखापटनम जिले का कुछ भाग तथा मद्रास की सीमा से लगे हुए मद्रास के कुछ जिले सम्मिलित होंगे। और यह जरा भी असंभव नहीं कि निजाम राज्य के दक्षिणी भाग, और वर्त्तमान तैलंगाना के संवादी कृष्णा और गोदावरी जिले भी इसके अन्तर्गत रहे हों। मेगास्थनीज ने आंध्र देश की उस समय की आबादी और सैनिक शक्ति का वर्णन किया है जिस समय वह मौर्यवंश के अधीन नहीं हुआ था। इससे हम पर यह प्रभाव पड़ता है, जैसा कि वी० ए० स्मिथ[2] ने ठीक ही कहा है कि आंध्र राष्ट्र की सैनिक शक्ति "इस कारण विख्यात थी कि वह प्रासी के राजा चन्द्र-

---

१. वही, १९१८, पृ० ७१।

२. EHI, पृ० २०६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गुप्त मौर्य की ही सैनिक शक्ति से दूसरे नम्बर पर थी।" इससे स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि आंध्र देश बहुत विस्तृत क्षेत्र रहा होगा और दक्षिण में कृष्णा के मुहाने तक गया हुआ होगा। हम आगे चलकर देखेंगे कि इसका, स्वतन्त्र चोल राज्य की अत्यन्त संभावित उत्तरी सीमाओं से भी, मेल बैठता है। अब हमें पुलिंदों का स्थान तय करना है। यह सत्य है कि पुलिंद किसी एक जिले तक सीमित नहीं थे बल्कि उनके अनेक अलग-अलग प्रान्तों में होने का उल्लेख है। पर शिला प्रज्ञापन १३ में उन्हें आंध्रों के साथ रखा गया है जिससे पता चलता है कि हमें उनका स्थान आंध्रों के कहीं उत्तर या उत्तर-पूर्व में मानना होगा। वायु पुराण में पुलिंदों की दक्षिणी शाखा को विंध्यमूलीय अर्थात् विंध्याचल की तलहटी के निवासियों'[१] के साथ रखा गया है, और सभापर्व[२] में उनकी राजधानी पुलिंदनगर बतायी गयी है और उनका राज्य चेदि देश से लगा हुआ कहा गया है। इस प्रकार अशोक के पुलिंदों का बहुत संभावित स्थान मध्यप्रदेश का जबलपुर जिला हुआ जिसके अन्तर्गत रूपनाथ भी है जहां उसके गौण शिला प्रज्ञापनों की एक प्रति प्राप्त हुई है।

अशोक के शिला प्रज्ञापनों की विलक्षणता यह है कि वे उसके राज्य के सीमांतों पर या उनके आसपास मिलते हैं।

---

१. मार्कण्डेय पुराण, अनुवादक एफ. ई. पार्जीटर, पृ० ८३५ और टिप्पणियां।

२. २९. II.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर उसमें इतना अन्तर है कि चौदह शिला प्रज्ञापन तो बहिर्वर्त्ती प्रान्तों की राजधानियों में उत्कीर्ण किये गये हैं, पर गौण शिला प्रज्ञापन अधिकतर उन स्थानों पर हैं जो उसके राज्यक्षेत्र को उसके स्वतन्त्र या अर्ध-स्वतन्त्र पड़ौसियों के प्रदेशों से पृथक् करते हैं। यह तो हमें असंदिग्ध रूप से पता है कि धौलि और जौगड़ा, जहां चौदह शिला प्रज्ञापनों की अधिकतम दक्षिण-पूर्व वाली प्रतियां प्राप्त हुई हैं, एक बहिर्वर्त्ती प्रान्त की राजधानी, तोसाली, को और इसके सब-डिवीजन के मुख्यालय, समापा, को निरूपित करते हैं। इन प्रज्ञापनों का एक तीसरा पाठ जूनागढ़ में मिला है जिसे प्राचीन काल में गिरिनगर कहते थे; यह सौराष्ट्र की राजधानी था, और **सत्रप** राजा रुद्रदामन के शिला-लेख से हम जानते हैं कि यह द्वितीय शताब्दी ई० प० के मध्य तक राजधानी रहा। हम देख चुके हैं कि एक चौथी प्रति बंबई के पास सोपारा में मिली है, और कि यह सोपारा अपरांत का मुख्य नगर था। जब कम से कम चार पाठ प्राचीन प्रांतों की राजधानियों में मिले हों, तब यह कल्पना करना असंगत नहीं कि शेष तीन प्रतियां भी सीमान्त जिलों के मुख्य नगरों में उत्कीर्ण की गयी होंगी। इनमें से शाहबाजगढ़ी, उपर्युक्त कारणों से, योन प्रान्त का मुख्य नगर प्रतीत होता है। और यदि निकट भविष्य में कालसी और मनसेरा के बारे में यह ज्ञात हो कि वे अशोक के राज्य के बहिर्वर्त्ती प्रान्तों के मुख्य नगर थे तो हमें आश्चर्य न होना चाहिए। गौण शिला प्रज्ञापनों के प्राप्ति-स्थानों की स्थिति कुछ भिन्न है—इनमें से अधिकांश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

घने जंगलों के बीच में पाये गये हैं जहां आसपास कोई प्राचीन अवशेष नहीं । इसके सिर्फ दो अपवाद हैं, अर्थात् वैराट और मस्की । वैराट विराटपुर या मत्स्य देश के राजा विराट की राजधानी था । मस्की को उसके चालुक्यकालीन अभिलेखों में पिरियमासंगी कहा गया है । अन्य सब स्थानों पर ऐसा प्रतीत होता है कि ये शिलालेख अशोक के राज्य को स्वतन्त्र तथा अर्ध-स्वतन्त्र राज्यों से पृथक् करने वाली सीमा रेखा के आसपास थे । गौण शिला प्रज्ञापन १ में अशोक विस्तार से प्रतिपादन करता है कि यदि जनता का आध्यात्मिक उत्कर्ष करना है तो प्रबल प्रयत्न करना परमावश्यक है, और हमें बताता है कि मैं थोड़े समय के भीतर भी बहुत कुछ कर सका हूं । और वह इस महत्वपूर्ण तथ्य का दो उद्देश्यों से उल्लेख करता है— पहला तो यह कि उसके, छोटे-बड़े सब अफसर, प्रजा के आध्यात्मिक लाभ के लिए प्रयत्न करें, और दूसरा यह कि अंतों, या सीमावर्ती राज्यों के शासकों को भी इसका ज्ञान हो जाए, संभाव्यत: इसलिए ताकि वे भी इसी ध्येय से अपने अफसरों को प्रयत्न करने के लिए प्रेरित करें । अपने अफसरों को इस दिशा में यत्नशील रखने के लिए, अशोक का इन प्रज्ञापनों को उत्कीर्ण कराना अनावश्यक था । अपने सब आदेशों के अनुसार यह आदेश भी उसने उचित मार्ग से उन तक पहुंचा दिया होगा । इस प्रकार गौण शिला प्रज्ञापन उसके स्वाधीन पड़ौसियों की जानकारी के लिए, उनकी राजधानियों में अथवा उनके और अशोक के राज्य के सांझे सीमान्त पर उत्कीर्ण कराये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गये थे। यह बात तब बिलकुल स्पष्ट हो जाएगी जब हम यह विचार करेंगे कि ये अंत, अर्थात् सीमावर्ती राज्यों के शासक कौन थे।

ऊपर यह बताया गया है कि शिला प्रज्ञापन २ और १३ में उन **अंतों** की संख्या गिनायी गयी है जिनके साथ उसके स्वाधीनता और समता के संबंध थे। उनको दो समूहों में बांटा जाता है—एक वे जिनके राज्य भारत में थे और दूसरे वे जिनके राज्य भारत से बाहर थे। पहले समूह में, जैसे कि हम ऊपर देख चुके हैं, चोड़, पांड्य, केरलपुत्र, सातियपुत्र, और तंबपन्नि राजा थे। प्रथम तो यह ध्यान देने की बात है कि चोड़ और पांड्य बहुवचन में प्रयुक्त हुए हैं जबकि सातियपुत्र और केरलपुत्र एक वचन में। इसी तथ्य से कि पिछले दोनों का उल्लेख एक वचन में किया गया है, यह भी स्पष्ट है कि यहां अशोक जातियों की चर्चा नहीं कर रहा, उनके शासकों की चर्चा कर रहा है। इसलिए जब वह वैयक्तिक शासकों की चर्चा कर रहा है और बहुवचन में चोड़ों तथा पांड्यों का उल्लेख करता है तब एकमात्र तर्कसंगत अनुमान यही हो सकता है कि अशोक के समय में, एक से अधिक चोड़ और एक से अधिक पांड्य राजा थे। इन चार नामों में से तीन के राज्य क्षेत्र, टालेमी और पेरिप्लस के प्रणेता द्वारा प्रस्तुत सामग्री के आधार पर, पहचान लिये गये हैं। पर इस बात पर ध्यान नहीं दिया गया कि टालेमी एक के बजाय दो चोड़ राज्यों का उल्लेख करता है। पहले का मुख्य नगर "ओरथौर" था "जो

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सोरनागोस की राजधानी था" और सोरतइ[१] के अन्तर्गत था। आसानी से पहचाना जा सकता है कि सोरनागोस और सोरतई में जो सोर शब्द है वह तमिल भाषा का सोर या चोड़ है। और सोरनागोस नाम से स्पष्ट प्रकट होता है कि जिस राजा की राजधानी ओरथौर थी वह नाग कबीले का था, पर वह सोर (चोड़) कहलाता था क्योंकि वह सोरतई (चोड़त्रा) का शासक था। कनिंगहम ने बताया है कि त्रिचनापल्लि के निकट उरैयूर नामक स्थान ही ओरथौर है। इसलिए यह दक्षिणी चोड़ राज्य था। उत्तरी चोड़ राज्य के स्थान का संकेत टालेमी के इस कथन से मिलता है कि बैट्टिगो पर्वत और एडीसैथ्रोस पर्वत के बीच में सोरई यायावर (Nomads) हैं जो "एर्कोटोस की राजधानी सोर"[२] में रहते हैं। "एर्कोटोस की राजधानी सोर" शब्द "सोर की राजधानी एर्कोटोस" के स्थान पर भूल से लिखे गये समझे जाते हैं। काल्डवेल के अनुसार एर्कोटोस आजकल का आरकाड़ (अर्काट) है। बहुत संभाव्यत: सोरई जरा भी यायावर नहीं थे--आर्यों ने आदिमजातियों के प्रति अपनी घृणा व्यक्त करने के लिए उन्हें यायावर कहा, और इसी तरह उनका नाम भी चोड़ (सोड़) या "चोर"[३] रखा। इस प्रकार चोड़ राज्य दो थे जिनकी राजधानियां ओरथुर (उरैयूर) और एर्कोटोस (अर्काट) में थीं। पांड्यों को टालेमी ने "पांडिनोइ" लिखा है और "मोडौरा" को

१. IA, XIII, ३६८।
२. वही, पृ ठ ३६२।
३. CL, १९१८ पृ० ८–९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"पांडियोन की राजधानी" बताया है। यह मोडौरा निश्चित रूप से मद्रास प्रान्त का मदुरा नगर है। टालेमी के अनुसार, पांड्य देश दक्षिण में तिन्नेवेली तक और उत्तर में कोइंबटूर दर्रे की आस-पास की उच्चभूमियों तक फैला हुआ था। यह सत्य है कि टालेमी ने दो चोड़ राज्यों की तरह दो पांड्य राज्यों का उल्लेख नहीं किया। पर इसका यह अभिप्राय होना आवश्यक नहीं कि अशोक के काल में दो पांड्य राज्य न थे। छठी शताब्दी ई० प० तक में वराहमिहिर उत्तर पांड्यों[1] का उल्लेख करता है जिससे प्रकट होता है कि उसके समय में दो, उत्तरी और दक्षिणी, पांड्य राज्य थे। संभवत: यही अवस्था तब रही होगी जब अशोक ने अपने प्रज्ञापन जारी किये। जो हो, यदि जरा देर के लिए यह मान भी लिया जाए कि उसके समय में सिर्फ एक पांड्य राज्य था तो उस प्रदेश का कुछ पता नहीं चलता जो अब मैसूर राज्य कहलाता है। दूसरी ओर, यदि एक उत्तरी पांड्य राज्य का अस्तित्व मान लिया जाए तो इस स्थान का बड़ा सुन्दर समाधान हो जाता है। शेष दो दक्षिणी राज्य केरलपुत्त और सातियपुत्त हैं। पिछले पुत्त शब्द से हमें इसके प्राकृत रूप ओत (संस्कृत-पुत्र) का ध्यान आ जाता है जो भार्मलोत, भुचरोत, बालोत आदि शब्दों में है और जो वैसा ही है जैसा इंग्लिश में राबर्टसन, स्टिवेनसन आदि कुछ नामों का पिछला अंश 'सन' (पुत्र). है।[2] इसलिए

१. बृहत्संहिता, XVI, १०.

2. JASB, १९०९, पृ० १६८ और टि. ४

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह प्रतीत होता है कि केरल (चेर) और सातिय नामक कबीले पहले उत्तर भारत में रहते थे, जहां से प्रव्रजन करके वे दक्षिण चले गये और वहां उन्होंने अपने उपनिवेश स्थापित कर लिये जो, कम से कम आरम्भिक काल में, केरल और सातिय के बजाय केरलपुत्त और सातियपुत्त नाम से प्रसिद्ध थे। आजकल भी ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जिनमें प्रान्तों के नाम किसी प्रव्रजित जाति के नाम पर पड़ गये हैं और उस जाति का नाम उसके मूल कबीले के नाम से निकला हुआ है।[१] केरल (चेर) और सातिय के मामले में भी यही बात हुई होगी। ऐतरेय आरण्यक[२] से पता चलता है कि चेरों की बस्ती मगध से बहुत दूर नहीं थी। ये संभाव्यतः जिला मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश) के चेरो थे, और मलाबार में बसने से पहले वे दक्षिण की ओर गये थे, इस बात का संकेत ढोयिक[३] के पवनदूत में आये इस उल्लेख से मिलता है कि केरल ययातिनगर में थे—यह ययातिनगर आजकल मध्यप्रदेश के पूर्वी भाग में सोनपुर के पास एक छोटे कस्बे के रूप में पहचाना गया है।[४] इसी प्रकार

१. पश्चिमी राजस्थान में सेखावाटी और बीडावाटी भूभागों का नाम शेखावट और बीडावट के नामों पर पड़ा है और ये दोनों शेखा और बीडा के वंशज थे।

२. II. १. १.

३. JASR. १९०५, पृ० ४४.

४. EI· XI, १८९ : डिस्क्रिप्टिव लिस्ट्स आफ इन्स्क्रिप्शन्स इन दि सी० पी० एंड बरार, ले. रायबहादुर हीरालाल, पृ० ९५ और टिप्पणियां।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

क्या मूल सातिय लोग वही नहीं हो सकते जिन्हें मेगास्थनीज ने सेटी कहा है तथा उत्तर में बताया है,[१] और जिनका विष्णु पुराण[२] और भीष्म पर्व[३] में उल्लेख है पर वह सतीय या सनीय शब्दों से है ? दक्षिण भारत में उनका उपनिवेश कहां बसा, यह निश्चित नहीं। टालेमी और पेरिप्लस के प्रणेता ने दक्षिण भारत के बारे में जो सामग्री प्रस्तुत की है उसकी विवेचनात्मक समीक्षा से शायद कुछ पता चल सके। वे दक्षिण भारत में चार देश बताते हैं––लिमीराइक, एइओइ, पांडिओनि और सोरतई। पिछले दो के बारे में हम देख चुके हैं कि वे क्रमशः पांड्य और चोड़ देश हैं। लिमीराइक दमीर-आइक का तुल्यवाचक समझा जाता है, पर इसका अधिकांश केरलपुत्त के अधीन था। पर एइओइ क्या है ? जैसे कभी-कभी सैंड्रोकोट्टोस के स्थान पर एंड्रोकोट्टोस और सबिरिया के स्थान पर अबिरिया लिखा जाता है, क्या वैसे एइओइ सेइओई (= सातिय) हो सकता है ? यदि यह अटकल सही है तो सातियपुत्त का राज्य आधुनिक तिरुवांकुर होगा। क्योंकि दमीर-आइक केरलपुत्त के अधीन था, इसलिए दक्षिण कन्नाड़ा, कोड़गू (कुर्ग), मलाबार, तथा मैसूर का उत्तर पश्चिमी भाग, और शायद तिरुवांकुर का सबसे अधिक उत्तर की ओर का भाग भी केरलपुत्त की ओर के राज्य में शामिल होंगे। पेरिप्लस के प्रणेता के समय मौजिरिस (= मुयुरि

१. IA, VI, ३३९

२. VP, (विल्सन), II, १८०।

३. पर्व ९, श्लोक ६३.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कोडु) या आधुनिक क्रांगानूर[1] केरलपुत्त की राजधानी था, जो टालेमी के लिखने के समय करौर, अर्थात् कोइंबटूर जिले में कावेरी नदी के किनारे कारूर स्थान पर था।[2] अशोक द्वारा निर्दिष्ट दक्षिणी राज्यों की ठीक-ठीक सीमाएं निश्चित करना तो सचमुच बड़ा कठिन है पर प्रतीत होता है कि वे सीमाएं आपस में, तथा उसके साम्राज्य की सीमाओं से, मैसूर के चित्तल-दुर्ग जिले के उत्तर में मिलती थीं। क्योंकि इसी जगह, जैसे कि हम देख चुके हैं, उसके गौण प्रज्ञापनों की तीन प्रतियां मिली हैं। यदि इस जगह दक्षिणी राज्य अशोक के प्रदेश को नहीं छूते तो उसका एक-दूसरे के इतने निकट तीन प्रतियां उत्कीर्ण कराने का क्या मतलब हो सकता था? ये राज्य, प्रायः निश्चित रूप से, चोड़ों, (उत्तरी) पांड्यों और केरलपुत्र के राज्य थे।

इस सिलसिले में एक और जाति या देश पर ध्यान देने की आवश्यकता है जिसकी चर्चा अशोक ने शिला प्रज्ञापन १३ में की है। इस देश का नाम अटवी या आटव्य है। इसके विषय में वह कहता है: "यदि कोई व्यक्ति अपकार करे तो उसे भी देवताओं का प्रिय यथासंभव क्षमा करना चाहता है।[3]

---

१. IA, VIII, १४५।

२. वही, XIII, ३६७–८।

३. इसकी तुलना 'खमिसति ने देवानांपिये अफाका ति ए चकि ये खांमिएवे' से करो जो अशोक ने धौलि और जौगड़ा के पृथक प्रज्ञापनों में अंतों, यानी सीमान्तों, के शासकों की प्रजाओं के विषय में कहे हैं। (लेख, A· पृष्ठ ८९–९०)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और देवताओं का प्रिय अपने साम्राज्य में रहने वाले वनवासियों के प्रति समझौते की भावना प्रदर्शित करता है और उन्हें बुरे कार्यों से रुकने के लिए कहता है। देवानांप्रिय के पास शक्ति है यद्यपि वह अनुताप कर रहा है। (इसलिए) उनसे कहा जाता है कि 'वे अपने बुरे कार्यों पर लज्जित हों जिससे उनके जीवन का नाश न हो'।" इससे यह प्रतीत होता है कि आटव्य या वनवासी लोग पूरी तरह अशोक के अधीन नहीं थे, बल्कि कुछ अंश तक स्वाधीन थे। अन्यथा यह कहने का कोई मतलब नहीं कि यद्यपि उन्होंने मेरा अपकार किया है और यद्यपि मेरे पास उन्हें दण्डित करने की शक्ति है पर तो भी मैं उन्हें अपने पक्ष में करने के लिए साम, यानी मैत्री, का मार्ग अपना रहा हूं — इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसने यह मार्ग इसी कारण अपनाया कि वह धम्म का कट्टर अनुयायी हो गया था। ये आटव्य कौन थे? पुराणों में इनका उल्लेख पुलिंदों, विंध्यमूलीयों और वैदर्भों के साथ है। और एक ताम्र-पत्र में एक परिव्राजक राजा हस्तिन को डभाला राज्य और अट्ठारह वन राज्यों (अटवी राज्यों) का स्वामी बताया गया है। डभाला डहाला का पुराना रूप होगा जो आधुनिक बुन्देलखंड है। अटवी देश, जिसमें गुप्त काल में छोटे-छोटे कम से कम अट्ठारह राज्य थे, बघेलखंड से लगाकर उड़ीसा में करीब-करीब समुद्र तट तक रहा होगा। और इससे इस बात की व्याख्या भी हो जाती है कि उसके गौण शिला प्रज्ञापनों की दो प्रतियां रूपनाथ और सहसराम में, जो अटवी देश के पूर्वी और पश्चिमी सीमांतों पर थे, क्यों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मिलती हैं। धौलि और जौगड़ा के पृथक् प्रज्ञापनों में अशोक अपने राज्य कर्मचारियों को उद्बोधित करता है कि वे उसकी दया और प्रेम की नीति सीमावर्त्ती क्षेत्र के लोगों को बताएं। उड़ीसा में, स्वाधीन या अर्धस्वाधीन अटवी देश के अलावा और कोई राज्य अशोक के साम्राज्य के सन्निकट नहीं हो सकता था।

इस प्रकार हमें अशोक के साम्राज्य के विस्तार की काफी परिशुद्ध धारणा हो जाती है। भारत के धुर दक्षिण के भाग को छोड़कर, जिस पर चोड़, पांड्य, सातियपुत्र और केरलपुत्र राजाओं का अधिकार था, सारा भारत उसके राज्य-क्षेत्र के अन्तर्गत था। यदि पूर्व में मद्रास के पास पुलिकाट से उत्तर में चित्तलदुर्ग तक, जहां अशोक के गौण शिला प्रज्ञापनों की तीन प्रतियां मिली हैं, और फिर पश्चिम में दक्षिण कनाड़ा जिले की उत्तरी नोक तक एक रेखा खींची जाए तो वह मोटे तौर इसकी दक्षिणी सीमा बन जाएगी।

आइए, अब हम यह देखें कि अशोक ने किन ग्रीक राजाओं को अपने समकालीन बताया है, और वे कौन थे। उन सबके नाम शिला प्रज्ञापन १३ में हैं। इनमें सबसे पहिले अंतियोक का नाम है जो अशोक का पड़ौसी था। आगे वह कहता है कि अंतियोक से परे चार राजा तुरमाय, अंतेकिन या अंतिकिनि, मग और अलिकसु (न्) दर राज्य करते हैं। अंतियोक निश्चित रूप से सीरिया का राजा एंटियाकस द्वितीय थियोस (ई० पू० २६१-२४६) और तुरमाय मिश्र का टालेमी द्वितीय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फिलाडेल्फोस है (ई० पू० २८५-२४७)। अंतेकिन या अंतिकिनि, जैसा बूलर ने कहा है, ग्रीक के एंटिगोनस[1] शब्द की अपेक्षा एंटिजीनस का अधिक संवादी है। पर क्योंकि एंटिजीनस नाम के किसी राजा का पता नहीं चलता इसलिए अंतेकिनि को मेसिडोनिया का एंटिगोनस गोनाटास (ई० पू० २७६-२३९) माना गया है। मग तो स्पष्टतः सिरीन का मगस (ई० पू० लगभग ३००—लगभग २५०) है पर अलिकसुन्दर के बारे में कुछ संशय है—कुछ लोगों का विचार है कि यह एपिरस का अलैग्जेंडर (ई० पू० २७२—ल० २५५) था और कुछ का विचार है कि यह कोरिंथ का अलैग्जेंडर (ई० पू० २५२-ल० २४४)[2] था। शिला प्रज्ञापन २ में सिर्फ एंटियोकस का उल्लेख है, और अन्य राजाओं को उसके सामन्त यानी सीमावर्त्ती राजा कहा गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि इन ग्रीक राजाओं में से सिर्फ एंटियोकस के राज्य की सीमा अशोक के राज्य की सीमा से मिलती थी। और हम यह भी जानते हैं कि चन्द्रगुप्त के समय से सेल्युकस और मौर्यों के राजवंशों में मैत्री के सम्बन्ध तथा दूतों का आदान-प्रदान था। पर क्या अशोक अन्य ग्रीक राजाओं का भी मित्र था? क्या उसका उन राजाओं से कोई राजनयिक समागम हुआ था? अशोक के और उनके राज्यों के बीच में बहुत अधिक दूरी रही होगी, और, प्रथमदृष्ट्या, यह संभाव्य नहीं प्रतीत होता कि

---

१. ZDMG, XL, १३७

२. JRAS, १९१४, ९४५

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत में तथा सीरिया से परे ग्रीक राज्यों में कोई राजनैतिक समागम रहा होगा। पर जहां तक शिला प्रज्ञापन १३ का सम्बन्ध है, इससे यह स्पष्ट ध्वनित होता है कि वह इन ग्रीक शासकों के दरवारों में दूत भेजा करता था। और सच तो यह है कि हमें पता है कि टालेमी फिलाडेल्फोस ने, जो अशोक का समकालीन था, डायोनीसियोस नामक दूत मौर्य दरवार में भेजा था।

अशोक ने अपने समकालीन ग्रीक शासकों का जो निर्देश किया है उसे, उसका समय परिशुद्ध रूप से निकालने के लिए की गयी गणना का आधार बनाया गया है। पर पहले तो, हमारी गणना का आधार अभिषेकोत्तर वर्षों की संख्या ही हो सकती है, क्योंकि ग्रीक राजाओं का निर्देश या उल्लेख करने वाले प्रज्ञापनों में उसका ही जिक्र मानना होगा। हम देख चुके हैं कि ये शिला प्रज्ञापन २ और १३ हैं। पर इन्हें किन अभिषेकोत्तर वर्षों का मानना चाहिए ? श्री सेनार्ट की राय है कि सारे के सारे शिला प्रज्ञापन अशोक के राज्यकाल (अर्थात् अभिषेकोत्तर काल) के चौदहवें वर्ष में उत्कीर्ण कराये गये थे, और यूरोपीय विद्वानों ने इस विचार का समर्थन किया है। पर एक तरुण बंगाली विद्वान ने इसकी तर्क-संगतता पर आक्षेप किया है, और उसने कुछ तर्क प्रस्तुत करके, जो प्रबल मालूम होते हैं, यह प्रदर्शित किया है कि कम से कम शिला प्रज्ञापन २ और १३ तो राज्यकाल के सत्ताइसवें वर्ष से पूर्व प्रख्यापित किये हुए नहीं हो सकते।[1] यदि यह मान लें कि ये दोनों

१. अशोकाज़ धम्मलिपीज़---लेखक हरित कृष्णदेव, एम. ए.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिला प्रज्ञापन अट्ठाईसवें वर्ष में प्रख्यापित किये गये तो यह समय उस वर्ष का संवादी होना चाहिए जिसमें वे पांचों ग्रीक शासक जीवित थे। यदि शिला प्रज्ञापन १३ का अलिकसुन्दर एपिरस अलैग्जेंडर है तो यह वर्ष २७२ और २५५ के बीच में पड़ेगा और यदि कोरिंथ का अलैग्जेंडर है तो २५२ और २५० के बीच में पड़ेगा। पिछली कल्पना अधिक संभाव्य है।[1] इस तरह हम यह मान सकते हैं कि अशोक के राज्य काल का अट्ठाईसवां वर्ष २५१ ई० पू० से बैठता है। यदि यह गणना सही है तो अशोक संभाव्यत: २७९ ई० पू० के लगभग अभिषिक्त हुआ। इस तरह की गणना का परिणाम चाहे जो हो, पर यह दो बातों पर आधारित है--एक तो शिला प्रज्ञापन २ और १३ का समय और दूसरे, शिला प्रज्ञापन १३ में निर्दिष्ट अलिकसुन्दर की पहचान। और क्योंकि ये दोनों बातें थोड़े-

---

आपका मुख्य संकथन निम्न प्रकार है। स्तंभ प्रज्ञापन ७ सत्ताईसवें वर्ष में उत्कीर्ण कराया गया और सब लोग स्वीकार करते हैं कि यह उन सब विविध कार्यों का सारांश है जो अशोक ने अपने धम्म के प्रचार के लिए उस वर्ष तक किये थे। ग्रीक राजाओं के प्रदेशों में लोकोपकारी कार्य और धम्म का प्रचार करना ऐसी महत्त्वपूर्ण बातें हैं कि यदि अशोक को यह पता चल चुका होता कि विदेशों में किये गये उन कार्यों में कुछ सफलता हुई है तो वह इनका स्तंभ प्रज्ञापन ७ में निश्चय ही उल्लेख करता। इनकी चर्चा का अभाव अर्थपूर्ण है और प्रकट करता है कि शिला प्रज्ञापन २ और १३, स्तंभ प्रज्ञापन ७, अर्थात् २७ वें अभिषेकोत्तर वर्ष, से पहले प्रख्यापित किये गये नहीं हो सकते।

१. JRAS, १९१४, पृष्ठ ९४५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बहुत अनिश्चित प्रकार की हैं, इसलिए अशोक के राज्यारोहण की परिशुद्ध तिथि निकाल सकना हमारे लिए संभव नहीं।

इस प्रकार हमें अशोक के राज्य के विस्तार की काफी अच्छी धारणा हो गयी। अब हम यह देखने का यत्न करेंगे कि उनमें प्रशासन कैसे चलता था। मौर्य प्रशासन पद्धति का साधारण स्वरूप हमें कौटिल्य के अर्थशास्त्र से और मेगास्थनीज के वर्णनों से मालूम हो जाता है। परन्तु यहां हमारा उद्देश्य यह देखना है कि अशोक के लेख स्वयं हमें इस बारे में क्या बताते हैं। यह जांच अनावश्यक न होगी, और निश्चय ही, इससे कुछ नयी, अब तक अज्ञात, बातों पर प्रकाश पड़ेगा।

अशोक का साम्राज्य बड़ा विस्तृत था, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता। इतने विस्तृत साम्राज्य को कोई अकेला व्यक्ति ठीक तरह नहीं संभाल सकता, यह भी माना जा सकता है। इसलिए उसका साम्राज्य कई भागों में बंटा हुआ होगा जो मुगलों के सूबों के संवादी होंगे। और अशोक के लेखों से स्पष्ट रूप से सिद्ध होता है कि उसके साम्राज्य में प्रान्तीय शासन प्रणाली प्रचलित थी। पर उसके समय में, और गुप्त साम्राज्य के परवर्ती काल में भी, प्रान्तीय गवर्नर (राज्यपाल) दो प्रकार के रहे प्रतीत होते हैं। जो प्रान्त राजनैतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण थे और इसलिए जिनमें राजनिष्ठ तथा चातुर्यपूर्ण प्रशासन की आवश्यकता थी, उनका प्रबंध राजवंश के व्यक्तियों को सौंपा जाता था और वे कुमार कहलाते थे। प्रज्ञापनों में ऐसे चार कुमार उपराजों या प्रतिनिधि-शासनों (Viceroyalty)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का निर्देश है। एक कुमार गंधार की राजधानी तक्षशिला में रहता था, क्योंकि सीमाप्रान्त होने के कारण वहां सावधान और विश्वसनीय प्रशासक की आवश्यकता थी। एक दूसरा कुमार सुवर्णगिरि में नियुक्त था जिसका स्थान अभी संतोषजनक रूप से निश्चित नहीं हो सका।[1] पर इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि यह अधिकतम दक्षिणवर्ती, और अतः उस सीमावर्ती प्रान्त की राजधानी था जो चोल, पांड्य और केरलपुत्र राजाओं के स्वतन्त्र राज्यों को छूता था। एक तीसरा कुमार कलिंग का अधिपति था और इसका मुख्यालय तोसली था, जो असंदिग्ध रूप से धौलि है जहां शिला प्रज्ञापनों की एक श्रेणी प्राप्त हुई है। क्योंकि यह एक नया जीता हुआ प्रान्त था इसलिए इसके प्रबन्ध के लिए एक विश्वस्त और सजग शासक की आवश्यकता थी और इसलिए इसे अवश्य ही एक कुमार उपराज (Viceroyalty) बना दिया गया होगा। एक और चौथा प्रान्त था जिसका शासन एक कुमार के अधीन था। यह वह प्रान्त था जिसकी राजधानी उज्जैन थी। न तो यह सीमा प्रान्त था और न नया जीता हुआ ही था, पर तो भी इसका राजनैतिक महत्त्व इतना अधिक रहा होगा कि इसका शासन राजवंश के किसी व्यक्ति को सौंपना आवश्यक था। पर अशोक के समय सिर्फ इतने ही राज्यपाल न रहे होंगे। जैसे कुछ प्रान्तों में कुमारों का शासन था वैसे ही अन्य प्रान्तों में

१. क्या यह प्रो० कृष्णस्वामी अय्यंगार की प्रस्थापना के अनुसार जिला रायचूर (निजाम राज्य) में स्थित कनकगिरि हो सकता है ?

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कुमारेतर व्यक्तियों, अर्थात् राजवंश से असंबन्धित व्यक्तियों, का शासन रहा होगा। यह तो सच है कि अशोक के लेखों से किसी ऐसे प्रान्तीय राज्यपाल का उदाहरण नहीं मिलता, पर इस तरह का एक उदाहरण रुद्रदामन के प्रसिद्ध जूनागढ़ लेख में मिलता है। यह प्राचीन अभिलेख हमें बताता है कि सुराष्ट्र या काठियावाड़ प्रान्त में चन्द्रगुप्त के समय वैश्य पुष्यगुप्त का शासन था और अशोक के समय यवन राजा तुशास्प का प्रशासन था। कोई राजा और विशेषकर यवन राजा प्रान्तीय गवर्नर कैसे हो सकता है, यह आश्चर्य करने की बात नहीं। यह स्थिति आमेर के राजा मानसिंह की स्थिति से भिन्न नहीं है जिसे अकबर ने बंगाल का शासक नियुक्त किया था। गुप्त काल के बारे में भी हम जानते हैं कि कुछ प्रान्तीय गवर्नरों को महाराजा कहा गया है।

दामोदरपुर ताम्र पत्र लेखों से यह स्पष्ट हो जाता है कि गुप्त काल में प्रत्येक प्रान्त में, जो **भुक्ति** कहलाता था, एक से अधिक **विषय** या जिले होते थे, और जैसे प्रान्त का गवर्नर सम्राट् द्वारा नियुक्त किया जाता था वैसे ही विषय का शासक गवर्नर द्वारा नियुक्त किया जाता था। प्रादेशिक विभागों और उपविभागों के लिए अशोक के समय किन शब्दों का प्रयोग होता था, यह हमें नहीं मालूम, पर यह प्रतीत होता है कि जिले का शासक राजा द्वारा नियुक्त न होकर प्रान्त के अधिपति द्वारा नियुक्त होता था। गौण शिला प्रज्ञापनों की सिद्धपुर वाली प्रतियों से यह बात स्पष्ट मालूम होती है। इसमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक इसला के महामात्रों को सीधे संबोधित न करके आर्य-पुत्र या कुमार तथा उसके महामात्रों के द्वारा, जो दक्षिणी प्रान्त के अध्यक्ष थे जिसकी राजधानी सुवर्णगिरि थी, संबोधित करता है। इसका अभिप्राय यह है कि सुवर्णगिरि प्रान्त में एक से अधिक जिले थे और कि इसला इनमें से एक जिले का मुख्यालय था और सिद्धपुर प्रज्ञापन इसी जिले में अवस्थित थे। और फिर, यहां इसला के महामात्रों को अशोक के आदेश सपरिषद् कुमार (Prince Royal in Council) की मार्फत भेजे गये हैं, सीधे नहीं, जैसे उदाहरण के लिए, कौशांबी और सारनाथ के महामात्रों को (सीधे) भेजे गये हैं। अतः स्वभावतः यह निष्कर्ष निकालना पड़ता है कि प्रान्तीय गवर्नरों को, कम से कम कुमारों को तो अवश्य ही, अपने जिलाधीश स्वयं नियुक्त करने का अधिकार मिला हुआ था, जैसा कि गुप्त काल में निश्चित रूप से था। यही स्थिति नये विजित कलिंग प्रान्त के जिला नगर समापा के बारे में प्रतीत होती है, जौगड़ा के पृथक् प्रज्ञापन में सम्राट् समापा के महामात्रों को सीधे आदेश नहीं दे रहा, बल्कि वह कहता है कि ये उन तक पहुंचा दिये जायं—अर्थात् तोसली में अवस्थित सपरिषद कुमार द्वारा पहुंचा दिये जायं

कुमार को अपने शासनाधीन प्रान्त में पूर्ण स्वायत्तता थी या नहीं, यह संदिग्ध बात है। प्रतीत होता है कि उसे पूर्ण और अनियंत्रित अधिकार नहीं था। यह बात इस तथ्य से कुछ-कुछ निश्चित ही है कि जहां कहीं अशोक स्थानिक प्रान्तीय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सरकारों को संबोधित करता है वहां वह सिर्फ कुमार को संबोधित नहीं करता, परन्तु कुमार और उसके महामात्रों को मिलाकर कहता है, जैसे धौलि और जौगड़ा पृथक् प्रज्ञापनों में है। इसी तरह, जब स्थानीय सरकार अपने क्षेत्र के जिला अधिकारियों को कोई आदेश देती है तो कुमार या आर्यपुत्र स्वयं ये आदेश नहीं देता बल्कि आर्यपुत्र और उसके महामात्र ये आदेश देते हैं, जैसाकि सिद्धपुर के प्रज्ञापनों में स्पष्ट दिखायी देता है। यह विल्कुल स्वाभाविक है, क्योंकि यदि प्रान्त में राजपुत्र की शक्ति सर्वथा अनियंत्रित छोड़ दी जाए तो सदा यह खतरा है कि वह अपने आपको स्वतन्त्र राजा बना ले। इस प्रकार अशोक के समय में स्थानीय कुमार शासन वस्तुतः सपरिषद् कुमार का शासन था।

शिला प्रज्ञापन ३ में अशोक अफसरों की तीन श्रेणियां--प्रादेशिक, राजुक और युक्त--बताता है। डा० एफ० डब्ल्यू० टॉमस ने सबसे पहले इस बात की ओर ध्यान खींचा कि युक्त शब्द कौटिल्य अर्थशास्त्र में इस अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।[१] परन्तु उन्होंने इसका अर्थ 'कोई भी अधीन कर्मचारी' लगाया है यद्यपि अर्थशास्त्र में यह सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि युक्त किस प्रकार के अधिकारी को कहते थे। कौटिल्य ने युक्तों और उनके सहायकों, उपयुक्तों, की चर्चा की है। पर उनके कर्त्तव्य एक ही प्रकार के थे और उनका वर्णन दो निरन्तर अध्यायों में किया गया है जिसे पढ़ने से यह निश्चित पता चल जाता है कि वे मुख्यतः

१. JRAS. १९०९, ४६६–७; १९१४, ३८७–९१.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिला अधिकारी थे, जो राजा की संपत्ति का प्रबन्ध करते थे, राजस्व वसूलते और संभालते थे और उन्हें उस कार्य में व्यय करने का अधिकार था जिसमें व्यय करने से राजस्व में वृद्धि की संभावना हो। युक्तों के बारे में डा० टॉमस ने मानव-धर्म-शास्त्र से जो श्लोक उद्धृत किया है, उससे इस विचार की पुष्टि होती है। क्योंकि मनु कहता है कि यदि खोयी हुई संपत्ति मिल जाए तो वह युक्तों के अधिकार में रहे। इसलिए ये अधिकारी सब राजस्व और राजा की संपत्ति प्राप्त करते थे। यह विचित्र बात है कि युक्त और उपयुक्त शब्द बहुत बाद के समय तक चलते रहे। इस प्रकार राष्ट्रकूट राजा गोविंद चतुर्थ, शाक ८५३ (ई० प० ९३०) की एक सनद (grant) में, अन्य अधिकारियों--राष्ट्रपति, ग्रामकूट और महत्तर--के साथ युक्तक और उपयुक्तक का उल्लेख किया गया है।[1] युक्त और उपयुक्त के स्थान पर कभी-कभी आयुक्त और विनियुक्त मिलता है। इस प्रकार समुद्रगुप्त के प्रयाग स्तम्भ लेख में कहा गया है कि आयुक्त "उसके बाहुबल से जीते हुए अनेक राजाओं का धन वापस कर रहे हैं।"[2] बुद्धगुप्त[3] की एक ताम्रपत्र सनद में भी आयुक्त का विषयपति या जिलाधीश के रूप में उल्लेख है।

जहां तक प्रादेशिक का संबंध है, डा० टॉमस का यह कथन सही मालूम होता है कि प्रादेशिक वही अफसर है जिसे अर्थशास्त्र

---

१. EI, VII, ३९–४०

२. CII., III, १४.

३. EI, XV, १३८

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में प्रदेष्ट्री कहा गया है । उन्होंने अर्थशास्त्र के कई स्थल इकट्ठे किये हैं जिनसे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि प्रदेष्ट्री वह "अफसर था जिस पर राजस्व व मालगुजारी संग्रह और पुलिस की जिम्मेवारी थी[1] ।" पर उसका कार्य सिर्फ इतना नहीं था, क्योंकि दो स्थानों पर उसे धर्मस्थ कहा गया है, जिससे ध्वनित होता है कि वह न्यायाधीश का कार्य भी करता था। और क्योंकि उसका उल्लेख अमात्य या पारिषद् (Councillor) के साथ किया गया है, इसलिए प्रदेष्ट्री ऊंची श्रेणी का अफसर था। यह बात इस तथ्य से भी मेल खाती है, जिसका अर्थशास्त्र[2] में राज्य अधिकारियों के वेतनों वाले अध्याय में उल्लेख है कि प्रदेष्ट्री को अध्यक्ष या सुपरिन्टेंडेंट की अपेक्षा बहुत अधिक वेतन देना पड़ता है ।

राजूक कौन थे, इसकी बूलर ने आंशिक व्याख्या की है ।[3] कुरुधम्म जातक के उद्धरणों से उसने प्रदर्शित किया है कि राजूक, रज्जुक या रज्जुग्राहक का संवादी है और उसमें उसका इन पिछले नामों से उल्लेख है । जातक के वर्णन के अनुसार, उसका कार्य रस्सी (रज्जु) द्वारा जमीन नापना और इसकी सीमाएं निश्चित करना था। क्योंकि उसको अमच्च कहा गया है, अतः वह प्रदेष्ट्री की तरह एक बड़ा अफसर था जो शायद

१. JRAS, १९१४, ३८३ से आगे; १९१५, ११२

२. पृ० २४५

३. ZDMG, XLVII, ४६६ से आगे; फिक का 'सोशल आर्गनाइजेशन, आदि, (अनुवाद), १४८–९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आजकल के बन्दोबस्त अधिकारी (Settlement Officer) का संवादी होगा, जैसाकि बूलर का विचार है। उसके बहुत ऊंची श्रेणी का अफसर होने की बात तो इस तथ्य से भी प्रकट होती है कि अशोक लाखों व्यक्तियों के ऊपर रज्जुकों की नियुक्ति की बात कहता है। अपने समय में रज्जुक पर व्यवहार और दण्ड की जिम्मेवारी थी, अर्थात् वह न्यायाधीश होता था जो **पंचाट** (award) **और दंड दे सकता था।** अब, स्ट्रैबो मजिस्ट्रेटों की एक श्रेणी की चर्चा करता है जिन पर नदियों की देखभाल की जिम्मेवारी है, जो भूमि नापते हैं (जैसे मिस्र में), और जिन्हें **पुरस्कार या दंड के पात्रों को पुरस्कृत या दंडित करने की शक्ति होती है।**"[1] सर्वथा संभव है कि यहां स्ट्रैबो रज्जुकों ही को लक्ष्य करके कह रहा है और कि इसलिए रज्जुक न्यायाधीश और बन्दोबस्त अधिकारी दोनों का कार्य करते थे।

एक और अफसर है जिस पर इस सिलसिले में हमें गौर करना है। उसका नगल-वियोहालक (नगर-व्यवहारक) के रूप में पृथक् कलिंग प्रज्ञापन में उल्लेख है। वह निःसंदेह वही है जिसका अर्थशास्त्र[2] में पौर-व्यवहारक नाम से उल्लेख

१. इस बात की ओर सबसे पहले डा० हेमेन्द्रचन्द्र रायचौधुरी ने अपनी पुस्तक 'पोलिटिकल हिस्ट्री आफ एन्शेंट इंडिया फ्राम दि एक्सैशन आफ परीक्षित टु दि एक्सटिंक्शन आफ द गुप्त डाएनेस्टी' में ध्यान खींचा था।

२. पृष्ठ २० और २४५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है, और प्रतीत होता है कि वह सिर्फ जिला नगरों का न्यायाधीश था। जहां तक उसके लिए निर्धारित वेतन का प्रश्न है, वह कुमार के समकक्ष था और निश्चित रूप से प्रदेष्ट्री या प्रादेशिक से ऊंचा पद था।

अशोक के लेखों में अधिकारियों की दो या तीन और श्रेणियों का उल्लेख है। उन सबका निर्देश शिला प्रज्ञापन १२ के अन्त में है। वे हैं धम्ममहामात, इथिज्झक महामात और व्रचभूमिक। धम्ममहामात कौन थे, यह हम अभी देखेंगे। इथिज्झक-महामात वही थे जो स्त्र्यध्यक्ष महामात्र थे अर्थात् वे महामात्र जो स्त्रियों के अध्यक्ष (सुपरिंटेंडेंट) थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस अधिकारी का जिक्र नहीं है, पर यह अनुमान करना कठिन नहीं कि उसका कार्य क्या था। अर्थशास्त्र का अध्ययन करने वाला हर व्यक्ति अच्छी तरह जानता है कि 'धर्मस्थीय' प्रकरण में स्त्री के सम्बन्ध में उसके भरण-पोषण, उत्क्रमण (transgressions), सहपलायन (elopement) इत्यादि अनेक जटिल प्रश्नों पर विचार किया गया है। राज्य गर्भावस्था में असहाय स्त्रियों की, और उनसे उत्पंन्न बच्चों की, सहायता करना भी अपना कर्त्तव्य समझता था। यह सर्वथा समझ में आ सकता है कि इस कार्य के लिए एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया जाता था और वह स्त्र्यध्यक्ष कहलाता था। परन्तु यह कुछ समझ में नहीं आता कि व्रचभूमिक कौन थे। इस पदनाम (designation) का पहला भाग व्रज का समतुल्य माना गया है, जिसका अर्थशास्त्र में "गौओं, भैंसों,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बकरियों, भेड़ों, गधों, ऊंटों, घोड़ों और खच्चरों के समूहों" के अर्थ में तीन बार उल्लेख है, जिससे राज्य को आय होती थी; और अर्थशास्त्र में एक अध्याय में गोध्यक्ष या गौओं के अध्यक्ष का भी उल्लेख है जो राजा के व्रजों का प्रबन्ध करता था, गोवंश की वृद्धि की व्यवस्था करता था और राजकीय दूध का प्रबन्ध करता था।[1] संभाव्यतः व्रजभूमिक राजा के या नागरिकों के मवेशियों से संबद्ध अधिकारी थे जो या तो उत्पन्न पदार्थ राजा की शाला में लाते थे और या धन राजा के खजाने में पहुंचाते थे।

अब सिर्फ एक अधिकारी पर विचार करना शेष रहा। उसको अंत-महामात अर्थात् अन्त-महामात्र कहा गया है। इस पद का अर्थ "सीमा प्रान्तों के उच्च अधिकारी", "सीमाक्षेत्रों के रक्षक" किया गया है। उनका उल्लेख स्तम्भ लेख १ में है। वहां अशोक का यह अभिप्राय प्रतीत होता है कि जैसे उसके राज्य-क्षेत्र में उसके सब श्रेणियों के अधिकारी चंचल मन वाले लोगों को धम्म का अनुसरण करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं, वैसे ही अंतमहामात्र उसी ध्येय को बाहर पूरा कर रहे हैं। इससे ध्वनित होता है कि ये पिछले अधिकारी अशोक के साम्राज्य के सीमाप्रान्तों के अध्यक्ष न होकर, वे अधिकारी थे जो पड़ौसी राज्यों में भेजे गये थे और जिनका कार्य अशोक के धम्म सम्बन्धी कार्यक्रम को क्रियान्वित करना था। यह कल्पना इस तथ्य से भी मेल खाती है कि उसी प्रज्ञापन में उसने अंत-महा-

---

१. पृष्ठ ६० और पृष्ठ १२८ से आगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मात्रों और पुरुषों अर्थात् अपने राज्य के अफसरों का अलग-अलग जिक्र किया है। यह इस तथ्य से भी मेल खाती है कि अशोक के लेखों में जहां कहीं अंत शब्द आया है वहां इसका अर्थ "सीमावर्त्ती राजा" या "सीमावर्ती राज की प्रजा" है।

हम देखते हैं कि पिछली चार श्रेणियों के अधिकारी, यद्यपि उनके कार्य अलग-अलग हैं, सबके सब 'महामात्र' कहे गये हैं। इसलिए महामात्र शब्द का अर्थ एक 'उच्च अधिकारी' या 'उच्च पदाधिकारी' मात्र मानना चाहिए।[1] यह बात इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि धौलि और जौगड़ा पृथक् प्रज्ञापन १ में नगर-व्यावहारिकों को भी महामात्र कहा गया है। अशोक के लेखों में एक और साधारण रूप से प्रयुक्त होने वाला शब्द है। यह शब्द है पुरुष, जो सब तरह के अधिकारियों का सामान्य निर्देश करता है। यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है कि स्तंभ लेख १ में अशोक ने अपने पुरुषों को उनके उच्च, मध्यम और निम्न पदों के अनुसार तीन वर्गों में बांटा है।

अब यह प्रश्न पैदा होता है कि राजा इन महामात्रों से किस तरह संबद्ध था। अशोक का साम्राज्य बड़ा विस्तृत था और इसलिए उसके महामात्रों की संख्या बहुत अधिक रही होगी। एक अकेला राजा इतने सारे महामात्रों से कैसे संपर्क रख सकता था। क्या लेखों में किसी ऐसे मध्यवर्ती निकाय का जिक्र है जो एक ओर तो राजा से और दूसरी ओर अधिकारियों से

---

१. JRAS. १९१४, ३८६–७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निकट सम्पर्क रखता था ? यह निकाय परिषद् है, जिसका दो प्रज्ञापनों में उल्लेख है। स्पष्ट है कि यह अर्थशास्त्र की मन्त्रि-परिषद है। यह उन मन्त्रियों की परिषद् थी जिनका, कौटिल्य के अनुसार, कर्त्तव्य था 'अनारब्ध काम को आरम्भ कराना, आरब्ध को पूर्ण कराना, पूर्ण काम को सुधारना और आदेशों का सख्ती से पालन कराना।' उनका एक और महत्वपूर्ण कार्य था समीपवर्त्ती अफसरों से मिलकर काम निपटाना और दूरवर्ती अफसरों को राजकीय पत्र भेजकर मंत्रणा देना। और जब कोई आकस्मिक कार्य आ पड़ता था, तब राजा सिर्फ अपने समुपदेष्टाओं (Counsellors) को ही न बुलाता था, बल्कि मंत्रियों की सभा भी बुलाता था, और सदस्यों के बहुमत के अनुसार कार्य करता था या सफलता के लिए जो मार्ग वे बताते थे उस पर चलता था। यह कौटिल्य ने लिखा है, और प्रज्ञापनों में परिषद के बारे में जो कुछ कहा गया है उससे मेल खाता है। इस प्रकार शिला प्रज्ञापन ३ में अशोक धम्म के दो आचार 'अपव्ययता' (अर्थात् मितव्ययिता) और 'अप-भाण्डता' (अर्थात् अल्प संचय) बताता है और युक्त अधि-कारियों को प्रजा में इन दो गुणों की वृद्धि करने का कार्य सौंपता है। पर क्योंकि जीवन की आवश्यकताओं के बारे में कोई दो गृहस्थी एकमत नहीं हो सकते, इसलिए सब घरों के लिए कोई कड़ा नियम नहीं बनाया जा सकता कि वे कितना संचय और व्यय करें। और इसलिए अशोक परिषद को आदेश देता है कि वह इस सम्बन्ध में दिये गये आदेश को क्रियान्वित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करने में युक्तों को मंत्रणा और सहायता दे ताकि इसकी भावना का पालन किया जाए। इससे एक तो यह बात प्रकट होती है कि परिषद का कार्य राजा के प्रत्येक आदेश का पालन कराना था और दूसरी यह कि यह एक ऐसा निकाय थी जो अफसरों के कार्यों का निरीक्षण और पथ-प्रदर्शन करती थी, जैसाकि अर्थशास्त्र हमें बताता है। परिषद का जो एक और कार्य अर्थ-शास्त्र में बताया गया है, अर्थात् आपाती कार्य के बारे में इसका कर्त्तव्य, उस पर भी शिला प्रज्ञापन ६ में, जो प्रशासकीय प्रज्ञापन है, बल दिया गया है। उसमें अशोक कहता है : "और जब किसी बात के बारे में, जिसके लिए मैंने स्वयं मौखिक आदेश दिया हो कि वह जारी या प्रख्यापित की जाए, या महामात्रों पर छोड़े हुए किसी आपाती कार्य के बारे में, परिषद् में मतभेद या अस्वीकृति हो तब, मैंने समादेश दिया है कि उसकी मुझे सब स्थानों पर और सब समय अविलम्ब सूचना दी जाए।" उसका अभिप्राय यह है कि जब उसने कोई मौखिक आदेश दिया हो, या जब किसी महामात्र पर कोई तत्काल निर्णय करने योग्य कार्य आ पड़े, तब परिषद की बैठक हो और वह उस पर विचार करे। यदि उसमें सर्वसम्मत निश्चय हो तो उसका पालन न किया जाने का कोई प्रश्न नहीं पैदा होता। पर यदि उस पर सदस्यों के अनेक मत हों, या सब के सब उस आदेश के विरोध में हों तो उस मामले को उठा रखा जाए और फिर राजा यह देखे कि यह मतभेद या विरोध क्या है और यह निश्चय करे कि उनके विचारों में से कौनसा सबसे अधिक प्रभावकारी हो सकता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। पर उसके कोई कदम उठाने से पहले परिषद के विचार उसके समक्ष होने चाहिएं, और उसके कार्यवाही करने में किसी प्रकार के विलम्ब की संभावना न रहे, इसलिए वह प्रतिवेदकों को आदेश देता है कि वे परिषद के विचार निश्चित होते ही उसे उसकी सूचना दें, चाहे वह कोई भी समय हो और चाहे वह उस समय कहीं भी हो। इस प्रकार परिषद आधुनिक सचिवालय जैसी चीज थी, जो राजा और महामात्रों के बीच में मध्यवर्त्ती प्रशासक निकाय थी, और प्रतीत होता है कि एक ओर तो इसे राजा के आदेशों का पालन होने से पहले उनकी जांच-पड़ताल करने का अधिकार था ताकि वह उन पर पुनर्विचार कर सके, और दूसरी ओर यह किसी महामात्र को किसी आपाती प्रश्न पर बिना राजा से पूछे मंत्रणा दे सकती थी बशर्ते कि इसके सदस्य महामात्र से सहमत हों। पर यदि उनमें मतभेद हो, अथवा राजा या महामात्र के निश्चय के विरोध में मतैक्य हो, तो सारा मामला राजा के पास पेश होगा क्योंकि वही अन्तिम निर्णायक था।

अशोक की प्रशासन-व्यवस्था के बारे में एक मनोरंजक और ध्यान देने योग्य बात यह है कि उसके कुछ अफसरों को अपने कार्य-संपादन के लिए यात्राएं करनी पड़ती थीं। उन्हें साधारणतया विवुथ या व्युठ कहते थे जिसका संस्कृत पर्याय व्युष्ट है। सारनाथ प्रज्ञापन से यह बात स्पष्ट है, जिसमें स्थानीय महामात्रों को अपने-अपने क्षेत्राधिकार के अंत तक यात्रा करने का आदेश दिया गया है। यही आदेश रूप-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नाथ प्रज्ञापन में दिया गया है पर इसमें व्युष्ट अफसरों को यह आदेश दिया गया है। स्तम्भ प्रज्ञापन ७ में इन व्युष्टों को पुरुष या अफसर कहा गया है और क्योंकि वहां यह भी कहा गया है कि वे बहुत सारी प्रजा के ऊपर नियुक्त हैं, इसलिए प्रतीत होता है कि वे ऊंचे पदों पर थे। और, सच तो यह है कि शिला प्रज्ञापन ३ में, प्रादेशिकों, रज्जुकों और युक्तों का, अपने नियमित कार्य के लिए दौरे पर जाने का, उल्लेख है, और हम जानते हैं कि वे उच्च पदाधिकारी थे। दौरे पर गये हुए महामात्रों या अफसरों से यह आशा की जाती थी कि वे उपोसथ, अर्थात् उपवास के दिन, बारी-बारी, जिला मुख्यालय पर लौट आएं, जैसाकि सारनाथ प्रज्ञापन से ध्वनित होता है। परन्तु तिष्य नक्षत्र के दिन--अर्थात् राजा के जन्म-दिन[1]--उन सबको मुख्यालय पर लौट आना आवश्यक था, जैसा हम धौलि और जौगड़ा पृथक् प्रज्ञापन १ से जान सकते हैं।

अब हम यह देखेंगे कि अशोक शासक के रूप में क्या था। सबसे पहले तो यह मनोरंजक बात देखिए कि वह प्रजा को किस दृष्टि से देखता था। पृथक् कलिंग प्रज्ञापन में उसने जो कुछ कहा है उससे उसके अन्तर्मानस की झांकी मिलती है। उसमें वह कहता है: "सब लोग मेरे संतान हैं, और जैसे मैं अपने संतानों के लिए यह चाहता हूं कि उन्हें इस लोक और परलोक में सब प्रकार से क्षेम और सुख मिले ठीक वैसे ही मैं सारी प्रजा के लिए चाहता हूं।" स्पष्ट है कि अशोक राजा का वही कर्त्तव्य

१. ऊपर, पृ० १२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानता है जो संतान के प्रति पिता का होता है——अर्थात् मौर्य काल के राजकीय निरंकुशवाद (Absolutism) की ओर स्पष्ट संकेत कर रहा है।[१] जैसे बच्चे एकमात्र अपने माता-पिता के अधीन होते हैं और माता-पिता उनसे जो चाहे व्यवहार कर सकते हैं, ठीक वैसे ही प्रजा राजा की कृपा पर निर्भर थी, और राजा बिल्कुल निरंकुश शासक था। इस धारणा में और उस विचार में बड़ा वैषम्य दिखायी देता है जो मौर्य शक्ति के उत्थान से पहले प्रचलित था और जिसके अनुसार राजा राज्य का केवल सेवक माना जाता था और वह निर्दिष्ट कर ही लगा सकता था ताकि उसे अपनी सेवाओं का पारिश्रमिक मिल सके।

अशोक ने अपने शासन में जो सुधार जारी किये उनमें जिस चीज की ओर उसने विशेष ध्यान दिया और जिस में वह विशेष रूप से सजग था——वह था न्याय-प्रशासन। जब उसने कलिंग को जीतकर अपने साम्राज्य का एक प्रान्त बनाया और उसका शासन एक सपरिषद् कुमार को सौंपा तब भी वह इस विषय में बड़ा सचेत रहा। धौलि और जौगड़ा, दोनों, में प्राप्त हुए पृथक् प्रज्ञापन १ में उसने नगर-व्यावहारिकों को बड़ी सख्ती से आड़े हाथों लिया है क्योंकि तोसली

१. यह बात कौटिलीय अर्थशास्त्र से भी मेल खाती है, जिसमें कम से कम दो स्थानों पर (पृष्ठ ४७ और २०८) राजा-प्रजा सम्बन्ध पिता-पुत्र का सम्बन्ध बताया गया है, जैसा कि कैलकटा रिव्यू, १९२२, पृ० ३९३, में दिखाया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और समापा जिला नगरों के कुछ व्यक्तियों को मनमानी कैद दे दी गयी थी या अकारण परेशान किया गया था। वह इन्हें सीधे शब्दों में समझाता है कि तुमने मेरे इन शब्दों का अर्थ पूरी तरह ग्रहण नहीं किया कि सारी प्रजा मेरी संतान है और मैं सारी प्रजा के लिए उसी प्रकार आधिभौतिक और आध्यात्मिक सुख की कामना करता हूं जैसे अपनी संतान के लिए। भर्त्सना कर चुकने के बाद वह उन्हें एक सुन्दर सलाह देता है। वह उन्हें सच्चे दिल से निर्देश देता है कि वे "ईर्ष्या, अ-परिश्रम, निष्ठुरता, अधैर्य, बार-बार यत्न के अभाव, अकर्मण्यता और आलस्य से सतर्क रहें और अपने अन्दर "परिश्रम और धीरता" का विकास करें।" वह उन्हें ध्यान दिलाता है कि यदि उन्होंने अपने कर्त्तव्य का लगन से पालन नहीं किया तो उन्हें न तो स्वर्ग मिलेगा और न वे राजा का ऋण चुका सकेंगे। अब भी यह शंका बनी रहने के कारण कि इन सब भर्त्सनाओं के बावजूद स्थिति में शायद सुधार न हो और मनमानी कैद और अकारण तंग करना शायद जारी रहे, वह उन्हें चेतावनी देता है कि मैं प्रति पांचवें वर्ष एक महामात्र यह निश्चित करने के लिए भेजूंगा कि न्याय के उचित प्रशासन के बारे में मेरे सब आदेशों का पालन किया जाए। यह सोचकर कि अन्य प्रान्तों में भी ऐसा कुशासन उत्पन्न होने पर उसका उपचार करने की प्रतीक्षा में बैठे रहना ठीक नहीं, वह तक्षशिला और उज्जैन में नियुक्त राजकुमारों को आदेश देता है कि वे अपने-अपने अधीन प्रदेशों में इसी लक्ष्य से इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार के महामात्रों को दौरे पर रवाना करें।

प्रश्न पैदा होता है कि ये महामात्र कौन थे जो जिलों में मनमानी कैद के या तंग करने के मामलों का पता लगाने के लिए नियुक्त किये गये थे। उनके बारे में एक ध्यान देने की बात यह है कि उन्हें अपने नियमित कार्य की उपेक्षा किये बिना यह कार्य करने के लिए कहा गया है। और यह लगभग निश्चित प्रतीत होता है कि वे धर्म महामात्र थे जिनका सबसे पहले शिला प्रज्ञापन ५ में उल्लेख है। इस प्रज्ञापन में अशोक कहता है कि सबसे पहले मैंने ही इस प्रकार के अफसर नियुक्त किये हैं, और उनके कर्त्तव्य निर्दिष्ट करता है। क्योंकि अशोक के धम्म का उद्देश्य प्रजा के ऐहिक और आध्यात्मिक दोनों प्रकार के कल्याण की चिन्ता करना था, इसलिए धर्ममहामात्रों के कार्य के भी दो भाग थे। अशोक ने उन्हें प्रजा का आध्यात्मिक सुख किस रीति से उत्पन्न और संवर्धित करने के लिए आदेश दिये थे, यह हम उस समय देखेंगे जब धर्म-प्रचारक के रूप में अशोक की सफलताओं पर विचार करेंगे। यहां तो हम उनके उन कर्त्तव्यों पर बिचार करना चाहते हैं जो आधिभौतिक सुख के विषय में थे। और इस सिलसिले में उनका एक कर्त्तव्य यह था कि जिन्हें कैद किया गया है उनका निरीक्षण करें, यदि किसी पर बड़े परिवार का बोझ हो तो उसे आर्थिक सहायता दें, यदि उस पर अत्याचार होता हो तो उसे बेड़ी से मुक्त कर दें, और यदि वह बहुत वृद्ध हो तो उसे रिहा भी कर दें। इससे एक तो यह बात स्पष्ट प्रकट होती है कि अशोक ने पृथक् कलिंग

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रज्ञापन में प्रान्तीय नगरों के न्याय-प्रशासन का घूमते-फिरते महामात्र द्वारा जो अधीक्षण जारी करने की चर्चा की है, वह वस्तुतः धर्म महामात्रों के सुपुर्द किया गया था। एक ध्यान देने योग्य बात यह है कि उन्हें न केवल यह अधिकार दिया गया है कि वे अत्याचार से पीड़ित व्यक्ति को बेड़ी से मुक्त करके न्याय के अतिक्रमण का निवारण करें, बल्कि यह कार्य भी सौंपा गया है कि यदि अपराधी का परिवार असहाय अवस्था में हो तो उसके भरण-पोषण के लिए आर्थिक सहायता देकर, या यदि अपराधी बूढ़ा हो गया है और कारागार में बंद किये जाने योग्य नहीं रह गया है तो उसे रिहा करके भी, न्याय के साथ दया का सम्मिश्रण करते रहें। परन्तु उन्हें अशोक के साम्राज्य के उस भाग में, जिसमें यवनों, कंबोजों, गंधारों, राष्ट्रिकों के देश और अन्य अपरांत थे, एक भूतदया का कार्य भी करना होता था। उन्हें ब्राह्मण और गृहपति वर्ग के उन लोगों की सुख-सुविधा को देखना होता था जो दासों की सी अवस्था में पहुंच गये थे, और साधारणतया सब असहायों और वृद्धों की देखभाल करनी होती थी। असहायों और वृद्धों को राज्य से आर्थिक सहायता देने का विचार कोई नया नहीं है और अशोक के समय से पहले भी विदित था। कौटिलीय अर्थशास्त्र में कहा है[1] : "राजा अनाथों, वृद्धों, अशक्तों, दुःखितों और असहायों का भरण-पोषण करे।" संभव है कि अशोक के समय तक राजा के इस कर्तव्य का पालन न करने का ही चलन हो, और इस

1. पृष्ठ ४७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चलन को हटाने तथा उस कर्त्तव्य का पालन कराने के लिए अशोक ने यह कार्य धर्म महामात्रों को, जो उसने ही सबसे पहले नियुक्त किये थे, सौंपा हो। यदि क्षण भर के लिए हम यह भी मान लें कि यह मानवीय कार्य अशोक की अपनी ही सूझ न था तो भी उसने, जहां न्याय नहीं हुआ वहां फिर से और सुनिश्चित रूप से न्याय कराने का, और जहां न्याय से निष्ठुरता होने की संभावना थी वहां दया से इसको हलका करने का, जो ध्येय बनाया वह कोई मामूली बात नहीं थी। शासक के रूप में अशोक का यह एक चित्र है।

धर्म महामात्रों का पद अशोक ने स्वयं बनाया था और उसने इन पदों पर पहली नियुक्तियां अपने राज्याभिषेक के तेरहवें वर्ष में कीं, जैसाकि वह शिला प्रज्ञापन ५ में हमें बताता है। इस समय के आसपास उसने एक और प्रशासनीय सुधार किया प्रतीत होता है। इसका वर्णन अगले प्रज्ञापन में किया गया है, और यह राजकार्य तत्परतापूर्वक करने के सम्बन्ध में है। पूर्वी देशों में और विशेषकर भारत में प्रजा के लिए राजा की उपगम्यतां राजा का सर्वश्रेष्ठ गुण माना जाता है। पर अशोक ने जिस मात्रा तक यह गुण प्रदर्शित किया उससे आगे बढ़ना शायद अशक्य है। शिला प्रज्ञापन ६ में वह कहता है कि राजकार्य सम्बन्धी सूचनाएं मुझे हर समय और हर स्थान पर पहुंचायी जा सकती हैं, चाहे मैं भोजन कर रहा होऊं, चाहे अन्तःपुर में, चाहे शयनागार में, चाहे पशुशाला में, घोड़े पर या उद्यानों में होऊं। इसी सिलसिले में उसने प्रतिवेदकों या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सूचना देने वालों का तथा परिषद् के विचार का उल्लेख किया है जिसकी हमने ऊपर चर्चा की है। जिस सचाई और उत्साह से उसने अपने आपको उपगम्य बनाया है, वे उसके इन शब्दों में साफ और अमिट रूप में गूँज रहे हैं। वह कहता है : "राज-कार्य में मैं कितना ही उद्योग करूं, पर उससे (मुझे) संतोष नहीं होता। सब लोगों की भलाई करना ही मैंने अपना श्रेष्ठ कर्त्तव्य माना है। और इस सबका मूल भी उद्योग और राजकार्य संचालन ही है। सर्व-लोक-हित से बढ़कर और कोई अच्छा काम नहीं है। जो कुछ पराक्रम मैं करता हूं वह इसीलिए है कि प्राणिमात्र का मेरे ऊपर जो ऋण है, उससे मैं मुक्त होऊं और उनका इस लोक तथा परलोक में हित बढ़े। यह धर्मलेख मैंने इसलिए लिखवाया है कि यह चिरस्थायी रहे और मेरे पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र इसी प्रकार सब लोगों की भलाई के लिए सदा उद्योग करें। पर अत्यधिक प्रयत्न के बिना यह कठिन कार्य है।"

प्रतीत होता है कि लगभग तेरह वर्ष तक अशोक ने अपनी प्रशासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में कोई महत्त्वपूर्ण कार्य नहीं किया। पर अपने अभिषेक के छब्बीसवें वर्ष में उसने, (विशेषकर प्रांतों में) न्याय-प्रशासन को और अधिक सुधारने के लिए एक महत्त्वपूर्ण कदम उठाया। स्तम्भ प्रज्ञापन ५ हमें बताता है कि उस वर्ष उसने "रज्जुकों" को न्यायिक अनु-संधान और दंड के विनिर्णय का एकमात्र अधिष्ठाता बना दिया ताकि वे विश्वास के साथ और निर्भय होकर अपने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कर्त्तव्य पूरे कर सकें, प्रान्तों की प्रजा के हित और सुख की वृद्धि कर सकें, और (उन्हें) उपहार दे सकें।" उसी प्रज्ञापन में आगे कहा गया है कि "रज्जुक लोग यह मालूम करें कि किन बातों से प्रजा को सुख मिलता है और किन से दुःख, और प्रांतों के लोगों और धार्मिक व्यक्तियों को धर्माचरण के लिए उद्बोधित करें ताकि उन्हें इहलोक और परलोक में सुख प्राप्त हो।" स्पष्ट है कि उसके राज्यकाल के छब्बीसवें वर्ष रज्जुकों के दो कर्त्तव्य थे--प्रान्तों की प्रजा के लौकिक सुख की वृद्धि कराना और उसका पारलौकिक मंगल करना। उनसे अपना दूसरा कर्त्तव्य पालन करने की कितने यथार्थ रूप से आशा की जाती थी, यह हम तब देखेंगे जब अशोक के धर्म-प्रचारक रूप पर विचार करेंगे। यहां हम यह जानने का यत्न करेंगे कि किन प्रशासनीय सुधारों द्वारा, रज्जुकों से पहले उद्देश्य की पूर्ति की आशा की जाती थी। हमें पता चलता है कि उन्हें न्यायिक अनुसंधान और दंड के विनिर्णय का एकमात्र अधिष्ठाता बना दिया गया था। यहां दो प्रश्न पैदा हो सकते हैं। पहला यह कि "उन्हें इसका एकमात्र अधिष्ठाता क्यों बनाया गया ?" अशोक इसका एक उत्तर देता है, और वह यह है कि न्यायिक अनुसंधान में एकरूपता लाने के लिए और दंड के विनिर्णयन में एकरूपता लाने के लिए। अब जो दूसरा प्रश्न पैदा होता है वह यह है : "यहां 'एकरूपता' से अशोक का क्या अभिप्राय है ?" यह जरा टेढ़ा प्रश्न है। परन्तु संभाव्यतः उसका यह अभिप्राय था। न्याय-प्रशासन से सम्बद्ध अफसर सिर्फ रज्जुक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ही नहीं थे। हम ऊपर देख चुके हैं कि कम से कम दो और भी अफसर थे——एक नगर-व्यावहारिक और दूसरा प्रादेशिक (प्रदेष्ट्री), जो न्यायाधीश का भी कार्य करते थे। क्योंकि इस तरह एक ही जिले में न्यायिक तथा अन्य कार्य करने वाले अफसरों की तीन श्रेणियां थीं इसलिए प्रक्रिया और निर्णय के मामले में एकरूपता संभव नहीं थी। इस कारण एक जिले के लोगों के लिए भी न्याय-प्रशासन एकरूप होने की आशा नहीं की जा सकती थी। यह सचमुच एक दोष था, और अशोक ने न्याय विभाग का सारा काम रज्जुकों को सौंपकर तथा अन्य दो श्रेणियों के अफसरों को इस भार से मुक्त करके इस दोष को दूर करने का यत्न किया। इसलिए अशोक सचमुच संतोष-पूर्वक यह कहने का अधिकारी था : "जैसे कोई व्यक्ति अपना बच्चा कुशल धाय को सौंपकर निश्चिन्त होता है और अपने आप से कहता है : 'कुशल धाय मेरे बच्चे का पालन करना चाहती है,' वैसे ही मैंने प्रान्तीय लोगों के हित और सुख के लिए रज्जुकों को नियुक्त किया है ताकि वे निर्भय, निःसंकोच और निर्विघ्न अपना कर्त्तव्य निष्पन्न कर सकें।[1]

जिस वर्ष अशोक ने न्याय-प्रशासन में उपर्युक्त सुधार

१. इस अंश से यह प्रतीत होता है कि रज्जुकों को न्याय कार्य के सम्पादन की उच्चतम शक्तियां दे दी गयी थीं और अशोक ने उच्चतर-अधिकारियों के पास अपीलों की व्यवस्था खत्म कर दी थी। प्रतीत होता है कि छब्बीसवें वर्ष में जब राजा ने न्याय-प्रशासन एकमात्र रज्जुकों को सौंप दिया तब उसने धम्म महामात्रों द्वारा न्याय के पुन-रीक्षण (या नजरसानी) को भी समाप्त कर दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया, उसी वर्ष उसने दंड संहिता की कठोरता को हलका करने का यत्न भी किया। उसी प्रज्ञापन, अर्थात् स्तम्भ प्रज्ञापन ४, में कहा गया है कि उसने प्राण-दंड पाये हुए लोगों को तीन-तीन दिन की मोहलत दी। इसका उद्देश्य यह था कि उन्हें प्राण-दंड पाने से पहले सोचने-विचारने का अवसर मिल सके और वे परलोक के लिए अपने को योग्य बना सकें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ३

अशोक बौद्ध के रूप में

अशोक ने अपना जो मुख्य ध्येय बनाया था और जिसकी सिद्धि के लिए उसने अपना सारा तन-मन लगा दिया था वह था धम्म का प्रचार। उसका शायद ही कोई लेख हो जिसमें इस धम्म की चर्चा न हो, या जो किसी न किसी तरह इससे संबद्ध न हो। उसके शिला और स्तंभ प्रज्ञापनों को धम्मलिपि नाम से अभिहित किया गया है अर्थात् धम्म सम्बन्धी लेख। अशोक का धम्म से ठीक-ठीक क्या अभिप्राय था, यह हम अगले अध्याय में देखेंगे। यहां हम यह विचार करेंगे कि वह किस धम्म को मानता था, और इसके साथ उसका क्या संबंध था।

यह बताना तो अनावश्यक ही है कि अशोक बौद्ध मत का अनुयायी था। सब बौद्ध अभिलेखों से प्रकट होता है कि वह इस धम्म का पोषक था। दूसरी ओर, ऐसा कोई साहित्यिक या धार्मिक ग्रंथ नहीं है जो यह कहता हो कि उसने कोई और धर्म ग्रहण किया था। उसके लेख हमें क्या बताते हैं? यही एक असली प्रश्न है जिसका हमें उत्तर देना है। जब अशोक के लेखों का अध्ययन आरम्भ हुआ और सिर्फ कुछ ही लेखों का पता चला था, तब एच० एच० विल्सन ने उसके बौद्ध मतावलम्बी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होने पर विवाद उठाया, और एडवर्ड टामस ने यह स्थापना की कि अशोक पहले जैन था पर बाद में वह बौद्ध हो गया।[१] पर अब अशोक के बौद्ध मतावलम्बी होने पर विवाद की गुंजाइश नहीं है। भाब्रू प्रज्ञापन से, जिसे द्वितीय बैराट प्रज्ञापन भी कहते हैं, यह बात असंदिग्ध रूप से सिद्ध हो चुकी है। इसके शुरू में अशोक बौद्धमत के प्रसिद्ध तीन सूत्रों के शब्दों ही में बुद्ध, धम्म, और संघ का अभिवादन करता है। और भी अभिलेख हैं जिनसे यही निष्कर्ष निकलता है। विल्सन और टामस के विचार अनिर्भरणीय पाठों और अयथार्थ निर्वचनों पर आधारित थे और अब विद्वान लोग उन्हें नहीं मानते। अब जिस प्रश्न के बारे में मतभेद हो सकता है वह यह है कि अशोक बौद्ध मत का अनुयायी कब हुआ? इस प्रश्न पर जिस विद्वान ने सबसे पीछे विचार किया वह स्वर्गीय डा० जे० फ० फ्लीट थे। आपकी मान्यता थी कि शिला और स्तम्भ प्रज्ञापनों में उल्लिखित धम्म किसी भी तरह बौद्ध धम्म नहीं है क्योंकि उसमें कहीं भी बुद्ध का उल्लेख नहीं है और संघ का सिर्फ एक बार जिक्र है और वह भी इस ढंग से कि उसे अन्य मतों के बराबर स्थान दिया गया है। डा० फ्लीट कहते हैं कि इस प्रकार इन प्रज्ञापनों का उद्देश्य "बौद्ध या किसी अन्य धर्म-विशेष का प्रचार करना नहीं है बल्कि अशोक के इस संकल्प की उद्घोषणा करना है कि वह अपने राज्य का, धर्मात्मा

१. JRAS., (NS), जिल्द IX, पृ० १५५ और १८७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजाओं के कर्त्तव्य के अनुसार, धर्म और दया से शासन करेगा।"[१] दूसरे शब्दों में, फ्लीट शिला और स्तम्भ प्रज्ञापनों में प्रयुक्त धम्म शब्द को 'राजाओं के साधारण धर्म' का सूचक मानता है जो मानव धर्मशास्त्र १, ११४ में राजधर्म सम्बन्धी प्रकरण में विहित हैं। उसके अनुसार, अशोक अपने अभिषेक के ३०वें वर्ष बौद्ध हुआ, अर्थात् स्तम्भ प्रज्ञापनों के उत्कीर्ण कराये जाने के दो वर्ष बाद। स्पष्टतः फ्लीट ने इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया कि अशोक ने जिस धम्म की चर्चा अपने शिला और स्तम्भ प्रज्ञापनों में की है, वह उसके अपने या उसके अफसरों
५ के आचरण के लिए अभिप्रेत नहीं है बल्कि उसकी प्रजा के आचरण के लिए अभिप्रेत है। इस प्रकार यह धम्म संभवतः राजधर्म नहीं हो सकता—राजधर्म में तो राजा और उसके अफसरों के कर्त्तव्य संग्रहीत हैं, प्रजा के नहीं। रुम्मिन्देई लेख से भी सूचित होता है कि अपने राज्यकाल के बीसवें वर्ष अशोक ने स्वयं बुद्ध के जन्म-स्थल की यात्रा की और वहां पूजा की। इससे यह स्पष्ट है कि अपने राज्यकाल के बीसवें वर्ष वह बौद्ध था। लेख के शब्दों का स्पष्टतः यह अर्थ है कि अशोक स्वयं बुद्ध के जन्म-स्थान पर गया और उसने वहां पूजा की—इसका यह अर्थ नहीं है, जो डा० फ्लीट ने लगाया है कि अशोक ने स्वयं उस जगह जाकर उस जगह को सम्मानित किया। फिर शिला प्रज्ञापन ८ में अपने राज्यकाल के दसवें वर्ष वह संबोधि गया। यहां संबोधि का अर्थ चाहे 'परम ज्ञान' या ऐसा ही कुछ और

१. वही, १९०८, पृ० ४९१–२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो, जैसे विद्वान लोग मानते हैं, अथवा 'वह स्थान जहां बुद्ध को ज्ञान हुआ था' हो, जैसे मैं समझता हूं, पर यह सब स्वीकार करते हैं कि यह शब्द बौद्ध धर्म ग्रंथों का एक पारिभाषिक शब्द है और इसे डा० फ्लीट की धारणा के अनुसार सामान्य संस्कृत शब्द संबोध के समतुल्य संभवतः नहीं माना जा सकता। इस प्रकार इस शिला प्रज्ञापन से सिद्ध होता है कि अपने राज्यकाल के दसवें वर्ष भी अशोक बौद्ध था।

परन्तु यह साक्ष्य मिलता है कि अशोक कम से कम दो वर्ष पूर्व बौद्ध हो गया था। यह साक्ष्य गौण शिला प्रज्ञापन १ में है जिसकी प्रतियां कम से कम छः अलग-अलग स्थानों पर मिली हैं। इस प्रज्ञापन को वह इस तरह शुरू करता है : "ढाई वर्ष पूर्व मैं एक साधारण उपासक था, पर मैंने उद्योग नहीं किया था। एक वर्ष, बल्कि एक वर्ष से कुछ अधिक, हो गया जबसे मैं संघ में रह रहा हूं और मैंने उद्योग किया है।" इसलिए जब यह प्रज्ञापन उत्कीर्ण किया गया तब उसे बौद्ध हुए लगभग पौने चार वर्ष हो चुके थे। इसी प्रज्ञापन में उसके धार्मिक उत्साह के कार्य का जिन शब्दों में वर्णन है उनसे उस शिला प्रज्ञापन ४ का स्मरण हो आता है और दोनों की थोड़ी-सी भी तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों में अशोक ने एक ही वस्तु, अर्थात् अपने धर्म प्रचार संबंधी कार्य, का वृत्तान्त दिया है। अब यह ध्यान देने की बात है कि शिला प्रज्ञापन ४ में यह उल्लेख है कि यह प्रज्ञापन अशोक के राज्यकाल के बारहवें वर्ष उत्कीर्ण हुआ। इसलिए अशोक ने

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस समय से पौने चार वर्ष अर्थात् आठवें वष पूव बौद्ध मत ग्रहण कर लिया होगा। इस प्रकार अशोक के जीवन के इस काल की मुख्य घटनाएं **संक्षेप में** इस प्रकार प्रस्तुत की जा सकती हैं। वह अपने राज्यकाल के आठवें वर्ष बौद्ध हो गया था, जैसे कि हम अभी देख चुके हैं। लगभग ढाई वर्ष तक वह साधारण बौद्ध रहा पर वह अधिक उत्साही न था और उसने बौद्ध मत के प्रचार के लिए कोई उद्योग नहीं किया। इसके बाद एक वर्ष तक वह संघ के साथ रहा और उसने ऐसा प्रचार-कार्य किया कि इस अवधि के बाद, अर्थात् अपने राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष, वह सच्चे दिल से कह सकता था कि मैंने प्रजा में धम्म की वैसी वृद्धि की है जैसी पहले कभी नहीं हुई। इस प्रकार हम देखते हैं कि अपने राज्याभिषेक के आठवें वर्ष उसने बौद्ध मत अंगीकार कर लिया था। पर इसी वर्ष उसने कलिंग को अपने अधीन किया था। और विद्वानों की धारणा है कि कलिंग युद्ध से ही उसे धर्म-परिवर्तन की प्रेरणा मिली। उनके विचारों के अनुसार, इस युद्ध की भीषणता ने उसमें ऐसी ग्लानि पैदा कर दी कि उसका मन धर्म की ओर मुड़ गया और वह बौद्ध मत का अनुयायी हो गया। परन्तु यह निष्कर्ष उसके शिला प्रज्ञापन १३ से, जो कलिंग के साथ हुए युद्ध का उल्लेख करने वाला एकमात्र प्रज्ञापन है, प्रमाणित नहीं होता। इस शिलालेख में न केवल कलिंग की जनता पर आयी मुसीबतों का सजीव चित्र है, बल्कि अशोक के पश्चात्तापपूर्ण मानस की मर्मस्पर्शी दशा का भी चित्रण है। यह सत्य है कि इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रज्ञापन में यह कहा है : "**अब** कलिंग के जीते जाने के बाद (ततो पच्छा अधुना) देवताओं के प्रिय धम्म की सोत्साह परिरक्षा, सोत्साह अभिलाषा और सोत्साह शिक्षा करता है।" परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उसने धम्म की अभिलाषा, परिरक्षा या शिक्षा, कलिंग युद्ध के द्वारा अपने जीवन-मार्ग में आये किसी परिवर्तन के कारण आरम्भ की। युद्ध की मुसीबतों और भीषणताओं पर उसका पश्चात्ताप और धम्म की सोत्साह शिक्षा और परिरक्षा उस समय का निर्देश नहीं करतीं जब कलिंग उसके साम्राज्य का हिस्सा बना, बल्कि उस समय का निर्देश करती हैं जब शिला प्रज्ञापन १३ प्रख्यापित किया गया। अशोक इस प्रज्ञापन में जो कुछ कहता है वह यह नहीं है कि युद्ध के अत्याचारों ने उसे गम्भीर और अनुशोक-मग्न कर दिया है और उसका मन बौद्धमत की ओर फेर दिया है, बल्कि वह स्पष्ट रूप से यह है कि वह पहले से बौद्ध था और इसलिए युद्ध पर लज्जित है और इस प्रज्ञापन को प्रख्यापित **करने के समय** वह धम्म के लिए गंभीर लालसा अनुभव करता था। निःसंदेह, कलिंग-विजय और उसका बौद्ध-धर्म-ग्रहण दोनों घटनाएं उसके अभिषेक के आठवें वर्ष में हुईं, पर पहली घटना दूसरी का कारण नहीं थी। क्योंकि, यदि क्षण भर के लिए यह मान लिया जाए कि उसके बौद्ध होने का कारण कलिंग-युद्ध था तो तब हमें यह भी मानना पड़ेगा कि जब उसने यह प्रान्त जीता और वह बौद्ध हो गया उसके तुरन्त बाद वह **उत्साहपूर्वक** धम्म की परिरक्षा और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिक्षा कर रहा था, जैसा कि शिला प्रज्ञापन १३ हमें बताता है। पर यह बात उस बात से मेल नहीं खाती जो गौण शिला प्रज्ञापन १ उसके विषय में कहता है और वह यह कि जब पहले ढाई वर्ष पूर्व वह साधारण बौद्ध था तब उत्साही प्रचारक नहीं था।

अशोक हमें बताता है, जैसे कि हम देख चुके हैं, कि ढाई वर्ष से अधिक समय तक वह साधारण उपासक था और इसके बाद वह संघ में गया और उसके साथ एक वर्ष से अधिक रहा। परन्तु उसके इस कथन का आशय है कि मैं संघ में गया और उसके साथ रहा । यह वाक्य विद्वानों के लिए बड़ी पहेली रहा है। श्री सेनार्ट का विचार है कि यह संघ में राजा के उस गमन को निर्दिष्ट करता है जो उसने राजकीय शोभा के साथ किया था, और जिसमें उसने संघ में अपना आसन ग्रहण करके अपने बौद्ध हो जाने की सार्वजनिक घोषणा की थी, जैसाकि सिंहल के इतिहास ग्रंथ महावंश[1] से हमें मालूम होता है। इसी अवसर पर अपने पुत्र और पुत्री को संघ में प्रविष्ट करके उसने अपनी श्रद्धा की सत्यता प्रदर्शित की। पर यह निर्वचन स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि, जैसा कर्न और बूलर ने बताया है, अशोक यहां अपने उपासक होने के समय की अपने संघ में होने के समय से तुलना कर रहा है और महावंश में यह कहीं नहीं कहा गया कि जब उसने संघ की राजकीय यात्रा की

१. IA, १८९१, पृ० २३३-४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तब वह साधारण उपासक नहीं रहा।[१] इसलिए इन दो विद्वानों की मान्यता के अनुसार, उसका आशय यह है कि वह संघ में प्रविष्ट हो गया और इस प्रकार भिक्षु बन गया। यद्यपि इन विद्वानों ने श्री सेनार्ट के मन्तव्य पर जो आपत्ति उठायी है वह महत्त्वपूर्ण है, पर जो निर्वचन उन्होंने स्वयं प्रस्तुत किया है वह भी उतने ही भारी आक्षेप से बच नहीं सकता। अशोक द्वारा प्रयुक्त सबसे महत्त्वपूर्ण शब्द ये हैं : मया संघे उपयीते (उपेते, उपयाते, या उपगते)। उपयीते या इसके पर्यायों का अर्थ 'प्रवेश करना' न होकर (संघ के) 'पास जाना' या (उसके साथ) 'संबद्ध होना' है। दूसरे, यह बड़ी संदिग्ध बात है कि क्या उस आरम्भिक काल में जब बौद्ध धर्माचार्यों को अपने संघ के नियमों की कठोरता कम करने की प्रेरक कोई लाभेच्छा या किसी तरह की लौकिक भावना नहीं हो सकती, वे एक व्यक्ति को एक ही समय में भिक्षु और राजा दोनों का कार्य करने देते। वी० ए० स्मिथ ने अवश्य एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत किया है जिसमें एक चीनी सम्राट्, बौद्ध भिक्षु और सम्राट् दोनों के कर्त्तव्यों में सामंजस्य करता था।[२] पर यह उदाहरण एक अन्यदेशीय राजा का और बहुत परवर्त्ती काल का है। इस उलझन को यह कहकर सुलझाया जा सकता है कि अशोक भिक्षु नहीं बना था, भिक्षु-गतिक बना था। यह भिक्षु-गतिक

---

१. कर्न, मैनुअल आफ इंडियन बुद्धिज्म, पृ० ११४ और टि० ५; E. I., जिल्द ३, पृ० १४१ और टि० ५।

२. अशोक, पृ० ३७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शब्द विनयपिटक के महावग्ग[१] में आता है, और बुद्धघोष ने उस व्यक्ति के अर्थ में इसका प्रयोग किया है जो "भिक्षुओं के साथ उसी विहार में रहता है।" यहां भिक्षु-गतिक और भिक्षु में भेद किया गया है, और यदि यह मान लिया जाय कि अशोक भिक्षु न होकर भिक्षु-गतिक हुआ था तो राजा और भिक्षु दोनों के कर्त्तव्यों में सामंजस्य करने का प्रश्न पैदा ही नहीं होता। दूसरी ओर, क्योंकि भिक्षु-गतिक भिक्षुओं के साथ उसी विहार में रहता है, इसलिए उसे उपासक—जो गृहस्थ होता है—नहीं कहा जा सकता। अशोक का संघ के साथ संबंध और निवास जो संघे उपयीते पदों से सूचित होता है, भिक्षु-गतिक के भिक्षुओं के साथ एक ही विहार में निवास के साथ बिलकुल ठीक बैठ जाता है। शुरू में बौद्ध धर्म का किसी व्यक्ति को भिक्षुगतिक बनने देने में वस्तुतः क्या उद्देश्य था, यह ज्ञात नहीं है, पर प्रतीत होता है कि इस तरह का जीवन उसी व्यक्ति के लिए ठीक-ठीक उपयुक्त है जो धार्मिक प्रवृत्ति वाला और सांसारिक सुखों से उदासीन होने पर भी, अपने व्यक्तिगत परन्तु प्रबल कारणों में से, गृहस्थ-जीवन अभी नहीं छोड़ सकता। शायद इस तरह की अवस्था में बौद्ध धर्म ने भिक्षु-गतिक का जीवन बिताने की स्वीकृति दे दी ताकि व्यक्ति अपनी धार्मिक प्रवृत्ति को भी तृप्त कर सके और उसे संसार-त्याग भी न करना पड़े। भिक्षु-गतिक भिक्षुओं के साथ विहार

---

१. III. ७. ८; SBE, जिल्द १३, पृ० ३१२, A. ९। इस निर्देश के लिए मैं अपने शिष्य श्री चरणदास चटर्जी का आभारी हूं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में रहता हुआ भिक्षुओं का वेश पहने, यह जरा भी अस्वाभाविक नहीं, और इसलिए यह कोई ताज्जुब की बात नहीं कि अशोक की जो प्रतिमा चीनी यात्री इ-त्सिंग ने सातवीं शताब्दी ई० प० में देखी थी उसमें सम्राट् को भिक्षु-वेष पहने दिखाया गया है।

जिस समय अशोक ने भिक्षुगतिक का जीवन आरम्भ किया उसी समय उसने एक और भी कार्य का श्रीगणेश किया था। शिला प्रज्ञापन ८ में कहा है :

"दीर्घकाल से राजा लोग विहार यात्राओं पर जाया करते थे। इसमें मृगया और ऐसे ही अन्य विनोद हुआ करते थे। अब राजा प्रियदर्शी, देवानांप्रिय, जब दस वर्ष पूर्व दीक्षित हुआ तब वह संबोधि (बोधि वृक्ष) गया। इस तरह यह धर्म-यात्रा (आरम्भ हुई)।"

यहां अशोक बताता है कि अपने राज्याभिषेक के दस वर्ष बाद तक वह पूर्ववर्त्ती राजाओं की तरह विनोद के लिए विहार-यात्रा पर जाया करता था जिसमें वह शिकार खेलता था। पर उस वर्ष उसने इन विहार-यात्राओं का विचार सर्वथा छोड़ दिया और इनके स्थान पर धर्म-यात्राएं शुरू कर दीं। वह इन धर्म-यात्राओं में वस्तुतः क्या करता था और इनके द्वारा वह अपने में और अपनी प्रजा में किस प्रकार धम्म का प्रतिपालन कर सका, यह हम एक अगले अध्याय में देखेंगे। यहां हमें जो बात देखनी है वह यह है कि अपने राज्याभिषेक से दसवें वर्ष उसने बोधि वृक्ष की यात्रा की और यह उसकी पहली धम्म-यात्रा थी। और क्योंकि यह वही समय है, जब वह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिक्षु-गतिक हुआ था, अतः इस अनुमान से बचना कठिन है कि उसने भिक्षुगतिक के रूप में अपना जीवन भिक्षुओं के एक संघ के साथ बोधिवृक्ष की यात्रा से आरम्भ किया, और इससे उसे तथा उसकी प्रजा को जो आध्यात्मिक लाभ हुए, उनसे प्रेरित होकर उसने पुनः यह धम्म-यात्रा की, यहां तक कि यह उसका एक नियमित कार्यक्रम हो गया। एक बाद की धम्म-यात्रा के संस्मरण, नैपाल के तराई प्रदेश में प्राप्त हुए दो स्तम्भ-लेखों में निश्चित रूप से संरक्षित प्रतीत होते हैं। इनमें से एक लेख सम्मिन्देइ में मिले एक स्तूप पर उत्कीर्ण है और दूसरा पहले से तेरह मील उत्तर-पश्चिम में निगलीवा स्थान पर है। इनमें से पहला अभिलेख हमें बताता है कि अपने राज्य-काल के बीसवें वर्ष अशोक स्वयं उस स्थान पर आया जिस पर उत्कीर्ण स्तम्भ खड़ा है, उसने अर्चना की, और क्योंकि यह वही स्थान था जहां शाक्यमुनि बुद्ध का जन्म हुआ था, इसलिए अशोक ने पत्थर की एक विशाल दीवार बनवायी और वहां स्तम्भ स्थापित किया। लेख में आगे लिखा है कि क्योंकि वहां भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था अतः लुम्बिनी गांव के सब धार्मिक कर (बलि) क्षमा कर दिये गये और उस गांव को सस्य का सिर्फ आठवां हिस्सा भूराजस्व (भाग) के रूप में देना होगा। लेख का अभिप्राय यह है कि अपने राज्यकाल के बीसवें वर्ष अशोक ने लुम्बिनी वन की यात्रा की, जहां बौद्ध किंवदन्ती के अनुसार, बौद्ध धर्म के संस्थापक राजकुमार सिद्धार्थ का जन्म हुआ था, और उसे वहां सिर्फ अर्चना करने से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संतोष नहीं हुआ बल्कि उसने बुद्ध के जन्म-स्थान के चारों ओर पत्थर का एक अहाता बनवाया और वहां एक स्तूप खड़ा किया। परन्तु इतना ही नहीं। हम जानते हैं कि कई तीर्थ-स्थानों पर आज भी यात्रियों को धार्मिक कर देना पड़ता है, जैसे उदाहरण के लिए, द्वारका (काठियावाड़) में। लुम्बिनी गांव, बौद्ध धर्म के संस्थापक का जन्म-स्थान होने के कारण, अशोक के समय से पहले भी तीर्थ-स्थान बन गया होगा और वहां सब तरह के बौद्ध यात्री आते होंगे; और यहां धार्मिक कर भी लगा दिया गया होगा। बौद्ध होने के कारण अशोक ने इस बात को पसन्द न किया होगा कि उसके सहधर्मियों से, उनके धर्म के संस्थापक के जन्म-स्थान पर धार्मिक कर लिया जाए और इसलिए उसे उड़ा दिया। पर उसने लुम्बिनी को एक यही उपहार नहीं दिया। प्राचीन भारत में प्रत्येक गांव को, अपने प्रदेश के राजा को अपने सस्य का चतुर्थांश या षष्ठांश देना पड़ता था। लुम्बिनी गांव, अशोक के शासन में होने के कारण, अपने सस्य का कुछ भाग भूराजस्व के रूप में उसे देता था। सस्य का कितना अंश उसे वास्तव में मिल रहा था, यह हमें ज्ञात नहीं, पर निश्चय ही यह षष्टांश से कम किसी भी अवस्था में न होगा। अशोक ने इसे घटाकर अष्टमांश कर दिया। नैपाल की तराई में अशोक का दूसरा स्तम्भ निगलीवा में है। इसके लेख में कहा है कि अपने राज्यकाल के चौदहवें वर्ष, उसने बुद्ध कोनागमन के द्वितीय स्तूप को बड़ा कराया, पर बीसवें वर्ष वह स्वयं उस स्थान पर आया और उसने अर्चना की। इसलिए यह बिल्कुल स्पष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है कि अशोक ने अपनी धर्मयात्रा अपने राज्यकाल के बीसवें वर्ष की। शायद कोई यह पूछे कि अशोक ने बुद्ध के जन्म-स्थान की यात्रा इतनी देर में, अर्थात् अपने बौद्ध बनने के छः वर्ष बाद, क्यों की। यदि बुद्ध लुम्बिनी वन में पैदा हुआ था, जैसे कि बौद्ध किंवदंती हमें बताती है, तो स्वभावतः यह आशा होती है कि अशोक पहले नैपाल की तराई जाता और वहां अपने धर्म के संस्थापक के जन्म-स्थान पर पूजा करता। पर यह ध्यान देने की बात है कि बौद्धों के लिए परम पुनीत स्थान वह है जिस पर बौद्ध ने उस ज्योति के दर्शन किये जो सिर्फ आध्यात्मिक नेत्रों को दिखायी देती है, विषयासक्त नेत्रों को नहीं। और इसी कारण, हम देखते हैं कि अशोक अपने उपासक काल की उदासीनता को झाड़-फेंकने, और भिक्षु-गतिक का कठोर और तपस्वी जीवन ग्रहण करने का आरम्भ संबोधि की यात्रा से करता है, जहां बौद्ध धर्म के प्रवर्त्तक को बोध हुआ था और वह बुद्ध बना था।

इस तरह हम देखते हैं कि अशोक ने अपने राज्य-काल के आठवें वर्ष बौद्धमत ग्रहण किया, लगभग ढाई वर्ष तक वह साधारण बौद्ध रहा और उसने अपने धर्म के प्रति विशेष उद्योग नहीं किया, और दसवें वर्ष वह भिक्षुगतिक हो गया, जिससे उसके राजकीय कर्त्तव्यों के निर्वहन में कोई बाधा नहीं पड़ी। अपने भिक्षु-गतिक जीवन का आरम्भ उसने बोधिवृक्ष की यात्रा से कियां, और अब, अपने धम्म के प्रचार के लिए उसे इतनी अधिक व्याकुलता और अटूट उत्साह हो गया कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लगभग एक वर्ष बाद ही उसे आश्चर्य होने लगा कि मैंने कितना अधिक काम कर डाला । उसका काम, निःसंदेह, धम्म का प्रसार था । इस धम्म का यथार्थ स्वरूप क्या था, यह हम अगले अध्याय में देखेंगे; वहां हम यह भी देखेंगे कि यह नैतिक आचार की एक संहिता थी, पर यह उन आचारों की संहिता न थी जो सब धर्मों में सिर्फ समान हैं, जैसाकि कुछ विद्वान मानते हैं, यह उन आचारों की संहिता थी जिनका बौद्ध धर्म साधारण जनसमाज के लिए विधान करता है, और इस बात का अनुमान इस तथ्य से भी हो सकता है कि जब अशोक बौद्ध था तब वह इनका प्रचार करता था । पर इस अध्याय में, जिसमें हम अशोक के बौद्ध रूप पर विचार कर रहे हैं, हमें उसके सिर्फ उन प्रज्ञापनों पर ध्यान देना है जिनमें वह अपने आपको अपने संप्रदाय का पक्षपाती प्रकट करता है ।

इस विचार में हमारा सबसे पहले ध्यान खींचने वाला लेख भाब्रू प्रज्ञापन है । यह लेख वस्तुतः जयपुर राज्य (राजपूताना) के उत्तरी भाग में स्थित बैराट नामक स्थान पर एक पर्वतीय विहार के खंडहरों में प्राप्त हुआ है । यह अशोक द्वारा बौद्ध संघ को भेजे गये एक संदेश के रूप में है, जिसकी एक-एक प्रति उसने प्रत्येक महत्त्वपूर्ण मठ और विहार में उत्कीर्ण करायी होगी और रखवायी होगी, और भाब्रू प्रज्ञापन इस समय प्राप्त हुई इस तरह की सिर्फ एक प्रति प्रतीत होती है । इस लेख के आरम्भ में अशोक प्रसिद्ध बौद्ध वाक्यावलि के अनुसार बुद्ध, धर्म और संघ में अपनी आस्था की, और अपने इस विश्वास की

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि जो कुछ बुद्ध ने कहा है वह सब सत्य है, घोषणा करता है। इस अभिलेख के साम्प्रदायिक रूप के बारे में संभवतः कोई संदेह नहीं किया जा सकता। इस संदेश का उद्देश्य कुछ धम्मपर्यायों या धर्मग्रंथों की संख्या गिनाना है जिसके बारे में उसकी हार्दिक अभिलाषा थी कि उन्हें न केवल भिक्षु और भिक्षुणी बल्कि उपासक और उपासिकाएं भी सुनें और याद करें ताकि सद्धर्म चिरस्थायी हो। अशोक ने जिन ग्रन्थों का निर्देश किया है वे निम्नलिखित हैं :—

१. विनय समुकसे
२. अलिय-वसाणि = आर्यवंश (अंगुत्तर, २,२७)
३. अनागत-भयानि (वही, ३, १०३)
४. मुनि गाथा = मुनिसुत्त (सुत्तनिपात, पृ० ३६)
५. मोनेय सूते = नालक-सुत्त (वही, पृष्ठ १३१–४)
६. उपतिस–पसिन = रथविनीत सुत्त (मज्झिम-निकाय, १, १४६–५१)
७. लाघुलोवाद = राहुलोवाद सुत्त (वही, पृष्ठ ४१४)

इनमें से पहले ग्रंथ को छोड़कर और सबका पता चल चुका है। बुद्धघोष ने अपने विशुद्धि-मग्ग में एक तरुण भिक्षु की कथा दी है— यह भिक्षु तीन मास तक अपनी माता के घर भोजन करता रहा पर इसने यह कभी नहीं कहा कि 'मैं तेरा पुत्र हूं, और तू मेरी माता है'; इससे उसने यह प्रदर्शित किया है कि सच्चे भिक्षु के लिए माता और पिता कोई बाधा नहीं हैं।[1]

---

१. वारेन का बुद्धिज़्म इन ट्रांसलेशन्स, पृ० ४३४–६ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस तरुण भिक्षु ने ऐसा आदर्श जीवन इस कारण बिताया कि वह, बुद्ध द्वारा रथविनीत-सुत्त, नालक, तुवट्टक और महाआर्यवंश में बताये गये आचार-मार्ग का अनुसरण करता था। जिन सुत्तों में बुद्ध के भिक्षुओं को दिये गये उपदेश माने जाते हैं वे बहुत सारे हैं पर इस कथा में सिर्फ चार पर बल दिया गया है जिससे प्रतीत होता है कि बुद्धघोष के समय तक ये उपर्युक्त चार सुत्त किसी बौद्ध भिक्षु के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण माने जाते थे। अधिकतर विद्वानों ने यह स्वीकार कर लिया है कि अशोक के अलियवसाणि, मोनेय-सुत, और उपतिस पसिनि बुद्धघोष की कथा के, क्रमशः महा-आर्यवंश, नालक सुत्त और रथविनीत के संवादी हैं।[1] यदि बुद्धघोष द्वारा निर्दिष्ट चार में से तीन सुत्त वही हैं जो अशोक द्वारा उल्लिखित धम्मपर्यायों में से तीन हैं, तो यह विचित्र बात है कि चौथा, अर्थात् तुवट्टक, अशोक द्वारा वर्णित ग्रंथों में क्यों नहीं मिलता। पर इस सुत्त के सातवें श्लोक से यह प्रतीत होता है कि बुद्ध इसमें धार्मिक आचरणों (पटिपदा), उपदेशों (पातिमोक्ख), और समाधि का प्रतिपादन कर रहा है।[2] और यहां प्रयुक्त पटिपदा और पातिमोक्ख शब्दों से यह अनुमान होता है कि तुवट्टक सुत्त में अशोक का विनय-समुकसे, सर्वश्रेष्ठ विनय है।

---

१. IA १९१२, पृ० ३७ और आगे; न्यूमैन, बुद्धिस्ट रेंडेव, जिल्द १, पृ० १५२।

२. सुत्तनिपात, पृ. १७१; SBE जिल्द १०, भाग १.१., पृष्ठ १६८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक द्वारा निर्दिष्ट धम्म-पर्यायों की उपर्युक्त पहचान से यह पता चल जायगा कि कभी-कभी एक ग्रंथ कई नामों से प्रसिद्ध हो जाता था। इस तरह मोनेय सूत्त उसी सुत्त का सिर्फ नामांतर है जो नालक सुत के नाम से भी प्रसिद्ध है। पर राजा द्वारा निर्दिष्ट सिद्धान्त-ग्रन्थों की यह कोई विशेषता नहीं थी। अन्य कई ग्रन्थ ज्ञात हैं और उनका पहले जिक्र किया जा चुका है।[1] दूसरे, अशोक द्वारा इन ग्रन्थों की चर्चा से उसके समय में सारे त्रिपिटक या उसके किसी भाग के अस्तित्व के विरुद्ध कोई बात नहीं सिद्ध होती क्योंकि अशोक यहां सिर्फ थोड़े से धार्मिक ग्रंथों की चर्चा कर रहा है, और जिनकी चर्चा वह नहीं कर रहा या जिनमें से वह नहीं छांट रहा उनका उसके समय में अभाव नहीं माना जा सकता।

अशोक ने जिन धार्मिक ग्रंथों को छांटा है, उनसे प्रकट होता है कि वह किस प्रकार का बौद्ध था। उसका हृदय बौद्ध मत के कर्मकांडीय या दार्शनिक अंश पर लट्टू नहीं था--वह तो उस धर्म के, या इस प्रसंग में यह भी कह सकते हैं कि किसी भी धर्म के, मूल सिद्धान्तों पर मुग्ध था। वह उन नियमों या आचारों से आकर्षित नहीं हुआ जो बाहर से या यंत्रवत् पाले जाते हैं बल्कि उनसे प्रभावित हुआ जो वास्तविक, आन्तरिक उन्नति है और उस उन्नति को उत्पन्न करता है। उदाहरण के लिए अशोक द्वारा निर्दिष्ट एक ग्रंथ आर्यवंश को लीजिए।

---

1. IA, 1912, पृ० ४०.

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसमें भिक्षु के लिए चार आचार-मार्गों का विधान है। सुत्त कहता है कि भिक्षु को (१) सादे वेष से (२) सन्मार्ग से प्राप्त किये हुए सादे भोजन से और (३) छोटे-से-छोटे मकान से संतुष्ट रहना चाहिए, और (४) ध्यान में आनन्द लेना चाहिए। इस प्रकार यह ग्रंथ संक्षेप में हमें बता देता है कि भिक्षु को कैसा होना चाहिए या कैसे रहना चाहिए। दो-तीन और ग्रंथ, जैसे मुनिगाथा और मोनेय-सुत्त, भी लगभग यही बात कहते हैं। और अशोक द्वारा निर्दिष्ट धर्मग्रन्थों में से एक भी ऐसा नहीं जिसका सम्बन्ध धर्म की बाह्य बातों, किसी धार्मिक संघ के निरे अनुशासन-सम्बन्धी नियमों, से हो जिनके पालन से कोई भिक्षु बाहर से तो पूर्ण भिक्षु बन जाता हो पर आवश्यक नहीं कि वह अन्दर से भी अच्छा आदमी बन जाए। राजा द्वारा निर्दिष्ट सब सुत्त आत्मा को ऊंचा उठाने के सम्बन्ध में हैं और वे सिर्फ भिक्षुओं पर ही नहीं, बल्कि साधारण उपासकों पर भी लागू होते हैं। इसी कारण वह खोलकर कहता है कि इन सुत्तों को, न केवल भिक्षु और भिक्षुणी, बल्कि साधारण उपासक और उपासिकाएं भी सुनें और मनन करें। फिर, अशोक ने जो सुत्त चुने हैं उनमें वह सिर्फ उनको शामिल करके संतुष्ट नहीं हुआ जिनमें जीवन की उच्च अवस्था का वर्णन है या महान् और उदात्त चरित्र के उपादानों का विवरण है,—उसने उनका उल्लेख करने की भी सावधानी रखी है जो आध्यात्मिक उन्नति के मार्ग में सहायक और पथ-प्रदर्शक हैं। ऐसा एक सुत्त अनागत-भयानि है जिसमें "भविष्य के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उन भयों और खतरों का" उल्लेख है जो मनुष्य की धार्मिक साधना के ध्येय की सिद्धि में किसी भी क्षण पैदा हो सकते हैं और उसे हताश कर सकते हैं। इसमें कुछ विधि-निषेध हैं जिनका सार यह है कि आयु, रोग, दुर्भिक्ष, युद्ध और फूट आदि भविष्य की असंभावित प्रतिकूल घटनाओं का ध्यान रखते हुए समस्त शक्तियों का उपयोग करना और सावधान तथा तपस्वी जीवन बिताना चाहिए। इस तरह अशोक एक ऐसा ग्रन्थ प्रस्तुत करके ही संतुष्ट नहीं हुआ जिसमें जीवन की सर्वश्रेष्ठ रीति वर्णित है, बल्कि उसने एक ऐसे सुत्त पर भी बल दिया जिसमें उन खतरों का उल्लेख है जो सदा सतर्क और जागरूक न रहने वाले व्यक्ति की सिद्धि के मार्ग में आते हैं और उसके प्रयत्नों को व्यर्थ कर देते हैं। पर अन्ततः ये खतरे बाहरी ढंग के हैं। यह सही है कि हमें निरन्तर सचेत रहना चाहिए और अत्य-धिक यत्न से उनसे बचना चाहिए। परन्तु फिर भी ये खतरे बाहरी परिस्थितियों पर निर्भर हैं जिन पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं। पर कुछ और भी खतरे हैं जो भीतरी ढंग के हैं और जो आध्यात्मिक सिद्धि में उतने ही बाधक हैं जितने बाहरी खतरे। और इसलिए राजा ने राहुलोवाद सुत्त जैसे एक ग्रंथ की ओर ध्यान खींचकर बड़ी बुद्धिमत्ता का काम किया है—इसमें बुद्ध ने अंबलट्ठिक राहुल को उपदेश दिया है और दीक्षा के समय तथा बाद, काय, वाणी और मन की प्रत्येक क्रिया की कड़ाई से जांच करते रहने की परम आवश्यकता प्रतिपादित की है। अशोक ने जिन पुस्तकों की सिफारिश की है उनसे, ऊंचे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और उदात्त जीवन के लिए यत्नवान् प्रत्येक व्यक्ति को, चाहे वह किसी भी धर्म या मत का मानने वाला हो, अवश्य शान्ति-लाभ करेगा।

सांप्रदायिक ढंग का एक और ध्यान देने योग्य लेखन अशोक का शासन या आदेश है, जो तीन विभिन्न स्थानों—सारनाथ, सांची और इलाहाबाद—में स्तम्भों पर उत्कीर्ण मिलता है। सारनाथ और सांची वाले स्तंभ शुरू से वहीं पर अवस्थित माने जाते हैं, पर इलाहाबाद वाले के विषय में यह माना जाता है कि वह शुरू में कौशांबी में था, और यह ठीक ही माना जाता है। इस शासन द्वारा अशोक बौद्ध संघ की एकता कायम रखने के लिए संघ में फूट डालने की सब कोशिशों को दबाने का यत्न करता है। वह कहता है, "जो भी कोई व्यक्ति, चाहे वह भिक्षु हो चाहे भिक्षुणी, संघ में फूट डाले उसे श्वेत वस्त्र पहना दिये जायें और संघ से बाहर कर दिया जाए। यह आदेश भिक्षुओं के संघ और भिक्षुणियों के संघ को बता दिया जाए।" यह आदेश महामात्रों को संबोधित किया गया है, जैसा कि इनमें से दो लेखों से स्पष्ट है। इनमें से एक लेख से यह भी प्रकट होता है कि वह कौशांबी में अवस्थित महामात्रों के लिए था। और यह जरा भी असंभाव्य नहीं कि अन्य लेख भी मुफस्सिल जिलों के महामात्रों के लिए हों, जहां प्राचीन बौद्ध विहार शुरू में अवस्थित थे जिनके अवशेष अब सारनाथ और सांची में मिलते हैं। बौद्ध संघ में फूट को रोकना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कार्य था। इसलिए इतना ही पर्याप्त न था कि उस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संबंध में जिलों के महामात्रों को सिर्फ आदेश जारी कर दिये जाएं। इसलिए वह उसी प्रज्ञापन में यह भी कहता है, : "इस आदेश की एक प्रति संसरणा अर्थात् सभास्थान में तुम्हारे देखने के लिए रख दी गयी है। और दूसरी प्रति ऐसे स्थान पर रख दो जहां उपासक लोग उसे देख सकें। और उपासकों को प्रत्येक उपवास के दिन इसे पढ़ना और इससे उत्साहित होना चाहिए। और प्रत्येक महामात्र को भी उपवासों के दिन अपनी बारी में (मुख्यालय लौटने पर) इस आदेश को पढ़कर और समझ कर उत्साहित होना चाहिए। और जहां तक तुम्हारा क्षेत्राधिकार है वहां तक तुम (मेरे इस आदेश के शब्द) अपने दौरे के समय पहुंचाओ। इसी प्रकार सब दुर्गयुक्त नगरों और (उनके) जिलों में तुम मेरे इस आदेश का प्रचार कराओ।"

इस प्रज्ञापन के शब्दों से स्पष्ट है कि अशोक बौद्ध संघ में से सब प्रकार की फूट और भेदभाव को समाप्त करने पर तुला हुआ था। इस कार्य की पूर्त्ति के लिए उसने तीन मार्ग पकड़े। पहले तो उसने यह आदेश जारी किया कि जो संघ को तोड़ने की कोशिश करेगा उसे पीले भिक्षु वेष के स्थान पर श्वेत वस्त्र पहना दिये जाएंगे और ऐसे स्थान पर पहुंचा दिया जाएगा जहां भिक्षु नहीं रहते। दूसरे शब्दों में, उसका अपने और साथियों से तत्काल सम्बन्ध-विच्छेद हो जाएगा। और क्योंकि अशोक का आदेश प्रत्येक बौद्ध संघ को भेजा जाना है इसलिए यदि कोई झगड़ालू भिक्षु अपने संघ-विरोधी सिद्धान्त और भिक्षुओं के सामने रखना चाहेगा तो उसे इसमें स्वभावतः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संकोच होगा। इस तरह फूट का तीन-चौथाई भय दूर हो गया। पर संभव है कि इस तरह संघ से बाहर किया हुआ विरोधी भिक्षु उपासकों को प्रभावित करने में समर्थ हो जाए और उनकी सहायता से समाज में फूट पैदा करे। अशोक इस खतरे से सचेत है और इसलिए महामात्रों को इस आदेश की एक प्रति उपासकों के देख सकने योग्य स्थान पर चिपकाने का आदेश देता है। प्रज्ञापन से यह पता नहीं चलता कि उनके देख सकने के लिए यह आदेश ठीक किस स्थान पर लगाया जाना था। पर असंभव नहीं कि इसे निगम सभा (नगरपालिका भवन) में लगाने का आशय हो जिसका लेखों और साहित्य, दोनों में इतना अधिक वर्णन मिलता है।[1]

सारनाथ-कौशांबी-सांची प्रज्ञापन से इस बात में कोई संदेह नहीं रहता कि अशोक ने बौद्ध संघ में फूट डालने के सब प्रयत्नों को दबाने का दृढ़ संकल्प कर लिया था। प्रज्ञापन के गम्भीर, बल्कि कठोर, लहजे से तथा इस तथ्य से कि इसकी प्रतियां महत्त्वपूर्ण बौद्ध विहारों वाले स्थानों पर मिली हैं, यह सहज ही अनुमान हो सकता है कि उसके समय में बौद्ध संघ को फूट का कम से कम खतरा तो अवश्य पैदा हो गया था, और उसे रोकने के लिए अशोक ने पूरा यत्न किया। पर क्या, अशोक के समय में बौद्ध संघ में सचमुच कुछ विभाजन हो गये थे? प्रज्ञापन तो निःसंदेह फूट रोकने के आशय से जारी किया गया है, पर यह कहा जा सकता है कि बहुत संभाव्यतः संघ

१. वही, १९१९, पृ० ८२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहले ही कई भागों में बंट गया होगा तथा अशोक ने और अधिक विभाजन को रोकने का यत्न किया होगा। सिंहलीय इतिवृत्त में सुरक्षित बौद्ध किंवदंती में बताया गया है कि अशोक के अभिषेक के अट्ठारह वर्ष बाद पाटलिपुत्र में एक बौद्ध परिषद् हुई थी, और उसी में यह भी कहा गया है कि उस समय संघ दो मुख्य भागों---थेरवाद और महासंघिक---में बंटा हुआ था, और पहले भाग की दो शाखाएं हो गयी थीं और पिछले की चार।[1] यदि हम इस किंवदंती को स्वीकार कर लें तो हमें यह मानना होगा कि अशोक के समय में बौद्ध संघ न केवल विभागों में, बल्कि उपविभागों में भी बंट चुका था। तो फिर उस प्रज्ञापन का क्या अर्थ हो सकता है जो फूट रोकने के उद्देश्य से जारी किया गया था? या हम यह मान लें कि अशोक सारे बौद्ध संघ की फूट को नहीं रोक रहा था बल्कि उस विभाग या उपविभाग की फूट रोक रहा था जिसमें वह स्वयं था? निःसंदेह, यह कहा जा सकता है कि इस प्रज्ञापन में अशोक का संघ से अभिप्राय बौद्ध धर्म के उस सम्प्रदाय से है जिसका वह स्वयं सदस्य था। पर यदि हम एक बार इस विचार को मान लें तो हमें यह भी स्वीकार करना होगा कि अशोक ने जहां भी संघ शब्द का प्रयोग किया है वहां उसका अभिप्राय बौद्ध संघ के उसी विभाग से है। परन्तु यह निष्कर्ष मान्य नहीं प्रतीत होता। क्योंकि स्तम्भ लेख ७ में, जिसमें उसने धर्म महामात्रों का उल्लेख किया है, उसने आजीवकों और निर्ग्रन्थों

१. कर्न मैनुअल आफ इंडियन बुद्धिज़्म, पृ० ११०–१।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के साथ संघ का उल्लेख किया है। तो क्या यहां हम यह मान लें कि इन धर्म महामात्रों को आजीविकों और निर्ग्रन्थों की सुख-सुविधा का ध्यान रखने में कोई मत या संप्रदाय का भेदभाव नहीं करना था, पर बौद्धों के बारे में उन्हें सारे बौद्ध संघ के बजाय सिर्फ उस बौद्ध संप्रदाय के लोगों का ध्यान रखना था जिसे अशोक मानता था और संघ के अन्य विभागों और उपविभागों की ओर दृष्टिपात नहीं करना था ? इसी प्रकार भाब्रू प्रज्ञापन में, जैसाकि हम देख चुके हैं, वह संघ के पढ़ने के लिए कुछ धार्मिक ग्रंथ गिनाता है। ये ग्रंथ साम्प्रदायिक तत्वों से इतने रहित हैं कि जो भिक्षु बौद्ध नहीं हैं वे भी इन्हें प्रसन्नता से पढ़-सुन सकते हैं। और क्या हम यह मान लें कि बौद्धों में से हर बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणी को वे ग्रंथ न पढ़ाए जाएं बल्कि सिर्फ उनको पढ़ाए जाएं जो अशोक के संप्रदाय के थे। यदि हम इन बेहूदी बातों को नहीं मानना चाहते तो यही स्वीकार करना वांछनीय प्रतीत होता है कि अशोक के समय बौद्ध संघ में विभाजन नहीं था, और कि जहां वह संघ शब्द का प्रयोग करता है वहां उसका अभिप्राय सारे अविभाजित बौद्ध संघ से है। तो फिर उस बौद्ध किंवदंती का क्या मतलब है ? जिन विद्वानों ने बौद्ध परिषदों संबंधी इन किंवदन्तियों की सचाई जांचने की कोशिश की है उनके समक्ष ऐसी बेहूदगियां और असंगतियां प्रस्तुत हो गयीं और उन्हें इतनी अधिक मतवादी और साम्प्रदायिक प्रवृत्ति दिखायी पड़ी कि इन किंवदन्तियों में कही गयी अत्यल्प ही बात को ऐतिहासिक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सत्य माना जा सकता है।[1] इस प्रकार पाटलिपुत्र में हुई परिषद कोई बड़ी, सब संप्रदायों की परिषद नहीं मालूम होती––यह किसी सम्प्रदाय-विशेष की परिषद मालूम होती है––और दूसरी बड़ी परिषद, जो वैशाली में हुई थी, बहुत संभाव्यतः बुद्ध के एक शताब्दी बाद नहीं हुई बल्कि अशोक के समय ही हुई और अशोक को ही किंवदन्ती में कालाशोक, अर्थात् काला अशोक, कहा गया है––बौद्ध होने से से पहले उसका पापी का रूप ही चित्रित किया गया है[2]। यह अनुमान उसके प्रज्ञापनों के साथ अधिक संगत है। क्योंकि, द्वितीय महापरिषद के समय, बौद्ध संघ में अभी फूट नहीं पड़ी थी, पर फूट पड़ने का खतरा पैदा हो गया था क्योंकि वृजन भिक्षुओं ने अनुशासन के सम्बन्ध में दस प्रश्न उठाये थे।[3] वृजन भिक्षु पराजित हो गये और उस समय संघ फूट से बच गया। अशोक के प्राचीन लेख भी, जैसा कि हम अभी देख चुके हैं, इसी अनुमान का संकेत करते हैं कि संघ से सम्राट का आशय सारे बौद्ध संघ से है, उसके किसी भाग विशेष से नहीं, अर्थात् सारे अविभक्त बौद्ध संघ से है, और कि उसके समय में फूट डालने का कोई यत्न अवश्य किया गया होगा क्योंकि अन्यथा प्रचलित धर्म के विरोध को दबाने के लिए इतनी व्यापक कार्यवाही का कोई मतलब नहीं रहता।

---

१. वही, पृष्ठ ११०, जिसमें इस विषय पर स्व. प्रो. कर्न की सम्मति दी हुई है।

२. वही, पृ. १०९; JRAS, १९०१, पृ. ८५५–८।

३. कर्न, उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १०३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कभी-कभी यह प्रश्न किया जाता है कि बौद्ध संघ की दृष्टि से अशोक की क्या स्थिति थी। अपने धर्म के संघ के साथ उसका व्यवहार अधिपति जैसा था या अनुगत जैसा ? यदि इस प्रश्न का उत्तर हम किसी अभिलेख से पा सकते हैं वे उपर्युक्त दो ही प्रज्ञापन हैं अर्थात् सारनाथ और भाब्रू के प्रज्ञापन। इनमें से पहला, जैसे कि हम देख चुके हैं, आशंकित फूट को शुरू में ही दबाने का एक प्रयत्न है। दुर्भाग्य से, इस लेख का आरम्भिक अंश बहुत-कुछ मिट गया है, और इस कारण हम यह नहीं जान पाते कि महामात्रों को यह किस रीति से निश्चय करना था कि अमुक भिक्षुक या भिक्षुणी धर्म-विरोधी है या नहीं। क्या इस बात का निर्णय संघ ने बहुमत से करना था और महामात्रों को सिर्फ इसके निर्णय के अनुसार ही चलना था ? यदि सारनाथ प्रज्ञापन का नष्ट अंश सुरक्षित होता तो संभाव्यतः इस प्रश्न पर कुछ प्रकाश पड़ा होता। पर यह स्मरण रहना चाहिए कि अशोक ने इस अभिलेख को शासन या आदेश कहा है, और कि राजा ने महामात्रों को आज्ञा दी है कि वे उसका आदेश अपने प्रदेश के अन्दर विद्यमान प्रत्येक भिक्षु-संघ या भिक्षुणी-संघ को बता दें। यदि यहां वह सिर्फ उस निश्चय को लागू कर रहा है जो स्वयं बौद्ध संघ की महासभा ने पूर्ण और परिपक्व विचार के बाद किया है, तो छोटे संघों में इस प्रकार के आदेश की घोषणा करना सर्वथा अनावश्यक है। इस प्रकार प्रतीत होता है कि उसने वह आदेश अपने संघ से बिना पूछे, और बिना उसे जताये जारी किया था—संभाव्यतः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संघ में प्रशासन की वह प्रणाली भी नहीं थी जो आज यूरोप में ईसाई चर्च में विद्यमान है। संभवत: उसकी राजधानी में कुछ थेर अर्थात् वरिष्ठ भिक्षु रहते होंगे जो उसे यह बताते होंगे कि किसी विशेष मामले में कोई धर्म-विरोधिता है या नहीं, परन्तु राजा अपनी लौकिक सत्ता के बल और अधिकार द्वारा इसे सर्वथा मिटाना चाहता था। भाब्रू प्रज्ञापन के विवेचनात्मक अध्ययन से भी यही अनुमान निकलता मालूम होता है। इसमें अशोक कुछ बौद्ध ग्रन्थों के नाम गिनाता है और वे न सिर्फ उपासकों से बल्कि मुख्यत: भिक्षुओं से पढ़ने का अनुरोध करता है। फिर, वह कहता है कि भिक्षु इन ग्रंथों को न केवल सुनें बल्कि इनका मनन भी करें, यद्यपि वह स्वयं सिर्फ उपासक है। और यह सब अशोक क्यों कर रहा है? ताकि सद्धर्म चिर-स्थायी रहे। नि:संदेह, यह सच है कि उसने जिन धार्मिक ग्रंथों का उल्लेख किया है वे कर्मकांड या दार्शनिक पहेलियों से शून्य हैं, और ठीक इस प्रकार के हैं कि उनसे आध्यात्मिक उन्नति हो सके, पर यह बात निर्विवाद है कि वह अपने ही उद्देश्य की सिद्धि कर रहा है, और यह भी वह स्वयं सोची हुई ऐसी विधि से कर रहा है जिसका न केवल उपासक, बल्कि भिक्षु भी बिना ननुनच के अनुसरण करते हैं। इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि वह न केवल अपने साम्राज्य का बल्कि अपने से संबंधित संघ का भी अधिष्ठाता था। दूसरे शब्दों में वह जितना सांसारिक कार्यों में शासक था, उतना ही संघ के कार्यों में भी था। परंतु यह आरोप लगाना उचित नहीं कि अशोक ने संघ की शासन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शक्ति को हथिया लिया। क्योंकि बुद्ध ने स्वयं यह आदेश दिया है कि राजा की प्रसन्नता के लिए मेरे उपदेशों को भी भूल जाओ और भिक्षुओं को राजाज्ञा पालन करने का आदेश दिया है।[1] और जब वह राजा अशोक जैसा हो, जो उनके धर्म में सच्ची आस्था रखता हो और इसे विश्व धर्म की स्थिति में पहुंचा रहा हो, तब तो संघ स्वभावत: और प्रसन्नता से उसका नेतृत्व स्वीकार करेगा।

१. महावग्ग, III. ४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ४

अशोक का धम्म

दूसरे अध्याय में हम देख चुके हैं कि अशोक ने अपनी प्रजा क एहिक लाभ के लिए क्या किया और अब हम राजा के रूप में उसका एक खाका अपने-अपने मन में बना सकते हैं। निःसंदेह उसने अपनी प्रजा के ऐहिक लाभ के लिए बड़ा कठोर यत्न किया। पर जिस बात ने अशोक को जगत्प्रसिद्ध किया है, और सच तो यह है कि जो मुख्य ध्येय सदा उसके मन में रहता था और जिसकी सफलता पर वह अभिमान करता था, वह था मनुष्य का आध्यात्मिक लाभ, जिसे वह धम्म नाम से कहना पसन्द करता था, उसका न केवल अपने साम्राज्य में, बल्कि अपने स्वाधीन पड़ौसियों के राज्यों में भी प्रसार। इसलिए उचित यह है कि सबसे पहले हम यह निश्चय करें कि अशोक धम्म का ठीक-ठीक क्या अर्थ लगाता था। इस प्रश्न का वह स्पष्ट उत्तर देता है और वह धम्म के अन्तर्गत आने वाले गुण ही नहीं बताता, उसके विशेष आचार भी बताता है, जिनका पालन करने के लिए अपनी प्रजा से कहते-कहते वह कभी नहीं थकता। स्तम्भ लेख २ और ७ में अशोक वे गुण बताता है जो उसकी सम्मति में धम्म के उपादान हैं। उसकी सम्मति में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धम्म के उपादान हैं (१) **साधवे या बहु-कयाने** अर्थात् सत्कार्य प्रभूत (२) **अप-आसिनवे,** अर्थात् दुष्कार्य अल्प (३) **दया,** (४) **दान,** अर्थात् उदारता (५) **सचे,** अर्थात् सत्यवादिता (६) **सोचये,** अर्थात् पवित्रता, और (७) **मादवे** अर्थात् मृदुता। पर इन गुणों को व्यवहार में कैसे लाया जाएगा? अशोक इस सिलसिले में कर्तव्यों की कई गणनाएं करता है जो विभिन्न लेखों में थोड़ी-थोड़ी भिन्न हैं। इन्हें संक्षेप में इस प्रकार रखा जा सकता है : **अनारंभो प्राणानां** 'प्राणवान्' जन्तुओं की अ-हत्या; **अविहिसा भूतानां,** 'अस्तित्ववान्' जंतुओं को अ-क्षति; मातरि पितरि **सुस्रूसा,** माता-पिता की शुश्रूषा; **थेर-सुस्रूसा,** वृद्धों की शुश्रूषा; **गुरूणां अपचिति,** गुरुओं का समादर; **मित संस्तुत-नाटिकानां बहमण-समणानां दानं संपटिपति,** मित्रों, परिचितों और संबंधियों के प्रति तथा ब्राह्मण और श्रमण साधुओं के प्रति उदारता और सम्यक् व्यवहार; **दास-भतकम्हि सम्यप्रतिपति,** दासों और नौकरों से सम्यक् व्यवहार; और सिर्फ एक लेख (शि० प्र० ३) में **अप-व्ययता** और **अपभंडता,** अल्प व्यय और अल्प संचय। सब स्थानों और सब कालों के लिए अशोक ने संसार को जो संदेश दिया, यह उसका एक भाग है। यह सामान्य प्रचलित बातों जैसा लगता है पर फिर भी कितना स्पष्ट, सरल और सत्य है! वह हमें दया, दान, मार्दव आदि का व्यवहार करने के लिए कहकर ही संतुष्ट नहीं होता, बल्कि यह भी बताता है कि इन गुणों को व्यवहार में कैसे लाना है। इस तरह दया का अर्थ है **अनारंभो प्राणानां**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अविहिसा भूतानां, जंतुओं की अहत्या और उन्हें चोट न पहुंचाना; दान का अर्थ है मित्रों, परिचितों और सम्बन्धियों से तथा साधुओं से, चाहे वे ब्राह्मण हों, चाहे श्रमण, उदार व्यवहार करना; और मार्दव माता-पिता तथा वृद्धों की शुश्रूषा से, तथा सम्बन्धियों और ब्राह्मण व श्रमण साधुओं के साथ-साथ दासों और नौकरों से भी सम्यक् व्यवहार से प्रकट होगा।

अशोक को अपने संदेश का यह भाग इतना प्रिय है कि वह अपनें प्रज्ञापनों में इसे बार-बार दोहराकर प्रसन्न होता है। शिला प्रज्ञापन १४ में वह स्पष्ट स्वीकार करता है कि कुछ शब्द अपने अर्थ की मधुरता के कारण बार-बार दोहराये गये हैं। धम्म शब्द और इसका अर्थ उसे इतने मधुर लगते हैं कि वह न केवल धम्म के उपादान-रूप कर्त्तव्यों को दोहराता है, बल्कि धम्म तथा जीवन के सामान्य आचरणों की तुलना करके, और दोनों में से धम्म की श्रेष्ठता सिद्ध करके इसकी महिमा भी प्रतिपादित करता है। इस प्रकार शिला प्रज्ञापन ९ में वह धम्म या जिसे वह **धम्म मंगल** कह कर पुकारता है उसका, सुख-प्राप्ति और दुखनिवृत्ति के लिए किये जाने वाले मंगलों या मांगलिक कृत्यों से, जो हिन्दू समाज में अशोक के समय भी लाखों थे, मुकाबला करता है। वह उस प्रज्ञापन में कहता है : "लोग रोगों, विवाहों, और पुत्रों के जन्म पर तथा यात्राओं के समय अनेक मांगलिक कृत्य करते हैं ....। पर इस प्रसंग में स्त्रियां, अनेक प्रकार के (पर) क्षुद्र, बहुत निरर्थक कृत्य करती हैं। मंगल-कृत्य अवश्य किये जाने चाहिएँ, पर

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार के कर्मकांड का बहुत कम लाभ होता है। पर धम्म मंगल (या धम्म की पूर्ति कराने वाले कृत्यों) से बहुत लाभ होता है।" और इसके बाद वह वे कर्त्तव्य समझाता है जो उसकी शिक्षाओं का व्यावहारिक रूप हैं और जो अभी गिनाये गये हैं। इसी प्रकार, शिला प्रज्ञापन ११ में वह दान यानी सामान्य दान और धम्मदान का वैषम्य प्रस्तुत करता है। वह हमें बताता है कि धम्मदान दान का उच्चतम रूप है, और इसका अर्थ है किसी को धम्म बताना, धम्म में भाग लेना, और इस प्रकार धम्म से संबद्ध हो जाना। और इस धम्म के स्पष्टीकरण के लिए वह फिर अपने नैतिक आचार गिनाता है, और अन्त में कहता है कि यह धम्मदान कोई भी किसी को कर सकता है—पिता पुत्र को, पुत्र पिता को, भाई एक दूसरे को, और वास्तव में तो, प्रत्येक व्यक्ति अपने पड़ौसी को धम्मदान कर सकता है। इसी तरह शिला-प्रज्ञापन १३ में अशोक सामान्य विजय और धम्म-विजय, अर्थात् धम्म द्वारा और ऐसी रीति से विजय कि दूसरे की उन्नति हो, में तुलना करता है। इस प्रसंग में वह अपनी कलिंग की सैनिक विजय की चर्चा करता है, और बड़े भारी हृदय से तथा कुछ लज्जा के साथ वह उस युद्ध में हुए सैनिक हत्याकांड का तथा उन सैनिकों के संबंधियों को हुए तीव्र दुःख और शोक का उल्लेख करता है। प्रत्येक सैनिक विजय के साथ ये क्रूरतापूर्ण कार्य अनिवार्य हैं। पर धम्म के द्वारा जो विजय प्राप्त होती है वह **प्रीतिरस** अर्थात् प्रेम से सुरभित होती है और वह न केवल उसके साम्राज्य के बहिर्वर्त्ती

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रान्तों में बल्कि उसके पड़ौसियों के राज्यों में भी की जा सकती है, चाहे वे भारत में हैं और चाहे वे भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमान्त से परे हैं, जहां यवन अर्थात् यूनानी राजा एंटियोकस थिओस, टालेमी फिलाडेलफोस इत्यादि राज्य करते हैं।

इस प्रकार हम देख चुके हैं कि अशोक के धम्म में क्या-क्या आचरण शामिल हैं। पर उसके धम्म का इतना ही अर्थ समझने से काम न चलेगा। ये गुण और आचरण सिर्फ इसका विधायक रूप हैं। पर अशोक के धम्म का एक निषेधात्मक पहलू भी है और वह एक शब्द, **अप-आसिनव,** अर्थात् यथासंभव न्यूनतम **आसिनव,** में प्रकट किया जा सकता है। पर **आसिनव,** किसे कहते हैं? अशोक इस प्रश्न का उत्तर स्तंभ प्रज्ञापन ३ में देता है जिसमें उसे वह पाप के समकक्ष रखता है और उन हानिकर विकारों का उल्लेख करता है जिनके परिणामस्वरूप **असिनव** होता है। वे हैं : **चंडिये**, प्रचंडता; **निठुलिये**, निर्दयता; **कोधे**, क्रोध; **माने**, घमंड; और **इस्या**, ईर्ष्या। इस प्रकार धम्म की पूर्ण और पर्याप्त पूर्त्ति के लिए अशोक द्वारा गिनाये गये कर्तव्यों का पालन करना ही काफी नहीं है, इन विकारों से मुक्त होना भी आवश्यक है।

स्पष्ट है कि इस प्रकार अशोक के पास संसार के लिए एक सुनिश्चित संदेश था। और यह खेद की बात है कि इस बात को अभी स्पष्ट रूप से पहचाना नहीं गया। धम्म के विधायक पहलू के सम्बन्ध में, वह न केवल धम्म के उपादानरूप गुणों का उल्लेख करता है बल्कि उन नैतिक आचरणों का निर्देश भी करता

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है जिनमें वे गुण प्रत्यक्ष होते हैं। अपने धम्म के निषेधात्मक पहलू के बारे में, उसने वे हानिकारक विकार गिना दिये हैं जो मनुष्य को पाप और अधःपतन (**आसिनव**) में प्रेरित करते हैं, और हमें इनसे यथासंभव मुक्त रहने के लिए उद्-बोधित करता है। पर वह इतने पर ही नहीं रुकता। एक सच्चे पैगंबर की तरह उसने स्पष्ट रूप से समझ लिया है कि आत्मिक उन्नति में कौन-सी बाधाएं हैं, और ऐसा उपाय सुझाया है जिससे हम अपनी धार्मिक उन्नति निर्विघ्न करते रह सकें। यह उपाय है आत्म-निरीक्षण और वह हमारे मन में यह बात बिठा देता है कि धम्म की वास्तविक वृद्धि के लिए आत्म-निरीक्षण परमावश्यक है। सामान्यतः लोग समझते हैं कि आत्म-निरीक्षण का विचार ईसाइयत में पैदा हुआ और वहीं आचरण में आया, और इसलिए यह संदेह उठना स्वाभाविक है कि क्या सचमुच अशोक ने आत्म-निरीक्षण करने को कहा था। पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि बुद्धघोष ने अपने **विसुद्धि मग्ग** में **पच्चवेक्खन** का उल्लेख किया है, और इस शब्द का अर्थ 'अन्तःकरण की परीक्षा' या 'आत्म-निरीक्षण' किया है। और **पच्चवेक्खन** का यह विचार उसने स्वयं बुद्ध से लिया है जिसने अंबलट्ठिक-राहुल को इसका उपदेश किया था। राहुल को दिया हुआ बुद्ध का प्रवचन मज्झिम निकाय में है, और यह निःसंदेह उन संदर्भों में है जिनको अशोक ने भाब्रू प्रज्ञापन में अत्युपयोगी बताया है, जैसा कि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं। उसमें बुद्ध राहुल को उपदेश देता है कि शरीर,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाणी और मन के प्रत्येक कार्य की, करने से पहले भी और पीछे भी, परीक्षा करो। परंतु अशोक अधिक मानवीय है और वह हमें अपने सारे चरित्र का निरीक्षण करने के लिए कहता है और इस प्रकार हमारे क्रिया-कलाप को अधिक व्यापक दृष्टिकोण से देखता है। अपने स्तम्भ प्रज्ञापन ३ में वह कहता है: "मनुष्य सिर्फ अपने भले काम को देखता है और अपने आपसे कहता है कि 'मैंने यह भला काम किया है।' वह अपना पाप कभी नहीं देखता और न कभी यह कहता है कि 'मैंने यह पाप किया है', या 'यह सचमुच आसिनव है।' पर यह ऐसा मामला है जिसमें आत्म-निरीक्षण करना कठिन है। पर फिर भी मनुष्य को इसका ध्यान रखना चाहिए और सोचना चाहिए कि इस-इस तरह के विकारों से **आसिनव** (अध:पतन) होता है, और उनके कारण मेरा पतन हो जाएगा।" इस स्थान पर अशोक वे हानिकारक विकार गिनाता है जिनसे **आसिनव** होता है, और वे विकार कौनसे हैं, यह हम पहले ही देख चुके हैं। स्पष्ट है कि यहां अशोक मानव की इस स्वाभाविक प्रवृत्ति का उल्लेख कर रहा है कि वह अपने किये हुए अच्छे काम को तो याद रखता है और उसकी चर्चा करता है, पर अपने किए हुए अशुभ कार्य या पाप को वह न देखता है और न उस पर दु:खी होता है। इसलिए अशोक ठीक ही कहता है कि मनुष्य के लिए आत्म-निरीक्षण करना और अपने किए हुए पाप को देखना बड़ा कठिन है। पर वह इस भय से आत्म-निरीक्षण करने पर बल देता है कि कहीं मनुष्य स्वयं अपना पतन न कर ले। यदि ईसाइयों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का आत्म-निरीक्षण यही चीज नहीं है तो यह समझना जरा मुश्किल है कि आत्म-निरीक्षण वास्तव में क्या है। वह शब्द भी ध्यान देने योग्य है जो अशोक ने यहां 'आत्म-निरीक्षण' के लिए प्रयुक्त किया है। यह शब्द पटिवेखा है, और यदि रूप की थोड़ी अनियमितता का ख्याल न करें तो यह बिल्कुल वही है जो पच्छवेक्खन है, जिसका प्रयोग स्वयं बुद्ध ने 'अन्तःकरण का निरीक्षण' के अर्थ में किया है, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं। इसलिए इसमें संदेह का अवकाश नहीं है कि अशोक ने अपनी प्रजा को 'आत्म-निरीक्षण' की शिक्षा दी थी और इसे वह आत्मिक उन्नति के लिए परमावश्यक मानता था।

अशोक के धम्म के नियमों को पढ़ने वाला उसकी शिक्षाओं के रूप की अत्यधिक सरलता से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। उसके धम्म को सब धर्मों की सांझी सम्पत्ति कहा जा सकता है। वह हमें जो गुण और आचरण धारण करने के लिए कहता है वे ठीक वही हैं जिन्हें सब धर्म अनुकरणीय बताते हैं। इसलिए स्वभावतः यह बात मुख पर आना चाहती है कि उसकी शिक्षाओं में कोई नवीनता या मौलिकता नहीं है। शिला प्रज्ञापन १३ में वह स्वयं इतनी बात स्वीकार करता है—उसमें वह कहता है कि "यवनों को छोड़कर और कोई ऐसा देश नहीं जहां ब्राह्मण और श्रमण संघ न हों, और किसी भी देश में ऐसा कोई स्थान नहीं जहां लोग एक न एक मत में आस्था न रखते हों," और कि, वास्तव में "सर्वत्र ब्राह्मणों के, श्रमणों के, तथा अन्य, मत हैं और गृहस्थी लोग हैं, जिनमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वृद्ध-शुश्रूषा, पितृ-शुश्रूषा, गुरु-शुश्रूषा, शिष्ट व्यवहार और मित्रों, परिचितों, साथियों और सम्बन्धियों से, तथा दासों और भृत्यों से अटल प्रेम आदि आचरण प्रचलित हैं।" क्या इससे यह ध्वनित नहीं होता कि अशोक यह स्वीकार करता है कि उसका धम्म, जिसमें इन कर्त्तव्यों का पालन करना होता है, सब संप्रदायों में सामान्य रूप से विद्यमान चीज है। ठीक इसी कारण एक अन्य स्थान पर (शिला प्रज्ञापन ७) वह अपनी यह उत्कट अभिलाषा व्यक्त करता है कि "(उसके राज्य में) सब मतों के व्यक्ति सब स्थानों पर रह सकें क्योंकि वे सब मत आत्म-संयम और हृदय की पवित्रता चाहते हैं।" "परन्तु लोगों की", वह आगे कहता है, "रुचियां और अनुराग भिन्न-भिन्न हैं, इसलिए वे इन बातों का पूरा या थोड़ा पालन करते हैं। मनुष्य कितना भी दान करे, पर यदि उसमें संयम और भावशुद्धि नहीं तो निश्चय ही वह नीच है। अशोक का आशय यह है कि संयम और भावशुद्धि ऐसे श्रेष्ठ गुण हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने में इनका विकास करना चाहिए। इन गुणों की शिक्षा प्रत्येक सम्प्रदाय देता है, और ये गुण ही किसी संप्रदाय के उपदेशों का मुख्य अंश हैं। किसी संप्रदाय का कोई सदस्य सारे उपदेश पर आचरण करेगा, यह संदिग्ध है। पर उसके लिए इन दो गुणों को अपने अन्दर पैदा करना परम आवश्यक है––इन दो गुणों के अभाव को दान, कृतज्ञता या भक्ति द्वारा पूरा नहीं किया जा सकता। यही उद्बोधन अशोक ने अधिक स्पष्ट भाषा में और अधिक विस्तार से शिला

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रज्ञापन १२ में प्रस्तुत किया है। इस प्रज्ञापन में विभिन्न धर्मों के प्रति उसकी सच्ची भावना का चित्रण है और इसलिए यह इतना महत्वपूर्ण है कि इसका पूरा सारांश यहां देने के लिए क्षमायाचना की कोई आवश्यकता नहीं। अशोक कहता है कि मैं दान और अपने धर्म के प्रति बाहरी आदर को उतना महत्व नहीं देता जितना इसके सार की वृद्धि (**सारवढि**) को। यह सारवृद्धि अनेक प्रकार की है पर इसका मूल, वाणी का संयम है। दूसरे शब्दों में, मनुष्य को अपने धर्म के प्रति आदर-प्रदर्शन, और दूसरे के धर्म की अकारण निन्दा नहीं करनी चाहिए। इसके विपरीत, एक न एक कारण से अन्य धर्मों के प्रति आदर प्रदर्शित करना चाहिए। इस तरह करके मनुष्य अपने संप्रदाय को ऊंचा उठाता है और दूसरे के संप्रदाय की सेवा करता है। ऐसा न करके वह दोनों को हानि पहुंचाता है। जो मनुष्य अपने संप्रदाय का आदर करता है और इससे अनुराग के कारण तथा उसकी उन्नति की इच्छा से दूसरे के धर्म की निंदा करता है वह वास्तव में इसे बड़ी क्षति पहुंचाता है। तो इन परिस्थितियों में कौन सा मार्ग ग्रहण करना चाहिए? अशोक का उत्तर यह है कि "लोग एक-दूसरे के धम्म को सुनें और भविष्य में सुनने की इच्छा रखें।" इसका क्या परिणाम होगा? अशोक इसका इस तरह वर्णन करता है। पहले वह कहता है कि इससे सब संप्रदायों की जानकारी और ज्ञान में वृद्धि होगी (**बहु-श्रुत**) और संसार का कल्याण (**कल्याण-आगम**) होगा। वह यह भी कहता है कि इस प्रकार अपने संप्रदाय की उन्नति (**आत्म-**

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पासंदावढि) और धम्म का प्रकाश (**धम्मस्स दीपना**) होगा। अशोक शिला प्रज्ञापन १२ में वास्तव में यही कहता है और आज के युग के लिए भी मनन की सामग्री प्रदान करता है। उसका अभिप्राय यह है कि अधिक विस्तृत अर्थों में प्रत्येक धर्म के दो पहलू होते हैं: (१) सैद्धान्तिक और (२) आचार-सम्बन्धी। सैद्धान्तिक पहलू में कर्म-कांड, और धार्मिक ग्रंथों आदि का बौद्धिक विवेचन आता है। धर्म का आचार-सम्बन्धी रूप वह है जो एक समझदार, सच्ची भावना वाला आदमी स्वभावतः करेगा, और यही धर्म का सच्चा रूप है, दूसरे शब्दों में, आजकल की शब्दावलि में कहें तो यह अन्तःकरण को छूता है। जहां तक धर्म के सैद्धान्तिक अंश का प्रश्न है, इसके न केवल विश्वासों के बारे में, बल्कि किये जाने वाले कर्मकांड के बारे में भी विभिन्न और परस्पर-विरोधी विचार होने स्वाभाविक हैं। ऐसा अवश्यम्भावी है क्योंकि मानवीय बुद्धि बहुत भिन्न-भिन्न होती है। पर जहां तक धर्म के आचार-सम्बन्धी पहलू का सम्बन्ध है, उन नैतिक गुणों और नैतिक आचारों के बारें में, जो हमें अपने व्यवहार में प्रदर्शित करने चाहिएं, किसी का कोई मतभेद या विरोध नहीं है, बल्कि पूर्ण मतैक्य है। ऐसा होना भी चाहिए क्योंकि अन्तःकरण, सत्य और असत्य की भावना, भिन्न-भिन्न नहीं हो सकती। इसलिए किसी धर्म का आचारीय पहलू कोई ऐसी चीज नहीं हो सकती जो उसी धर्म की विशेष चीज हो—यह तो सब धर्मों की सामान्य संपत्ति होगी। यह वास्तव में सब धर्मों का सार है, और अशोक जिस धम्म की शिक्षा देता है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा जिस पर हमने अब तक विचार किया है, वह वास्तव में यह सार ही है। दूसरी ओर, ज्योंही हम अपनी बुद्धि की लगाम ढीली करते हैं त्योंही कर्मकांड और धार्मिक सिद्धान्तों से संबंधित प्रश्नों पर अनन्त विवाद करने की गुंजाइश हो जाती है, और अधिकतर यह विवाद निरा शुष्क कलह होता है। इसके ही कारण लोग, उपयुक्त अवसर न होने पर भी अपने संप्रदाय की प्रशंसा करते हैं या दूसरों के संप्रदायों की अकारण निंदा करते हैं—वास्तव में इस मतांधता के विरुद्ध ही, जैसा कि हम देख चुके हैं, अशोक ने अपनी शक्तिशाली आवाज उठायी है। अशोक ने जिस कठोर भाषा में अपना विरोध प्रकट किया है उससे स्पष्ट है कि उसके समय में अपने धर्म को बड़ा बताने, और दूसरे के धर्म की बुराई करने की बड़ी प्रवृत्ति थी, और सैद्धान्तिक प्रश्नों पर विभिन्न संप्रदायों में प्रायः गरमागरम और कटु विवाद हुआ करते थे जिनमें धर्म के सार की उपेक्षा होती थी। इस बारे में और सुनिश्चित जानकारी मिल सकती है कि वास्तव में किस-किस जगह यह शत्रुता की भावना फैली हुई थी। क्योंकि अशोक हमें स्पष्ट रूप से बताता है कि संप्रदायों में पारस्परिक सहानुभूति और सौहार्द पैदा करने का कार्य धर्म-महामात्रों, स्त्र्यध्यक्ष-महामात्रों और वचभूमिकों को सौंपा गया था। हम जानते हैं कि धर्म-महामात्र सब संप्रदायों के लिए थे, जिनमें सब से मुख्य संप्रदाय ब्राह्मण आजीविक, निर्ग्रन्थ और बौद्ध थे। और क्योंकि इन अफ़सरों को इस उद्देश्य-पूर्ति का आदेश दिया गया है, इसलिए यह स्पष्ट है

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कि इन संप्रदायों में विरोध और कटुता की भावना थी । स्त्र-ध्यक्ष-महामात्र तो निश्चित रूप से स्त्रियों के कल्याण और सुख का प्रयत्न करने के लिए थे । और क्योंकि उन्हें इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कहा गया है, इसलिए यह स्पष्ट है कि सांप्रदायिक जोश और असहिष्णुता स्त्रियों में भी दिखायी दे रही होगी । खेद है कि अभी हम यह नहीं जानते कि वचभूमिक कौन थे और वे क्या करते थे । पर इतनी बात काफी स्पष्ट है कि धार्मिक जोश में अपने संप्रदाय की प्रशंसा और दूसरे के संप्रदाय की निन्दा की प्रवृत्ति उस समय के सभी संप्रदायों में दृष्टिगोचर हो रही थी, और कि स्त्रियां भी, जो स्वभावतः अधिक धार्मिक भावना वाली होती हैं, इससे मुक्त नहीं थीं । इसलिए जिस समय अशोक हुआ और उसने प्रचार किया उस समय धार्मिक मतांधता और सांप्रदायिक भावना सब जगह व्याप्त थी । और ऐसे समय जबकि लोगों का ध्यान धर्म के सारभूत अंग के बजाए निःसार अंग पर गड़ा हो, सारभूत और निःसार में कोई भेद करने के लिए और संसार के समक्ष उसे उद्घोषित करने के लिए एक पैगम्बर की व्रेधक अन्तर्दृष्टि और धार्मिक शक्ति की आवश्यकता हुआ करती है । असल में, अशोक ने यही काम किया है । सब संतों की तरह उसके मन की भी मौलिकता यही है कि उसने सब संप्रदायों में समान रूप से विद्यमान धर्म के सार पर अपना ध्यान केन्द्रित किया, और वह भी ऐसे समय जबकि वे संप्रदाय इस बात को भूल चुके थे । उसने जिन उपायों से जनता का ध्यान धर्म के निःसार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाग से हटाकर सारवान् भाग की ओर लगाने की कोशिश की, वे बड़े मनोरंजक हैं। वह लोगों से कहता है कि एक दूसरे के धम्म को सुनो और अधिकाधिक सुनने की कामना करो--यहां धम्म शब्द से उसका अभिप्राय सिर्फ आचार से नहीं है, बल्कि किसी संप्रदाय के कर्मकांड और धार्मिक सिद्धान्तों से भी है। इस कार्य का यह परिणाम होगा कि उन्हें फौरन यह पता चल जाएगा कि यद्यपि एक सम्प्रदाय दूसरे से भिन्न है, पर उनमें बहुत-सी बातें एक-सी हैं। इस प्रकार लोगों का ध्यान एक-सी बातों की ओर जाएगा और स्वभावतः वे इस निष्कर्ष पर पहुंचेंगे कि यही बातें धर्म का सार हैं। जब इस तरह धर्म के सार का पता चल जाएगा और उस पर बल दिया जाएगा तब लोग इस पर आचरण करना अपना प्रथम कर्त्तव्य समझेंगे और इसके परिणामस्वरूप धर्म का प्रकाश (धम्म दीपना) होगा, और इस प्रकार वे संप्रदाय संसार के कल्याण (कल्याण-आगम) में योग दे रहे होंगे। पर एक सच्चे विचारक की तरह अशोक ने धर्म के निःसार अर्थात् कृत्यात्मक पहलू की भी उपेक्षा नहीं की जिसमें कर्मकांड और धार्मिक सिद्धान्त होते हैं और जो नैतिक या धार्मिक भावना की अपेक्षा बुद्धि को अधिक अपील करते हैं। एक-दूसरे के धम्म को सुनते हुए, जैसा कि अशोक ने चाहा था, लोगों के विभिन्न संप्रदायों के सैद्धान्तिक दृष्टिकोण भी सुनने और विचारने का अवसर मिलता है। इस प्रकार वे अनेक संप्रदायों द्वारा परिवर्धित किये गये दर्शन, प्रकृति ज्ञान और कर्मकांड के विभिन्न रूपों पर विचार करके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ठीक-ठीक चुनाव कर सकेंगे। परिणामतः वे **बहुश्रुत** अर्थात् बहुत-सी बातों के जानकार हो जाएंगे, और कर्मकांड तथा धार्मिक सिद्धान्तों की कोई संतोषजनक रीति स्वयं निकाल सकेंगे। जब लोग इस तरह एक दूसरे के धम्म को सुनते हैं, धर्म के सार को समझते हैं, और इसके आचरण पर बल देते हैं, और विभिन्न संप्रदायों के कर्मकांडों और धार्मिक सिद्धान्तों की विवेचना करके अपना एक अलग मत स्थिर कर लेते हैं, तब वे **आत्म-पासंडा-वढि** या अपने संप्रदाय की उन्नति कर सकते हैं, जिसका विचार अशोक के मन में सर्वोपरि था। इस प्रकार अशोक का धम्म है धर्म का सार और तीसरी सदी ई० पू० का यह राजर्षि हमें जो बात सिखाना चाहता है, वह यह है कि हमें सब धर्मों में सार देखना और इस पर आचरण करना चाहिए, तथा इन धर्मों के कर्मकांडों और सिद्धान्तों की निष्पक्ष होकर तुलना करनी चाहिए जिससे हम मनुष्य और प्रकृति के सम्बन्ध के बारे में अपना एक निजी सिद्धान्त बना सकें। उसका यह संदेश कितना उदात्त और विश्वासोत्पादक है और आज की दुनिया के लिए भी यह कितना अपरिहार्य है! जरा सोचिए कि अगर हम इस परम प्रज्ञावान् के शब्दों का श्रद्धा के साथ अनुसरण करें और न केवल हिन्दू धर्म और इस्लाम का, बल्कि ईसाई धर्म, जरथुष्ट्री (पारसी) धर्म और यहां तक कि मंत्र-तंत्र का भी अध्ययन करें तो संसार आत्मिक और बौद्धिक दृष्टि से कितना समृद्ध और उन्नत हो जाएगा!

अशोक के धम्म का कोई भी विवरण तब तक पूरा नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो सकता जब तक हम यह न जान लें कि धम्म के आचरण का अन्तिम लक्ष्य क्या है। दूसरे शब्दों में, धम्म का आचरण करने वालों को अन्त में क्या प्राप्त होगा? क्या अशोक परलोक में विश्वास करता था? इस प्रश्न का उत्तर निश्चित रूप से 'हाँ' में है। वह प्रायः इस लोक का परलोक से वैषम्य प्रस्तुत करता है। इस प्रकार स्तम्भ प्रज्ञापन ४ में रज्जुकों की चर्चा करते हुए वह कहता है कि मैं अपने अफसरों से यह आशा करता हूँ कि वे प्रान्तों की प्रजा का **हिदत** और **पालत** अर्थात् इस लोक और परलोक का सुख बढ़ाएँ। इसी प्रकार धौलि और जौगड़ा पृथक् प्रज्ञापन १ में वह हमें बताता है कि मेरे मन में सबसे प्रबल अभिलाषा यह है कि मेरी प्रजा को **हिद-लौकिक** और पाल-लौकिक, अर्थात् इस लोक में और परलोक में श्रेय और सुख मिले। पर धम्म पालने से मनुष्य को परलोक में क्या मिलता है? अशोक का उत्तर है: स्वर्ग। उसके प्रज्ञापनों में कम से कम तीन बार स्वर्ग का उल्लेख है। शिला प्रज्ञापन ६ में अशोक कहता है कि मैं जो भी यत्न कर रहा हूँ, वह अपनी प्रजा को सुखी करने के लिए और इसलिए कर रहा हूँ कि उन्हें परलोक में स्वर्ग मिले। गौण शिला प्रज्ञापन १ में वह अपने अफसरों से आग्रह करता है कि वे कठोर यत्न करके प्रजा को स्वर्ग प्राप्त कराएं। पर शिला प्रज्ञापन ९ में वह हमें कुछ और बताता है। इसी प्रज्ञापन में उसके **धम्म मंगल**, अर्थात् धम्म की पूर्ति रूप मंगल कार्य, का जिक्र है। इस प्रज्ञापन के दो संशोधित पाठों में वह कहता है कि धम्म पर चलने से स्वर्ग मिलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और यही चीज उसी प्रज्ञापन की तीन प्रतियों में वह दूसरे शब्दों में स्पष्ट करता है। "प्रत्येक सांसारिक कार्य", वह कहता है, "संदिग्ध प्रकार का है। इससे इसका उद्देश्य पूरा हो भी सकता है, और नहीं भी। पर **धम्म मंगल** में समय की कोई शर्त्त नहीं है, और चाहे इसका यहाँ कोई फल न हो पर इससे अनन्त पुण्य होता है।" दूसरे शब्दों में, अशोक यह कहना चाहता है कि धम्म के पालन से परलोक में पुण्य होता है और इस प्रकार मनुष्य को स्वर्ग मिलता है।

अशोक ने अपने प्रज्ञापनों में जिस धम्म की शिक्षा दी है उसका सरल स्वरूप ऊपर से इस तथ्य का विरोधी प्रतीत होता है कि उस धम्म के प्रचार के समय वह बौद्ध था, और इसने विद्वानों को परेशान किया है। इस प्रकार डा० फ्लीट का यह विचार था कि शिला और स्तम्भ प्रज्ञापनों का धम्म किसी भी तरह बौद्ध धर्म नहीं था—वह तो सिर्फ राज-धर्म अर्थात् राजाओं के लिए बताये गये कर्त्तव्यों का संग्रह था।[1] पर हम पहले ही दिखा चुके हैं कि इन प्रज्ञापनों में भी निर्दिष्ट धम्म, सुशासन के लिए राजाओं तथा प्रान्तपतियों द्वारा पालनीय नियम किसी भी तरह नहीं हो सकते थे—वे तो धार्मिक जीवन बिताने के लिए सामान्य प्रजा द्वारा आचरणीय नियम थे। इसी प्रकार एक और अन्य लेखक का कथन है कि इन प्रज्ञापनों में धम्म शब्द "बौद्ध धर्म के लिए नहीं आया—वह तो उस सरल पवित्रता के लिए है जो अशोक चाहता था कि सब धर्मों के लोग

१. JRAS., १९०८, पृ० ४९१–७

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आचरण में लाएं।"[1] स्वर्गीय डा० वी० ए० स्मिथ अपनी पुस्तक 'अशोक'[2] में एक स्थान पर कहते हैं : "उसने उपदेश की शक्ति में आश्चर्यकारक श्रद्धा रखते हुए जिस धर्म का अनवरत प्रचार और प्रसार किया, अगर उसमें कोई विभेद-सूचक विशेषताएं थीं तो वे बहुत कम थीं। यह सिद्धान्त सारतः सब भारतीय धर्मों में विद्यमान था, चाहे एक सम्प्रदाय या पंथ इसके किसी एक अंश-विशेष पर बल देता हो।" एक और स्थान पर डाक्टर साहब कहते हैं[3] : "प्रज्ञापनों का धर्म हिन्दू धर्म ही है——अन्तर सिर्फ इस कारण है कि उस पर बौद्ध धर्म की छाया है, या यह कहना अधिक ठीक होगा कि इसमें वे नैतिक विचार भरे पड़े हैं जिनके आधार पर बौद्ध धर्म खड़ा हुआ, पर जिसका हिन्दू धर्म में गौण स्थान है। यह एक आत्म-विरोध-सा है, क्योंकि एक जगह वह स्वीकार करते हैं कि अशोक के धम्म में कोई अलग बौद्ध अंश नहीं था, और दूसरे स्थान पर वह यह प्रतिपादन करते हैं कि इसमें बौद्ध नैतिक विचार भरे पड़े हैं। इसी प्रकार एक जगह तो स्मिथ कहता है कि अशोक ने स्वर्ग का जो प्रलोभन प्रस्तुत किया है वह "अधिक-तर पुस्तकों में उल्लिखित बौद्ध दर्शन के साथ सुसंगत नहीं।" और दूसरी जगह वह कहता है कि बहुत संभाव्यतः अशोक निर्वाण की कामना करता था, यद्यपि उसने कहीं ऐसी इच्छा

---

१. जे. एम. मैकफेल, अशोक, पृ० ४८।

२. पृ० ५९–६०

३. वहीं, पृष्ठ २९–३०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकट नहीं की।[१] इस प्रकार फ्लीट और स्मिथ जैसे कुछ ऐसें विद्वान हैं जो यह पूछते हैं कि जब एक ओर अशोक का धम्म ऊपर से भेदभावहीन और असांप्रदायिक दिखायी पड़ता है और दूसरी ओर, इसका प्रचार करने के समय वह बौद्ध था, तब इन दोनों बातों में सामंजस्य कैसे हो सकता है। उधर, एक और विद्वान सेनार्ट हैं जिन्हें अशोक की शिक्षा और बौद्ध धम्मपद में समानता दिखायी देती है और जो यह मानते हैं कि अशोक के लेखों में उस समय के बौद्ध धर्म का पूर्ण और सर्वांगीण चित्र है जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उसके समय तक बौद्ध धर्म "एक शुद्ध नैतिक सिद्धान्त था और उसमें किन्हीं विशेष धार्मिक राद्धान्तों या अमूर्त्त वादों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था, न उसमें पंडितों या भिक्षुओं का प्राबल्य था,....और न अभी तक उसके सिद्धान्तों की नियमित परिभाषा ही हुई थी।"[२] परन्तु इस फ्रैंच विद्वान को जो समानताएं दिखायी पड़ी हैं उनमें से सिर्फ दो ही कुछ महत्त्वपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त, बौद्ध धम्म पद में बहुत से पाठ वही हैं जो महाभरत आदि ब्राह्मण धर्मग्रंथों में हैं और धम्मपद को पूर्णतः बौद्ध ग्रंथ माना जा सकता है या नहीं, यह संदिग्ध है। और श्री सेनार्ट के इस विचार को भी, जो सिर्फ अशोक के लेखों पर आश्रित है, किसी विद्वान ने अभी तक स्वीकार नहीं किया प्रतीत होता कि तीसरी सदी ई० पू० के मध्य भाग

---

१. अशोक, पृ० ६४–५।

२. IA, १८९१, पृ० २६४–५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तक बौद्ध धर्म का मुख्य आधार यह था कि वह कर्मकांड की अपेक्षा नैतिक कर्त्तव्यों की पूर्ति को अधिक महत्व देता था। यह मानना भूल है कि अशोक के लेख उसके समय के बौद्ध धर्म का सर्वांगीण चित्र हैं। इस जमाने के धम्म के भी दो भाग थे : (१) भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए निश्चित धम्म, और (२) गृहस्थियों के लिए निश्चित धम्म । अशोक गृहस्थी था--- कम से कम उस समय तो था ही जिस समय उसने अपने धम्म का प्रचार किया, और जिन लोगों को उसने सिखाया वे भी गृहस्थी थे, भिक्षु नहीं। इसलिए अगर हम यह जानना चाहते हैं कि क्या उसका धम्म बौद्ध धर्म से अनुप्राणित था, तो आवश्यक है कि हम यह निश्चय करें कि उस धर्म ने उपासकों के पठन, मनन और आचरण के लिए कौनसे धार्मिक ग्रंथ निर्दिष्ट किये हैं। बौद्ध उपासकों के लिए निर्दिष्ट सबसे महत्त्वपूर्ण संदर्भ **सिगालोवाद-सुत्त** है जो बौद्ध धर्मग्रन्थों के **दीघनिकाय** के अन्तर्गत है। यह इतना महत्त्वपूर्ण माना गया है कि इसका नाम ही **गिहि-विनय** या गृहस्थियों के लिए उपदेश, रखा गया है"।[१] बुद्धघोष ने लिखा है कि "इस सुत्त में गृहस्थी के संपूर्ण कर्त्तव्यों में से कोई बात अवर्णित नहीं रह गयी है। इसलिए सुत्तांत का नाम **गिहि-विनय** या गृहस्थियों के लिए उपदेश, रखा गया है। अतएव, यदि कोई व्यक्ति इनको श्रवण करे, और जो कुछ कर्त्तव्य उसमें बताये गये हैं उनका पालन करे तो उसकी उन्नति की ही आशा है, अवनति की नहीं।"

---

१. JRAS. १९१५, पृ० ८०९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इस सुत्त को निःसंदेह उपासकों की दृष्टि से ही इतना अधिक महत्त्व दिया गया है। इसका सारांश यह है : एक बार बुद्ध राजगृह के पास बांसों के वन में ठहरे थे। उन्होंने अपनी दैनिक भिक्षा के लिए जाते हुए एक गृहस्थी के पुत्र सिगाल को देखा, जिसके बाल और कपड़े भीगे हुए थे और जो अंजलिबद्ध हाथ ऊपर उठाकर, भूमि और आकाश के कई दिक्पालों की पूजा कर रहा था। बुद्ध के कारण पूछने पर सिगाल ने कहा कि मैं अपने पिता के आदेश का पालन कर रहा हूं। इस पर बुद्ध उत्तर देता है कि आर्य के धर्म में छः दिक्पालों की पूजा इस तरह नहीं करनी चाहिए। और यह पूछे जाने पर कि उनकी कैसे पूजा की जानी चाहिए, बुद्ध बड़े विस्तार से बताता है कि दिक्पालों की पूजा की सबसे उत्तम रीति मनुष्यों को लाभ पहुंचाना है, और सारी बात को संक्षेप में कुछ गाथाओं में रख देता है, जिनमें से पहली गाथा यहां उद्धृत की जाती है :[1]

माता और पिता पूर्वी दिक्पाल हैं :
और गुरु दक्षिण के दिक्पाल हैं।
और पत्नी तथा संतान पश्चिमी दिक्पाल हैं
और मित्र तथा संबंधी उत्तरी दिक्पाल हैं,
भृत्य और मजदूर लोग अधोदिक्पाल हैं
और ब्राह्मण तथा संत ऊर्ध्वदिक्पाल हैं
मनुष्य को,--जो पचास वर्ष तक अपने कुटुम्ब में गृहस्थी

१. टी० डब्लू० राइस डेविड्स, बुद्धिज्म, पृ० १४३–४; SBB. जिल्द ४, पृ० १७३ तथा आगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहता है--इन दिक्पालों की पूजा करनी चाहिए।

इस गाथा को सरसरी तौर से देखने वाले को भी फौरन पता चल जाएगा कि इसमें वही आचरण गिनाये गये हैं जिन्हें अशोक अपनी प्रजा को सिखाना चाहता था। माता-पिता की सेवा, गुरुओं का आदर, मित्रों, संबंधियों और परिचितों से तथा ब्राह्मण और श्रमण साधुओं से उदारता तथा सभ्य व्यवहार और दासों तथा भृत्यों से उचित व्यवहार--धम्म के इन्हीं आचरणों पर अशोक बल देता है, और ये बिल्कुल वही हैं जिन पर, सिगाल को अच्छा धार्मिक गृहस्थी बनाने के लिए बुद्ध ने जोर दिया है। अशोक जिन कर्त्तव्यों पर बल देता है उनमें जैन, आजीविक आदि अन्य धार्मिक संप्रदायों द्वारा अनुमोदित चाहे एक भी न हो, परन्तु सिगालोवाद-सुत[1] में, जो बौद्ध धर्म का उपासकों के पढ़ने के लिए बनाया गया ग्रंथ है, इनमें से अधिकतर कर्त्तव्य एकत्र संगृहीत हैं। और इस निष्कर्ष से बचना असंभव है कि यह धर्म ही अशोक के धम्म का आधार और प्रेरणा-स्रोत है। यदि अब भी और किसी प्रमाण की आवश्यकता है तो यह एक और सुत में मिलता है जो इस सिलसिले में अवश्य ध्यान देने योग्य है। उपासकों के आचरण के बारे में, सिगालोवाद-सुत के बाद महत्त्वपूर्ण बौद्ध सुत्त महामंगल-सुत्त है जो सुत्त निपात के अन्तर्गत है। इसमें कुछ कर्तव्य बताये गये हैं जिनका आचरण उपासक का महानतम मंगल है। धर्म-

१. कुछ और भी बौद्ध सुत्त हैं जिनमें ऐसे ही नैतिक आचरण गिनाये गये हैं; उदाहरणार्थ, अंगुतर-नि., III, ७६–८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

युक्त आचरण के लिए मंगल शब्द के इस प्रयोग को देखकर धम्ममंगल शब्द का ध्यान आ जाता है जो अशोक ने शिला प्रज्ञापन ११ में "धम्म का पालन अधिकतम फलोत्पादक मंगल के समान है" इस अर्थ में किया है। और अब इस बात में कोई संदेह नहीं रहता कि यह विचार और पदावलि उसने उपर्युक्त बौद्ध धर्मग्रन्थ से ली है। आचारों की गिनती में भी, महामंगल-सुत और अशोक के शिला प्रज्ञापनों में, कई समानताएं हैं। सुत ने "माता-पिता की सेवा, पत्नी और बच्चों की रक्षा, दान, रिश्तेदारों की सहायता, पाप-त्याग, श्रमणों के साथ संलाप और उचित ऋतुओं में धार्मिक वार्त्तालाप"[1] को सबसे बड़ा मंगल बताया है। यहां भी अशोक द्वारा धम्म के अन्दर निर्दिष्ट गुणों और आचरणों में से अधिकतर गिनाये गये हैं। यह भी देखने योग्य बात है कि जैसे अशोक ने सामान्य मंगल और धम्ममंगल की तुलना की है, वैसे ही उसने दान और धम्म दान की तुलना की है, और धम्म दान की साधारण दान से निश्चित श्रेष्ठता प्रतिपादित की है। धम्मदान शब्द का प्रयोग अशोक को, जैसा कि श्री सेनार्ट ने बताया है,[2] धम्मपद के इस श्लोकांश से सूझा होगा "सब्बदानं धम्मदानं जिनाति" धम्म का दान सब दानों से बढ़कर है। पर इसमें महामंगल-सुत्त में उल्लिखित गुणों और आचरणों का जिक्र नहीं है।

---

१. SBE., जिल्द १०. (भाग २), पृ० ४३।
२. IA, १८९१, पृ० २६२।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

यदि एक बार यह समझ लिया जाए कि अशोक स्वयं बौद्ध धर्म का उपासक था और गृहस्थियों को उपदेश देता था, और कि उसकी शिक्षा उन कर्त्तव्यों पर आधारित थी जो धर्म ने उपासकों के लिए बताये थे तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि वह अपने प्रज्ञापनों में निर्वाण या अष्टांग-मार्गिक का कोई उल्लेख नहीं करता, बल्कि इसके विपरीत, स्वर्ग की चर्चा करता है, और इसे ही धम्म का पारलौकिक फल बताता है। बौद्ध धर्म के अनुसार स्वर्ग और नरक का सिद्धान्त विशेषकर उपासक का धर्म है और ऊँची सिद्धियां और निर्वाण का ध्येय सिर्फ भिक्षुओं के लिए है। यही बुद्ध का विचार था और उसने एकाधिक बार ध्वनित किया है कि धार्मिक गृहस्थी परलोक में देवता बनकर जन्म लेता है।[1] इसलिए यदि अशोक संसार में धर्मयुक्त जीवन बिताने के लिए स्वर्ग को अन्तिम साध्य मानता है तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। स्वर्ग सम्बन्धी विचार अकेले बौद्ध धर्म का विचार नहीं है बल्कि अनेक धार्मिक संप्रदायों में पाया जाता है। और जो प्रश्न वास्तव में पैदा होता है वह यह है कि क्या अशोक बौद्ध ग्रंथों में वर्णित स्वर्ग को मानता था या नहीं। शिला प्रज्ञापन ४ में अशोक कहता है : "पर अब देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी के धम्म पर चलने के परिणाम-स्वरूप, तब से ढोल का शब्द धम्म का शब्द बन गया है जबसे उसने प्रजा को विमान, हस्तिन्, अग्निस्कंध और अन्य दिव्य स्वरूप दिखाये हैं।" उसका आशय यह है कि उसके लिए ढोल

१. मज्झिम-निकाय, १. २८९ और ३९८।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

धम्म का उद्‌घोषक बन गया है। युद्ध, सार्वजनिक घोषणा, या सार्वजनिक प्रदर्शन से पहले सदा ढोल बजता है। पर जबसे उसने धम्म का जीवन ग्रहण किया है तब से यह युद्ध का सूचक नहीं रहा है, पर लोगों को कुछ दृश्य देखने आने को निमंत्रित करता है; और क्योंकि ये दृश्य ऐसे हैं जो धम्म को उत्पन्न और परिवर्धित करते हैं इसलिए ढोल धम्म का उद्‌घोषक बन गया है। पर अशोक अपनी प्रजा को क्या दृश्य दिखाता था ? स्पष्ट है कि वे विमान, हस्तिन्, अग्निस्कंध आदि थे। इन शब्दों का वास्तविक अर्थ पालि साहित्य के विमानवत्थु नामक ग्रंथ में स्पष्ट किया गया है। इसमें उन अनेक पुरस्कारों का वर्णन है जो धर्मयुक्त व्यक्ति को अगले जन्म में मिलेंगे जब वह अपने गुण की श्रेष्ठता के अनुसार एक न एक प्रकार का देव बन जाएगा। इनमें से एक पुरस्कार विमान या स्तम्भों पर टिका हुआ प्रासाद है जो परम आध्यात्मिक सुख का केन्द्र है और जो अपने दिव्य स्वामी की इच्छा के अनुसार चल सकता है। एक और प्रकार का पुरस्कार हस्तिन् या सुसज्जित श्वेत दिव्य हाथी है। विमानवत्थु में बताया गया है कि अधिकतर देवताओं का स्वरूप विद्युत, नक्षत्र या अग्नि के समान उज्ज्वल है; और इसलिए जब अशोक कहता है कि मैंने प्रजा को अग्नि-स्कंध और ज्योतिःस्कंध दिखाये, तब वह यह दिखाता होगा कि अगले जन्म में देवता बन जाने पर धार्मिक व्यक्तियों के शरीरों से किस तरह की चमक निकलती है। अब की तरह तब भी हिन्दू लोग यह मानते होंगे कि स्वर्ग में देवों के जीवन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सीमित होते हैं और वे उनके शुभ कर्मों से उत्पन्न पुण्य पर निर्भर हैं। पर विमानवत्थु बौद्ध विचार के अनुसार सिर्फ यह वर्णन कर देता है कि धार्मिक व्यक्तियों को कौन-कौनसे दिव्य निवास और यान मिलते हैं, और उन पर विशेष बल देता है ताकि पाठकों और श्रोताओं को भूलोक में अच्छा निष्कलंक जीवन बिताने की तथा धार्मिक कर्त्तव्यों के पालन में उत्साही बने रहने की प्रेरणा मिले। स्पष्ट है कि अशोक ने न केवल विमानों, बल्कि हस्तियों और अग्नि या ज्योतिः-स्कंधों को प्रजा में धर्म की वृद्धि का जो कारण बताया है वह इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है कि स्वर्ग की जिस पद्धति को वह मानता था और जिसका उसने अपने बारहवें वर्ष में उल्लेख किया है, वह बौद्ध धर्म में उद्भूत पद्धति है।

उपर्युक्त वर्णन से किसी को भी यह निश्चय हो जाएगा कि जब अशोक ने अपने शिला और स्तम्भ लेखों में प्रस्तुत धम्म का प्रचार किया तब वह बौद्ध था और इस बात के स्पष्ट चिह्न हैं कि इस धम्म का मूल प्रेरक और स्रोत बौद्ध धर्म था। पर अब यह पूछा जा सकता है कि क्या यह सारे का सारा धम्म सिर्फ बौद्ध धर्म से लिया गया था। क्या उसने किसी अन्य धर्म से भी कुछ ग्रहण किया? अशोक ने स्वयं अपनी प्रजा को परामर्श दिया है कि वह एक दूसरे के धम्म को सुनें, जिससे उनके अपने धर्म की उन्नति हो और वे बहुश्रुत हो जाएं। जो कुछ उसने दूसरों से करने के लिए कहा है, वह स्वयं भी अवश्य किया होगा। क्या उसके धम्म में या अपने आचरण में कोई

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसे तत्व हैं जो अन्य धर्मों में से ग्रहण किये गये थे ? उसके धम्म के निषेधात्मक पहलू पर ध्यान से विचार करने वाले का ध्यान एक विचित्र शब्द आसिनव पर, और उन दुर्विकारों पर, जिन्हें वह इसकी उत्पत्ति में सहायक बताता है, जाना अनिवार्य है। यह आसिनव शब्द क्या है ? इसकी व्युत्पत्ति कैसे की जा सकती है ? स्तम्भ प्रज्ञापन ३ में आसिनव का उल्लेख पाप के साथ किया गया है, और शिला प्रज्ञापन १० में, अपुण्य के अर्थ में पलिसवे शब्द मिलता है। इसलिए पहले-पहल यह प्रतीत होता है कि अशोक का आसिनव वही है जो बौद्ध धर्म में आसव (-आस्रव) कहलाता है और जिसका ठीक वही अर्थ है। पर बौद्ध तीन प्रकार के आसव मानते हैं : (१) कामासव, या काम-सुख, (२) भावासव, जीवन का मोह, और (३) अविज्ज-आसव, अविद्या दोष । कभी-कभी वे इनमें एक चौथा रिट्ठ-आसव अर्थात् नास्तिकता, भी जोड़ देते हैं। पर अशोक पांच आसिनवों का उल्लेख करता है, जो सर्वथा भिन्न प्रकार के हैं। वे, जैसा कि हम देख चुके हैं, चंडिये, 'प्रचंडता', निठुलिए, 'निष्ठुरता'; कोधे, 'क्रोध'; माने, 'अभिमान' और इस्या, 'ईर्ष्या' हैं। यह निष्कर्ष स्पष्ट है कि अशोक ने बौद्ध होते हुए भी बौद्ध धर्म के आसव स्वीकार नहीं किये, यद्यपि आसव वही प्रतीत होता है जो आसिनव है। तो उसने अपने ये आसिनव कहां से ग्रहण किये । बूलर बताता है कि "जैनों में एक शब्द अंहया है जो आसिनव का बिल्कुल संवादी है,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और आसिनव की ही तरह 'आस्नु'[1] से बना है।" वह आगे कहता है कि "पियदसी का आसिनव का विचार बौद्धों के तीन या चार आसवों से तो मेल नहीं खाता, पर जैन अंहया के अधिक निकट है जिसमें प्राणि-हानि, असत्य, चोरी, अब्रह्मचर्य और परिग्रह या सांसारिक वस्तुओं से अनुराग हैं।" बूलर का यह कथन तो सही प्रतीत होता है कि भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अशोक का आसिनव शब्द बौद्ध आसव की अपेक्षा जैन अंहया के अधिक निकट है, पर यह जरा स्पष्ट नहीं होता कि राजा द्वारा वर्णित आसिनव बूलर द्वारा निर्दिष्ट जैनी अंहया के किस तरह निकट है। पर यह न समझना चाहिए कि बूलर का निष्कर्ष गलत है, यद्यपि जो साक्ष्य उसने प्रस्तुत किया है उससे इसकी पुष्टि नहीं होती। यहां हमें जिस बात पर ध्यान देना है, वह यह है कि स्तम्भ प्रज्ञापन ३ में अशोक आसिनव के साथ-साथ पाप का भी उल्लेख करता है और हमें दोनों से बचने के लिए कहता है। जहाँ तक मुझे ज्ञान है, बौद्ध मनोदर्शन पाप और आसिनव (=आसव) को न तो साथ-साथ रखता है और न उनमें विभेद करता है। पर जैन धर्म का प्रत्येक विद्यार्थी जानता है कि जैन दर्शन में यह विभेद किया जाता है। इस प्रकार जैन धर्म अट्ठारह प्रकार के पाप और बयालीस प्रकार के आस्रव गिनाता है।[2] इन दोनों सूचियों में चार दुर्विकार एक से हैं,

१. EI, जिल्द २, पृ० २५०।

२. श्रीमती स्टिवेन्सन, हार्ट ऑफ जैनिज्म, पृ० ३०२ और आगे, तथा पृष्ठ ३०५ और आगे। पाप और आसव की इस तरह की तुलनात्मक गणना बौद्धधर्म ग्रंथों में नहीं पाई जाती।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जो कषाय कहलाये हैं। इनमें से दो हैं क्रोध और मान[1]—ठीक वही दो विकार जिनका अशोक ने उल्लेख किया है। अशोक की इस्या जैनों के पापों की सूची में ईर्ष्या या द्वेष के नाम से मौजूद है। सिर्फ चंडिये और निठुलिये का पता नहीं चलता, यद्यपि ये दोनों आस्रवों में परिगणित हिंसा दुर्विकार में आ जाते हैं। इस प्रकार पाप और आसिनव (आस्रव) में विभेद को, और जैन सूची के कम से कम तीन विकारों के समावेश को देखकर किसी को भी यह निश्चय हो जाएगा कि बहुत संभाव्यतः अशोक ने यहां जैन दर्शन की कुछ धारणाओं को अपना लिया है। फिर, यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि पुराने जैन ग्रंथों में अकेला अहंया शब्द ही नहीं आता, बल्कि आसव और परिस्सव[2] शब्द भी आते हैं, और सबके सब एक ही अर्थ में आते हैं। यह बात इस तथ्य से भी मेल खाती है कि अशोक न केवल आसिनव का, जो अंहया का संवादी और प्राचीन रूप है, बल्कि परिसव का भी प्रयोग करता है जो परिस्सव ही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि यद्यपि अशोक बौद्ध धर्म का उत्साही अनुयायी है, पर उसमें अभी इतनी उदारता थी कि जैन आदि अन्य धर्मों का भी अध्ययन करे, और उनकी

---

१. इनमें से कुछ दुर्विकारों का बौद्धों ने उल्लेख अवश्य किया है, पर उन्हें 'किलेस' में गिनाया है, आसव या पाप में नहीं।

२. ये दो शब्द बौद्ध ग्रंथों में मिलते हैं। पर इनमें, जैन अंहया की तरह कोई ऐसा शब्द नहीं है, जो अशोक के आसिनव का संवादी हो। क्या बौद्ध शब्द 'आर्दीनव' आसिनव का गलत रूप है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसी विशेषताएँ अपना ले जो उसे पसन्द आ जाएँ। यही निष्कर्ष उस शब्दावलि से भी निकलता है जो वह विभिन्न प्रकार के जीवनों का वर्णन करते हुए प्रयुक्त करता है। वह जीव, पाण, भूत और जात जैसे शब्दों का प्रयोग करता है। क्या इससे हमें 'पाणा भूया जीवा सत्ता' शब्दावलि का स्मरण नहीं हो आता जो, उदाहरण के लिए, जैनों के आचारंग सुत्त में प्रयुक्त की गयी है।[1] यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि उसने इन सब शब्दों का कहीं इकट्ठा प्रयोग नहीं किया और इसलिए उसका आशय इनमें विभेद करने का न होगा। पर इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि जहाँ अशोक ने अपने नैतिक आचरण गिनाये हैं वहां भूत और प्राण में वैषम्य किया है जैसे देखिए——अनारंभो प्राणानां, अविहिसा भूतानाम्। बौद्ध साहित्य कहीं भी प्राण और भूत में भेद नहीं करता, पर जैन ग्रन्थ न केवल इन दोनों में विभेद करते हैं, बल्कि इन दोनों का, जीव और सत्ता से भी विभेद करते हैं।

इससे यह प्रश्न पैदा होता है: अन्य धार्मिक संप्रदायों के प्रति अशोक की क्या रुख था? हम देख चुके हैं कि शिला प्रज्ञापन ७ में वह स्वीकार करता है कि सब सम्प्रदायों का लक्ष्य आत्म-संयम और हृदय की पवित्रता है, और यह अभिलाषा रखता है कि उसके साम्राज्य के सब भागों में सब संप्रदाय रह सकें। शिला प्रज्ञापन १३ में उसने इस बात को और अधिक स्पष्ट कर दिया है और कहा है कि धम्म के जिन आचरणों का

---

१. SBE. जिल्द, २२, पृष्ठ ३६ और टि. १।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपदेश मैं कर रहा हूँ वे प्राय: वही हैं जिनकी शिक्षा ये संप्रदाय देते हैं। और शिला प्रज्ञापन १२ में वह हमें एक कदम और आगे ले जाता है जहां वह कहता है कि सब लोगों को एक दूसरे के धम्म के श्रवण में प्रीति रखनी चाहिए और इस प्रकार धम्म के सार की वृद्धि करनी चाहिए। अशोक ने जो कुछ कहा हैं, वह हृदय से भी वही मानता था, यह बात इस तथ्य से बिल्कुल स्पष्ट है कि उसके धम्म में, जो मुख्यत: बौद्ध धर्म है, जैन आदि अन्य धर्मों के तत्त्वों का भी समावेश है, जैसा कि हम अभी देख चुके हैं। जब विभिन्न सम्प्रदायों के प्रति उसका मानसिक झुकाव ऐसा था, तब हम उसकी इस बात पर आसानी से विश्वास कर सकते हैं कि वह सब सम्प्रदायों के व्यक्तियों को, बिना भेदभाव के, चाहे वे सन्यासी हों चाहे गृहस्थी, मूल्यवान् उपहार और सम्मान प्रदान किया करता था। हमारा यह विश्वास तब और भी दृढ़ हो जाता है जब हम देखते हैं कि वह ब्राह्मणों और श्रमणों के प्रति आदर और उदारता को, अर्थात् न केवल बौद्धेतर अ-ब्राह्मण संप्रदायों के प्रति बल्कि ब्राह्मण संप्रदाय के प्रति भी आदर और उदारता को, धम्म का एक उपादान मानता है। धर्म-महामात्रों को भी सब संप्रदायों के—केवल बौद्ध संघ के ही नहीं, बल्कि निर्ग्रंथों, ब्राह्मण आजीविकों, आदि के भी—सांसारिक और आध्यात्मिक कल्याण की वृद्धि करने का आदेश दिया गया है।

उसका एकमात्र कार्य, जो उसकी सब धर्मों के प्रति सहिष्णुता की वृत्ति से असंगत प्रतीत होता है, वह है जीव बलि का

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निषेध, जिसका निर्देश उसने शिला प्रज्ञापन १ में किया है। कहा जाता है कि यह ब्राह्मणों के विरुद्ध था और गौण शिला प्रज्ञापन १ में आए एक अंश से इस आरोप की पुष्टि होती है। पर अब कोई भी उच्चकोटि का विद्वान इस अंश का ऐसा अर्थ नहीं करता जिससे ब्राह्मणवाद के प्रति अशोक की शत्रुता प्रकट होती हो। और शिला प्रज्ञापन १ के बारे में, यह तो स्वीकार किया जाता है कि इसमें अशोक बलि-निषेध का उल्लेख करता है, पर यह स्पष्ट नहीं है कि यह निषेध सार्वत्रिक था, और सिर्फ उसके राजमहल तक सीमित नहीं था। और यदि थोड़ी देर के लिए यह भी मान लिया जाए कि उसने अपने सारे राज्य में बलि-निषेध कर दिया था, तो भी इसका यह अभिप्राय होना आवश्यक नहीं कि वह ब्राह्मणवाद का विरोधी था क्योंकि कुछ उपनिषदों में[1] भी, जो ब्राह्मण के लिए श्रुति हैं, असंदिग्ध शब्दों में जीव बलि का विरोध और अहिंसा का प्रतिपादन है।

१. JASB, १९२०, पृ० ३०७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ५

अशोक धर्म-प्रचारक के रूप में

हम देख चुके हैं कि अशोक एक बौद्ध के रूप में क्या था, और यह भी जान चुके हैं कि वह जिस धम्म का प्रचार करता था, वह सब धर्मों में सामान्य रूप से विद्यमान साधारण कर्त्तव्यों का संग्रह न था, बल्कि बौद्ध धर्म द्वारा उपासक के लिए निर्धारित धार्मिक कर्त्तव्यों का संग्रह था। अब हमें यह देखना है कि उसने धम्म की वृद्धि और प्रचार के लिए कौनसे साधन अपनाये। हम यह विचार भी करेंगे कि धार्मिक प्रचारक के रूप में उसने क्या और कितना काम किया।

हम पहले देख चुके हैं कि अशोक ने अपने अभिषेक के आठवें वर्ष में बौद्ध धर्म ग्रहण किया। तब वह उपासक था। ढाई वर्ष तक वह उपासक रहा और इस अवधि में, जैसा कि वह स्वयं बताता है, उसने विशेष उत्साह नहीं प्रदर्शित किया। पर उसके बाद उसमें परिवर्त्तन आया और वह अपने अभिषेक के दसवें वर्ष भिक्षु-गतिक बन गया। इस तरह उसके जीवन का एक बिल्कुल नया अध्याय शुरू हुआ। उसने फौरन अपना धार्मिक प्रचार का कार्य बढ़ा लिया और इतना अधिक उद्योग किया कि भिक्षु-गतिक बनने के एक वर्ष के भीतर ही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उसे इस प्रचार का प्रशंसापूर्ण वर्णन करना उचित जंचने लगा। यह वर्णन उसने दो स्थानों पर, एक बार गौण शिला प्रज्ञापन १ में और दूसरी बार शिला प्रज्ञापन ४ में किया है। इनमें से पहले अभिलेख में, जो उसके अफसरों के नाम है, अशोक कहता है : "इस अवधि (अर्थात् उसके भिक्षुगतिक होने की अवधि) में, सारे जंबुद्वीप में, मनुष्यों को, जो बिना मिले थे, देवों के साथ मिलाया। यह उद्योग का ही फल है। यह कार्य सिर्फ बड़े अफसर के करने का नहीं है। अधीनस्थ अफसर भी अगर उद्योग करे तो प्रजा को अत्यन्त स्वर्गीय सुख प्राप्त करा सकता है।" इस प्रज्ञापन में अशोक ने अपने प्रचार-कार्य का दो तरह से वर्णन किया है—एक तो यह कहकर कि मैंने मनुष्यों और देवों को एक दूसरे का सहयोगी बना दिया है, और दूसरे यह कहकर कि इससे प्रजा को अत्यधिक स्वर्गीय सुख प्राप्त होगा। बौद्ध सम्राट् का आशय संभाव्यतः यह है कि उसके धर्म-प्रचार के परिणामस्वरूप बहुत से लोग इतने पवित्र और धार्मिक हो गये हैं कि उनमें से कुछ देवों के रूप में पैदा हुए हैं और अपनी मृत्यु के बाद उनके साथ मिल गये हैं, और अन्य लोग, जो जीवित हैं, अपने अगले जीवन में देवों के साथ मिल जाएंगे। अब यह पूछा जा सकता है कि किन कार्यों द्वारा अशोक एक साल की छोटी-सी अवधि में इतना बड़ा कार्य कर सका। इसका उत्तर शिला प्रज्ञापन ४ में मिलता है जिसमें फिर राजा अपने प्रयत्न की सफलता का उज्ज्वल विवरण देता है। जैसा कि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं, इस अभिलेख में अशोक हमें बताता है

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कि उसने विमानों, हस्तियों और अग्नि या ज्योतिः स्कंधों के दृश्य दिखाकर प्रजा में धम्म का प्रचार किया है। ये वे स्वर्गीय सुख थे जो धार्मिक व्यक्तियों को अगले जन्म में देवता बनने पर मिलते थे। इस प्रकार हमें इस महत्त्वपूर्ण उपाय को लक्ष्य करना है जो अशोक ने अपने धम्म की वृद्धि के लिए अपनाया। वह प्रजा को विभिन्न प्रकार के देवों के और उन्हें मिलने वाले सुखों के दृश्य दिखाता था। पिछले अध्याय में यह सुझाया गया है कि वह ये दृश्य समाजों में––उन समाजों या दावतों में नहीं जिनमें लोगों को मांस और शराब दिये जाते थे और जिनकी अशोक निन्दा करता था, बल्कि उन समाजों या नाटक-घरों में जहां जनता को नाटक, संगीत और नृत्य का रसास्वादन कराया जाता था और जिन्हें वह अच्छा समझता था––दिखाता था। तो अशोक ने धर्म-प्रचार के लिए जो सबसे पहला कार्य किया वह शायद यह था कि वह देवों के विभिन्न संघों के, उनके देदीप्यमान स्वरूपों के, उनके स्वर्गीय प्रासादों के, दिव्य हाथियों आदि के दृश्य, जो उनकी समृद्धि और ऐश्वर्य के सूचक थे, दिखाता था। हम नहीं जानते कि वह कितने समय ऐसे दृश्य दिखाता रहा। संभाव्यतः वह अपने सारे राज्य-काल में ये दृश्य दिखाता रहा क्योंकि इससे दो प्रयोजनों की पूर्ति बड़ी अच्छी तरह होती थी, अर्थात् एक तो प्रजा का मनोरंजन होता था और दूसरे उन्हें पवित्रता का जीवन बिताने की प्रेरणा मिलती थी। पर इतना तो निश्चित है कि अपने भिक्षु-गतिक रहने के एक वर्ष से अधिक समय में वह यह करता रहा,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और यद्यपि यह अवधि कुछ बड़ी नहीं थी, पर अशोक का विचार था कि इस उपाय से धम्म की बहुत अधिक वृद्धि हुई——यह उतनी अधिक हुई जितनी पहले कभी नहीं हुई थी।

हम पहले देख चुके हैं कि अशोक ने जिन स्वर्गीय सुखों का निर्देश किया है उनका विमानवत्थु नामक पालि-ग्रंथ में बड़ा सजीव वर्णन है। इस ग्रंथ में, बड़े विचारपूर्वक उनके वर्णन पर बल दिया गया है, जिसका स्पष्टतः यह उद्देश्य है कि प्रजा को पवित्र और धार्मिक जीवन बिताने की प्रेरणा मिले। इस प्रसंग में उस कथा पर विचार करना उचित होगा जो बौद्ध ग्रंथों में बुद्ध के प्रमुख शिष्य और अनुपम प्रचारक मोग्गलान के बारे में दी गयी है।[1] उसे बौद्ध धर्म की ओर इतने अधिक लोगों को खींचने में सफलता हुई कि अन्य धर्मों के प्रचारक उससे ईर्ष्या करने लगे, और उन्होंने उसे मारने के लिए हत्यारों से रुपये ठहराये। पर उसके प्रचार-कार्य का रहस्य क्या था? उसमें बताया गया है कि अपनी अतिमानवीय (Super-natural) शक्तियों द्वारा वह स्वर्ग जाया करता था, देवों से मिला करता था और उनमें से प्रत्येक से पूछा करता था कि आपने देवत्व कैसे प्राप्त किया। और वे उसे बताया करते थे कि उन्हें किन कार्यों से किस तरह का देवत्व मिला। इसी प्रकार वह नरक लोक जाया करता था और वहाँ के अभागे निवासियों से उनकी कष्ट-कथा पूछा करता था। इसके बाद

१. कमेंटरीज आन दि धम्मपद, III. ६५ (P. T. S.); जात० को भूमिका, पृ० ५२२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मोग्गलान पथ्वी पर लौट आता था और लोगों को बताता था। इसका लोगों के मन पर इतना गहरा प्रभाव हुआ कि वे बड़ी संख्या में उसके पास आने लगे और बौद्ध बनने लगे। बहुत संभाव्यत: मोग्गलान की यह कथा अशोक को ज्ञात थी। पर यदि ज़रा देर के लिए यह भी मान लें कि यह उसे ज्ञात नहीं थी तो भी अशोक जैसे विचारवान् और उत्साही प्रचारक के लिए, विमानवत्थु जैसे ग्रंथों में किये गये अनेक प्रकार के स्वर्गीय सुख के सजीव वर्णनों को क्रियात्मक रूप दे देना और विमानों, हस्तियों आदि को वास्तविक रूप में पेश करके उन्हें समाजों आदि के अवसरों पर, जब प्रजा स्वभावत: बड़ी संख्या में एकत्र होती होगी, दिखाना कोई बड़ी बात नहीं थी। और यदि मोग्गलान के ज़बानी यह बताने से कि किस पुण्य से कौन-सा स्वर्ग मिलता है, और किस पाप से कौन सा नरक मिलता है, बहुत अधिक लोग उसके अनुयायी हो गये थे तो जब प्रजा के सामने स्वर्गों और स्वर्गीय सुखों के न केवल मौखिक बल्कि वास्तविक निरूपण प्रस्तुत किये गये होंगे तब अशोक के अनुयायी बनने के लिए लोगों की कितनी भीड़ जमा रहती होगी। यदि एक वर्ष जैसी छोटी अवधि में, एक ऐसे सम्यग्विचारित, सम्यगायोजित और सम्यक्-पूरित प्रचार कार्य से, जैसे की अशोक से आशा की जाती है, ऐसा आश्चर्यजनक--आशातीत तथा आश्चर्यजनक परिणाम हुआ तो इसमें जरा भी ताज्जुब की बात नहीं।

अशोक ने अपने ध्येय की पूर्ति के लिए और भी कार्य किये।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम देख चुके हैं कि जिस समय उसने भिक्षु-गतिक जीवन का आरम्भ किया उसी समय उसने एक और योजना बनायी और उस पर चलना आरम्भ किया। शिला प्रज्ञापन ८ में कहा है :

"दीर्घकाल से राजा लोग विहार-यात्राओं पर जाते रहे हैं। इसमें शिकार और ऐसे ही अन्य विनोद होते थे। अब अपने बौद्ध होने के दस वर्ष बाद देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी संबोधि (बोधि वृक्ष) गया। इस प्रकार इस धम्मयात्रा का आरम्भ हुआ। इसमें ब्राह्मण और श्रमण साधुओं का दर्शन और उन्हें उपहार-दान, वृद्धों का दर्शन और उन्हें स्वर्ण-वितरण तथा जनपद के लोगों से मिलना, उन्हें धर्म-सम्बन्धी उपदेश देना और उनसे धर्म-सम्बन्धी प्रश्न करना होता है।"

इसमें अशोक हमें बताता है कि अपने अभिषेक के दसव वर्ष तक, वह पुराने राजाओं की तरह, विहार-यात्राओं का आनन्द लिया करता था जिनमें वह शिकार तथा अन्य मनो-विनोद करता था। उस वर्ष उसने विहार-यात्रा का विचार सदा के लिए छोड़ दिया, और उसके स्थान पर धर्मयात्रा आरम्भ कर दी और अब उसे इसी में आनन्द मिलता है। धर्मयात्रा से उसका वह ध्येय भी पूरा होता था जो उसके मन में सर्वोपरि था, अर्थात् धम्म की वृद्धि। वह ब्राह्मण और श्रमण दोनों संप्रदायों के साधुओं से मिलकर और उन्हें दान देकर अपने अन्दर धर्म की वृद्धि करता था। इन यात्राओं में उसने प्रत्येक संप्रदाय के धम्म को सुना होगा और उसका अध्ययन किया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होगा और इसकी सारभूत विशेषताओं को अपने अन्दर ग्रहण किया होगा और इस तरह अपने-आपको बहुश्रुत बनाया होगा। जहां तक प्रजा का सम्बन्ध था, वह उनके वैयक्तिक सम्पर्क में आकर, उन्हें धार्मिकता का उपदेश करके और उनकी आध्यात्मिक उन्नति के बारे में प्रश्न पूछकर, उनमें धर्म का प्रचार करता था। दूसरे शब्दों में, अशोक सच्चे अर्थों में धर्म-प्रचारक बन गया। पर यह घटना कब और कैसे हुई ? यह उसके अभिषेक के दसवें वर्ष उसकी बोधिवृक्ष की यात्रा के समय हुई। वस्तुतः, जैसा कि हम देख चुके हैं, उसकी बोधिवृक्ष की यात्रा पहली धर्म-यात्रा थी। और क्योंकि वह उसी समय भिक्षुगतिक हुआ था, इसलिए बलात् यह अनुमान निकलता है कि उसने अपने भिक्षुगतिक जीवन के आरम्भ में भिक्षुओं के एक संघ के साथ महाबोधि की यात्रा की और कि इससे उसे तथा उसकी प्रजा को जो अनेक प्रकार के आध्यात्मिक लाभ हुए, उनके कारण उसने इसे अपने प्रचार-कार्यक्रम का एक स्थायी अंग बना लिया। इसलिए हम निःशंक कह सकते हैं कि स्वर्गों और स्वर्गीय सुखों के प्रदर्शनों के साथ-साथ अशोक ने अपनी प्रजा को स्वयं उपदेश देना शुरू किया--इसमें भी उसका असली उद्देश्य धम्म का प्रचार ही था।

राजा के स्वयं उपदेश करने से प्रजा के मन पर निश्चित ही बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा होगा और इससे चारों ओर धम्म के प्रचार में बड़ी तीव्रता आयी होगी। पर आखिर सम्राट् एक ही व्यक्ति तो था और उसका सब प्रजा के पास पहुँचना शक्य

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं था। इसलिए अशोक ने अपने प्रतिनिधियों, अपने अफसरों, को यह आदेश देना आवश्यक समझा कि सब लोग उसका अनुकरण करें और जो कार्य उसने व्यक्तिगत रूप से शुरू किया है, उसे पूरा करने में मदद करें। यह उस बात से भी स्पष्ट है जो उसने स्तम्भ प्रज्ञापन ७ में कही है—यह प्रज्ञापन उस सब कार्य का संक्षेप है जो उसने अपने अभिषेक के सत्ताईसवें वर्ष तक किया था, और इसमें स्वभावत: उन विविध उपायों का उल्लेख है जो उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए सोचे और अपनाये। प्रज्ञापन के प्रारम्भ ही में उसने, अपनी प्रजा में धम्म के प्रचार के लिए, अपनी अत्यधिक और हार्दिक चिन्ता प्रकट की है। जिन शब्दों का उसने प्रयोग किया है वे इतने मार्मिक हैं कि उनको उद्धृत किये बिना नहीं रहा जाता :

"मेरे मन में यह विचार आया:—पहले भी राजाओं ने यह चाहा था कि लोगों में धर्म बढ़े जिससे उनकी उन्नति हो। पर लोगों की इस प्रकार उन्नति नहीं हुई। तो किस प्रकार मनुष्यों में धर्माचरण बढ़ सकता है ? किस प्रकार धर्म द्वारा उनकी उन्नति हो सकती है ? मैं किस प्रकार उनमें धार्मिक भावनाओं की अभिवृद्धि कर उनका उत्थान कर सकता हूँ ? इस विषय में मेरा विचार है कि मैं धम्म की प्रज्ञप्ति (धम्म-सावन) कराऊं और लोगों में धर्म सम्बन्धी शिक्षा (धम्म-आनुसथि) देने की आज्ञा कराऊं। उसको सुनकर मनुष्य उसका पालन करेंगे और इस धार्मिक उन्नति से उनका उत्थान और अभिवृद्धि होगी।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उपर्युक्त वाक्यावलि से स्पष्ट है कि धम्म के प्रचार का प्रश्न बहुत समय से गम्भीरतापूर्वक और बड़े विचारपूर्वक अशोक के मन में घूम रहा था । पर उसने यह भी साफ तौर से स्वीकार कर लिया है कि धम्म के प्रचार की बात पहले राजाओं ने भी सोची थी । किन्तु उन राजाओं को अपने प्रयत्नों में कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं हुई थी ? पर प्रतीत होता है कि उसने इस समस्या पर बड़ा विचार किया और अन्त में उसे एक कार्यप्रणाली सूझी, तथा उसने अपने उद्देश्य की पूर्त्ति करने के लिए उस पर चलने का संकल्प किया। और उसने इस तरह जो उपाय अपनाये, उनमें से अधिकांश का उसने अपने प्रज्ञापन में उल्लेख किया है। इनमें से पहला है धम्म-आनुसथि, 'धम्म की शिक्षा', और वह हमें यह भी बताता है कि उसके व्युष्ट और रज्जुक नामक अफसरों को, जो लाखों आदमियों पर शासन करते हैं, प्रजा को उपदेश देने का आदेश दिया गया है। पर शिला प्रज्ञापन ३ में वह कुछ अधिक विस्तृत सूचना देता है। उसमें वह बताता है कि अपने अभिषेक के बारहवें वर्ष उसने न केवल रज्जुकों को, बल्कि प्रादेशिकों और युक्तों को भी आदेश दिया कि वे, प्रजा को धम्म की शिक्षा देने के लिए तथा अपने राजकीय कार्यों की पूर्ति के लिए, प्रति पाँचवें वर्ष दौरे पर जाएं। और, धम्म की जो शिक्षाएं इन्होंने प्रजा को देनी हैं, वे क्या हैं ? वे वही नैतिक आचरण हैं जो उसके धम्म के अंग हैं, और इनके ही बारे में उन्होंने प्रजा को उपदेश देना है। हम ऊपर देख चुके हैं कि रज्जुक, प्रादेशिक और युक्त, ये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सब ऊंचे दरजे के ज़िला अधिकारी थे और उन पर ऐसे कार्य-भार थे जिनकी पूर्ति के लिए उन्हें दौरों पर जाना पड़ता था। अपने समय-समय पर किये गये दौरों में किये जाने वाले इस राजकार्य के अतिरिक्त, अशोक ने उन्हें धर्मप्रचारक के रूप में कार्य करने और जनपदों में धर्म का प्रचार करने का भार भी सौंपा। इस प्रकार उसके उच्च ज़िला अधिकारी न केवल अधिकारी थे, बल्कि शिक्षक भी थे। निःसंदेह अशोक ने धम्म प्रचार की एक नयी और सूझभरी रीति निकाली। निश्चित रूप से यह उसका मौलिक विचार था। जहाँ तक ज्ञात है, उससे पहले किसी राजा ने यह रीति नहीं अपनायी, और बाद में भी यह सिद्धान्त भारत में पुर्तगीज शासन की समृद्धि के दिनों में ही अमल में आया जबकि कम-से-कम सबसे ऊंचे अफसर अपने सामान्य कर्त्तव्यों के साथ-साथ धर्म-प्रचारक का काम भी करते थे।[1]

पर अशोक ने अपने धम्म के विस्तार के लिए सिर्फ धम्म-आनुसथि को ही नहीं अपनाया। जिन व्युष्ट नामक अधिकारियों से, स्तम्भ प्रज्ञापन ७ में, रज्जुकों के साथ-साथ धम्म-आनुसथि का पालन करने के लिए कहा गया है, उनसे धम्म-सावन अर्थात् धम्म-विषयक उद्घोषणाएं भी करने के लिए कहा गया है। प्रतीत होता है कि ये सावन या उद्घोषणाएं दो प्रकार की थीं—एक तो ज़िलों के अधिकारियों के लिए होती थीं और दूसरी प्रजा के लिए। सावन निःसंदेह राजा की इच्छा और संकल्प

---

१. जे. एम. मैक्फेल, अशोक, पृ० ४८।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को प्रकट करती थीं। पहले प्रकार का उदाहरण गौण शिला प्रज्ञापन १ में है। इसमें, जैसा कि हम देख चुके हैं, राजा हमें बताता है कि अपने भिक्षुगतिक रहने के दिनों में उसने देवों और मनुष्यों को मिलाने की भरसक कोशिश की ताकि मनुष्यों को स्वर्ग मिल सके। इस दिशा में अपने प्रयत्नों की अत्यधिक सफलता देखकर उसे यह इच्छा हुई कि न केवल मेरे अधिकारी बल्कि मेरे स्वतन्त्र पड़ोसी भी मेरा अनुसरण करें। इसलिए उसने अपने व्युष्ट अधिकारियों द्वारा उस आशय के सावन उद्घोषित किये। इसी प्रकार, शिला प्रज्ञापन १२ में, जो विभिन्न संप्रदायों को सहिष्णुता की भावना की शिक्षा देता है, अशोक कहता है : "और जो लोग एक या दूसरे संप्रदाय से अनुराग करते हैं, उन्हें सूचित किया जाए : 'देवताओं का प्रिय धन या पूजा को उतना अच्छा नहीं समझता जितना इस बात को कि सब धार्मिक संप्रदायों में सारतत्व की वृद्धि हो और (पारस्परिक) समादर हो!' राजा की इस इच्छा की सूचना प्रजा को कैसे दी गयी? यह सावनों द्वारा ही दी गयी? सावन के जो उदाहरण अभी दिये गये हैं उनका उद्देश्य धम्म की वृद्धि है। इसलिए उन्हें धम्म-सावन कहना उचित है। परिणामतः अशोक ने धम्म-प्रचार का एक और साधन धम्म-सावनों को बनाया, जैसा कि वह स्तम्भ प्रज्ञापन ७ में कहता है।

धम्म की वृद्धि के लिए अशोक ने जो तीसरा कार्य किया वह था धर्म-महामात्रों की नियुक्ति। हम देख चुके हैं कि ये अफसर जनता की आत्मिक और सांसारिक भलाई की देखभाल

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

करते थे। वे प्रजा की सांसारिक भलाई की देखभाल कैसे करते थे, यह हम अध्याय २ में दिखा चुके हैं। यहां हमें यह देखना है कि अशोक ने उनसे धर्म की वृद्धि का कार्य कैसे कराया। पिछले अध्याय में बताया जा चुका है कि उसके समय में विभिन्न संप्रदायों में परस्पर सद्भावना और सौहार्द नहीं था। सब संप्रदायों की सारभूत शिक्षा तो एक ही थी, पर सिद्धान्तों-संबंधी प्रश्न पर बड़ा भेद था। वे समानता-सूचक बातों की परवाह न करते थे, यद्यपि वे धर्म का सार थीं, और मतभेद-सूचक बातों पर एक-दूसरे के साथ झगड़ते थे, यद्यपि वे बातें धर्म का गौण अंश थीं। इसलिए बिल्कुल आवश्यक था कि उनका ध्यान धर्म के सारतत्व की ओर खींचा जाए और सब तरह की कटुता और विद्वेष को समाप्त कर दिया जाए। यह कार्य उसने धर्म-महामात्रों को सौंपा, जो उसके विस्तृत साम्राज्य के सब संप्रदायों की, विशेषरूप से बौद्धों, आजीविकों और निर्ग्रन्थों की, देखभाल करते थे। अशोक आशा करता था कि इसके द्वारा प्रत्येक संप्रदाय अपनी उन्नति करेगा और धम्म और अधिक चमकेगा। धर्म-महामात्रों को धम्म के सिलसिले में सौंपे गये कार्यों में यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य था। उनको एक और भी कार्य सौंपा गया था। यह दान के संगठन के संबंध में था। पर इस कर्त्तव्य के स्वरूप को हम तब तक अच्छी तरह नहीं पहचान सकते जब तक हम अशोक द्वारा धम्म की उन्नति के लिए अपनाये गये चौथे उपाय पर विचार न कर लें।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिन लोगों ने अशोक के लेखों का अध्ययन किया है वे इस तथ्य से अपरिचित नहीं हो सकते कि उसे अपने शुरू किये गये उदारता के कार्यों को गिनाने का बड़ा शौक है। पर उसका आशय आत्म-प्रशंसा या आत्म-विज्ञापन नहीं है। यह बात स्तम्भ-प्रज्ञापन ७ के निम्न अंश से स्पष्ट है :

"मार्गों पर मैंने बरगद के पेड़ लगवा दिये हैं। उनसे मनुष्यों और पशुओं को छाया मिलेगी। मैंने आमों के बाग लगवाये हैं। प्रत्येक आठ कोस पर मैंने कुएं खुदवाए हैं और विश्रामघर बनवाये हैं। मनुष्यों और पशुओं के सुख के लिए मैंने विभिन्न स्थानों पर प्याऊ लगवाये हैं। पर सुख की यह व्यवस्था बिल्कुल नगण्य है, क्योंकि मेरी ही तरह पूर्ववर्त्ती राजाओं ने भी मनुष्यों के लिए अनेक सुखकारक कार्य किये थे। **पर मैंने यह इस अभिप्राय से किया है कि लोग धर्म के आचरण करें।"** इस प्रकार अशोक सरल भाव से स्वीकार करता है कि उसने मनुष्यों और पशुओं के लिए जिन विभिन्न प्रकार के सुखों की व्यवस्था की है, वह कोई ऐसी व्यवस्था नहीं जो अकेले उसने ही की हो, बल्कि वह कार्य पूर्ववर्त्ती राजाओं ने भी किया था। तो फिर पूछा जा सकता है कि वह अपने इन धर्म-कार्यों का बखान क्यों करता है? वह स्वयं इसका उत्तर देता है। वह कहता है कि मैंने इसलिए ऐसा किया है कि अन्य लोग मेरा अनुसरण करें। इसमें कोई संदेह नहीं कि अशोक का वास्तविक आशय यही था। क्योंकि इसी प्रज्ञापन में और ज़रा आगे वह ठीक यही बात कहता है। "मैंने जितने भी अच्छे काम किये

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हैं, उनका मनुष्यों ने अनुसरण किया है, और वे (भविष्य में भी) इन कार्यों को करेंगे।" पर अशोक यहीं आकर नहीं रुक गया। वह चाहता था कि धार्मिक दान के कार्यों में राज-परिवार के सदस्य भी उसके साथ हिस्सा बटाएं और हृदय से सहयोग करें। इसलिए उसने धर्म-महामात्रों तथा अन्य उच्च अधिकारियों को आदेश दिया कि वे राजपरिवार के सदस्यों से मिलकर उनसे धार्मिक कार्यों के लिए दान मांगें। "ये (अर्थात् धर्म-महामात्र) और अन्य अनेक मुख्य कर्मचारी मेरे तथा रानियों द्वारा किये गये दान का ठीक-ठीक प्रबन्ध करते हैं, और यहां (अर्थात् पाटलिपुत्र में) और जनपदों में, मेरे अन्तःपुरों में वे विविध प्रकार से विविध संतोषजनक कार्य कर रहे हैं। और मैंने व्यवस्था की है कि वे मेरे पुत्रों तथा रानियों के अन्य पुत्रों के दानों का प्रबन्ध भी करें।" इस प्रकार हम देखते हैं कि अशोक सिर्फ अपने दान-कार्य से संतुष्ट न हुआ और उसने अपने धर्म-महामात्रों तथा अन्य उच्च अधिकारियों के द्वारा अपने सम्बन्धियों को अपना अनुकरण करने के लिए प्रेरित करने का यत्न किया। ये 'अन्य उच्च अधिकारी' कौन थे, यह हम नहीं जानते। पर यह निश्चित है कि धर्म-महामात्रों को अशोक के सम्बन्धियों तथा अन्य लोगों को दान करने के लिए प्रेरित करने का काम सौंपा गया था। राज-परिवार के लोगों के विषय में धर्म-महामात्रों का जो कर्तव्य स्तम्भ प्रज्ञापन ७ में बताया गया है, उसे शिला प्रज्ञापन ५ में न केवल दोहराया गया है, बल्कि यह और जोड़ दिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया है कि वे "धम्म की ओर प्रवृत्ति वाले, धम्म का आश्रय पाने के इच्छुक और दान आदि देने की कामना वाले" लोगों को सहायता देने के लिए नियुक्त हैं। यह ज़रा विचित्र मालूम होता है कि अशोक सब लोगों के--चाहे वे धनी हों या निर्धन, बड़े हों या छोटे--दान करने पर इतना बल दे। निःसंदेह राजा के रूप में उसका कर्त्तव्य था कि वह सार्वजनिक सुख और लाभ के कार्य कराये। पर वह सर्वत्र हमें यह स्मरण कराता है कि मैंने ये काम इसलिए किये जिससे लोग मेरे उदाहरण पर चलें। उसे यह चिन्ता भी है कि उसके संबंधी इसी तरह दान-धर्म के कार्य करें--इसमें उसका उद्देश्य सिर्फ यह नहीं है कि उन्हें आध्यात्मिक पुण्य प्राप्त हो बल्कि यह भी है कि वे जनसाधारण के सामने आदर्श प्रस्तुत करें। इसलिए यह विचित्र-सा लगता है कि अशोक दान-कार्यों को इतना अधिक महत्व दे। और स्वभावतः यह पूछा जा सकता है कि क्या बौद्ध धर्म उस प्रकार के सार्वजनिक लाभ के कार्यों को, जिनका अशोक ने निर्देश किया है, कोई महत्त्व देता है। संयुत्त-निकाय[1] का निम्न पद्य इस बात को स्पष्ट कर देगा :

बाग लगाने वाले

भला बताओ कैसे नर का
पुण्य निरंतर बढ़ता जाता ?
धर्म-सुकृत के बल से, बोलो,
कौन स्वर्ग इस भू से जाता ?

---

१. १, ५, ७; श्रीमती राइस डेविड्स कृत अंग्रेजी अनुवाद, पृष्ठ ४५–४६, का हिन्दी रूपांतर।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

फल वाले तरु, बाग लगाता,
पुल बनवाता बांध बंधाता,
कुएं खुदाता, प्याउ लगाता,
बेघर का जो आश्रयदाता:——

ऐसे ही नर-वर का निशि-दिन
पुण्य निरन्तर बढ़ता जाता।
धर्म-सुकृत के बल से वह ही
स्वर्गलोक इस भू से जाता।

धर्म की उन्नति और प्रचार के लिए अशोक ने एक और उपाय भी अपनाया। स्तम्भ प्रज्ञापन ७ में वह धम्म-सावनों और धर्म-महामात्रों के साथ-साथ धम्म-थंभों या धर्मस्तंभों का उल्लेख करता है। स्पष्ट है कि धम्म-थंभों या धर्म-स्तम्भों का मतलब उन पर उत्कीर्ण धम्मलिपियों से है। और इनके साथ वे लेख भी हैं जो शिलाओं पर उत्कीर्ण थे——ये स्तंभ-प्रज्ञापनों से बाद में उत्कीर्ण कराये गये थे, इसलिए स्तम्भ प्रज्ञापनों पर इनका उल्लेख नहीं हो सकता था। वास्तव में इसका मतलब अशोक द्वारा उत्कीर्ण करायी गयी सब धम्मलिपियों से है। पर यह पूछा जा सकता है कि धम्मलिपियों के उत्कीर्ण कराने से धम्म की वास्तव में कितनी उन्नति हुई। कुछ विद्वानों की सम्मति है कि अशोक ने ये लिपियाँ अपना नाम अमर करने के लिए खुदवायीं। दूसरे शब्दों में, उनके विचार के अनुसार अशोक के मन में यह भ्रम था कि मैं बहुत बड़ा राजा हूँ। पर इससे अधिक गलत विचार हो नहीं सकता। अपने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शिला और स्तम्भ प्रज्ञापनों में अनेक बार वह स्पष्ट रूप से कहता है कि पत्थरों पर धम्मलिपियाँ खुदवाने में उसका एक उद्देश्य यह है कि वे चिरस्थायी रहें और उसका दूसरा तथा मुख्य उद्देश्य यह है कि उसके वंशज प्रजा के सांसारिक और आध्यात्मिक लाभ के लिए उसका अनुसरण करें। शिला प्रज्ञापन ४, ५, और ६ तथा स्तम्भ प्रज्ञापन ७ के अन्तिम अंशों को ध्यान से पढ़ने वाले व्यक्ति को अवश्य निश्चय हो जाएगा कि अशोक का पत्थर पर धम्मलिपियाँ खुदवाने का वास्तविक उद्देश्य क्या था। सुनिश्चित रूप से, अशोक का उद्देश्य यह था, जैसा कि उसने बताया है, कि यदि वे चिरस्थायी रहीं तो उसके उत्तराधिकारी, राजकीय अभिलेखों के बिना ही, इन प्रस्तरीय अभिलेखों से यह देख सकेंगे कि उसने धम्म की उन्नति के लिए क्या किया और धम्म की उन्नति के महान कार्य में उसे मात भी नहीं देंगे तो कम से कम उससे स्पर्धा तो करेंगे। दूसरे शब्दों में, वह धम्म पर इतने असाधारण रूप से अनुरक्त था कि उसने अपने वंशजों को अपना कार्य जतलाने के लिए, और उन्हें भी यह कार्य करने को प्रेरित करने के लिए जो सर्वोत्तम उपाय समझा, वह किया।

धर्म-प्रचारक के रूप में अशोक के कार्य की ठीक-ठीक धारणा हम तब तक नहीं बना सकते जब तक हम यह न देखें कि उसने प्राणिजगत के सुख और कल्याण के लिए क्या किया। यह ध्यान देने योग्य बात है कि राजा के रूप में वह यह समझता था कि मेरा कर्त्तव्य सिर्फ मनुष्यों के प्रति ही नहीं है, बल्कि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राणिमात्र के प्रति है और इसलिए यह देखना आवश्यक है कि उसने प्राणियों के जीवन की रक्षा और सुख की वृद्धि के लिए क्या उपाय किये। उसके इस सम्बन्ध में किये गये कार्य को दो भागों में बांटा जा सकता है: (१) वे उपाय जो उसने प्राणियों को होने वाली हानि तथा उनके वध को रोकने के लिए किये, और (२) वे कार्य जो उसने उनके शारीरिक सुख की वृद्धि के लिए किये। पहली बात के विषय में स्तंभ प्रज्ञापन ५ से हमें बहुत जानकारी मिलती है। उसमें अशोक हमें बताता है कि मैंने प्राणियों को क्षति पहुँचाने और मारने पर क्या-क्या रोक लगा दी है। पहले तो वह ऐसे सब प्राणियों का वध रोक देता है जो न तो भोजन के काम आते हैं और न सजावट या औषधि के काम आते हैं। दूसरे शब्दों में, वह जीवन के निर्द्वन्द्व विनाश पर रोक लगा देता है और यहाँ तक आदेश दे देता है कि जीवन-युक्त चारे को भी न जलाया जाए। भोजन के, अथवा घरेलू या अन्य कार्यों में आने वाले प्राणियों के लिए वह यह नियम बनाता है कि उन्हें कुछ, विशिष्ट, शुभ दिनों पर न तो मारा जाएगा और न दागा या खस्सी किया जाएगा। पहले-पहल यह प्रतीत होता है कि ये पाबन्दियां अशोक की मौलिक सूझ थीं। पर कौटिल्य अर्थशास्त्र में भी ये पाबन्दियां लगाने के लिए कहा गया है। इस प्रकार, इसके अध्याय ४३ में[1] कहा गया है कि सब विहार या क्रीड़ा के पक्षियों और सब शुभ प्राणियों की, चाहे वे पशु हों चाहे पक्षी, विनाश

१. अर्थशास्त्र, पृ० १२२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

या छेड़-छाड़ से रक्षा की जाएगी। वहाँ दी गयी उद्यान-पक्षियों की सूची में कम से कम चार वे हैं जिन्हें अशोक ने अवध्य बताया है। फिर, इस ग्रन्थ के अध्याय १७२[1] में कहा गया है कि राजा कुछ शुभ दिनों में प्राणि-वध का निषेध करे और खस्सी और भ्रूणनाश करने पर रोक लगाये—ये दिन वही हैं जिनका अशोक ने उल्लेख किया है। इसलिए ये निषेध उसकी अपनी सूझ नहीं थे——उसने तो अर्थशास्त्र में बताये गये निषेधों को कार्यान्वित किया था। और इस विषय में हम सिर्फ इतना ही कह सकते हैं कि उसने उनको ठीक तरह कार्यान्वित करने के लिए भरसक कोशिश की होगी। पर उसने उन निषेधों को कितनी भी अच्छी तरह कार्यान्वित किया हो, उनका बहुत अधिक लाभ न हुआ होगा। अशोक स्तंभ प्रज्ञापन ७ में स्वयं यह स्वीकार करता है। वह कहता है कि इस तरह की पाबन्दियां लगाने से और कुछ प्राणियों को अवध्य घोषित करने से कोई विशेष लाभ नहीं, पर कि निझति, अर्थात् आम पशु-हत्या को रोकने से उसका ध्येय सिद्ध हुआ है। इस ध्येय को लक्ष्य में रखकर उसने अपने धर्मप्रचारक अधिकारियों को आदेश दिया कि वे जनता में धर्म का प्रचार करते समय '**अनारंभो प्राणानां** और '**अविहिसा भूतानां**' की आवश्यकता पर बल दें। अब अशोक एक कदम आगे बढ़ गया है, क्योंकि अब वह जीवन की क्षति और हत्या को न सिर्फ कम करना चाहता है बल्कि यदि संभव हो तो उसे सर्वथा रोक देना चाहता है। और,जैसी कि उससे

१. वही, पृ० ४०७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आशा की जानी चाहिए, वह इस दिशा में जनता के सामने आदर्श प्रस्तुत करता है। पहले अध्याय में उन कार्यों का उल्लेख किया गया है जो अशोक, पूर्ववर्त्ती राजाओं की तरह, अपने-आपको प्रजा का प्रिय बनाने के लिए करता था। हम जानते हैं कि वह समाज मनाता था, जिनमें से कुछ में नाटक, संगीत और नृत्य के मनोरंजन प्रस्तुत किये जाते थे, और कुछ में मांस और मद्य उड़ते थे। दूसरे प्रकार के समाजों में निमंत्रितों की विशाल संख्या को मांस खिलाने के लिए बहुत सारे प्राणी मारे जाते होंगे। हम यह भी देख चुके हैं कि अशोक अपने प्रासाद में प्रतिदिन भिक्षा में प्रजा को मांस देने की परम्परागत प्रथा को भी जारी रखे हुए था और वह हमें बताता है कि उसके लिए राजा के रसोईघर में प्रतिदिन लाखों प्राणियों का वध होता था। समाजों के लिए या भिक्षा में देने के लिए अपेक्षित जीव निःसंदेह खाने के काम के लिए मारे जाते थे और स्तम्भ प्रज्ञापन ५ में उल्लिखित किसी पाबन्दी द्वारा उनका वध नहीं रोका जा सकता था। पर वह यहीं पर नहीं रुका। क्योंकि उसने अपने ऊपर भी दया न दिखायी, और हम देख चुके हैं कि उसने अपने लिए परोसे जाने वाले भोजन पर भी कई पाबन्दियां लगायीं और किस तरह अन्त में उसने मांस-भक्षण सर्वथा त्याग दिया—यहाँ तक कि मोर का मांस भी छोड़ दिया जो मध्यदेश के लोगों में इतना स्वादिष्ट माना जाता था। पर हमें यह स्मरण रहना चाहिए कि इन कार्यों का उद्देश्य सामान्य तौर से प्राणियों को हानि और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हत्या से बचाना था और इनका आशय उनके शारीरिक सुख की वृद्धि करना नहीं था। इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए उसने और उपाय अपनाये। और हम जानते हैं कि ये उपाय क्या थे। ये वे उपाय थे जो उसने न केवल मनुष्यों के बल्कि पशुओं के जीवन को भी सुखी बनाने के लिए अपनाये और ये राजा द्वारा किये गये पूर्त्त कार्य थे। इनका वर्णन स्तम्भ ज्ञापन ७ में किया गया है और हम देख चुके हैं कि ये क्या थे। लगभग वे ही लोकोपकारी कार्य शिला प्रज्ञापन २ में गिनाये गये हैं। पर इस शिला प्रज्ञापन में एक कार्य ऐसा है जो बहुत महत्त्वपूर्ण है पर जिसका स्तम्भ प्रज्ञापन ७ में उल्लेख नहीं है। इसमें अशोक कहता है कि मैंने दो प्रकार की चिकित्सा की व्यवस्था की है, एक मनुष्यों के लिए और एक पशुओं के लिए। उसने इस उद्देश्य को जिस तरह पूरा किया उसका निम्नलिखित वर्णन किया है : "जहाँ मनुष्यों और पशुओं के लिए उपयोगी वनस्पतियां नहीं मिलतीं, वहाँ सब जगह वे बाहर से ले जाकर लगायी गयी हैं।" राजा के लिए अत्यधिक प्रशंसनीय बात यह है कि उसने यह कार्य न केवल अपने राज्य के अन्दर, बल्कि पड़ोसी राजाओं के राज्यों में भी किया, जो करीब-करीब वही हैं, जिनका उल्लेख शिला प्रज्ञापन १३ में किया गया है, और हम देख चुके हैं कि वे राजा कौन थे।

अशोक के धर्म-प्रचार कार्य की प्रतिक्रिया कहां तक हुई ? यह सिर्फ उसके अपने विस्तृत साम्राज्य में ही नहीं हुई—अशोक का दावा है कि मैंने अपने पड़ोसी स्वतन्त्र राजाओं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के राज्यों में भी धम्म का प्रसार किया। शिला प्रज्ञापन १३ में जहाँ वह अपने पुत्रों और पौत्रों को संबोधित करता है, बौद्ध सम्राट् कहता है : "पर जो धम्म द्वारा विजय है, उसे देवानां-प्रिय सबसे मुख्य विजय मानता है। और देवानांप्रिय ने वह विजय न केवल यहाँ और सीमावर्ती राज्यों में बल्कि छः सौ योजन तक प्राप्त की है।" इस तरह अशोक हमें स्पष्ट बताता है कि उसने धम्म-विजय न केवल अपने साम्राज्य में बल्कि पड़ोस के राज्यों में भी प्राप्त की है। अपने साम्राज्य के बारे में वह उन सीमान्त देशों का विशिष्ट उल्लेख करता है जो उसके राज्य के अन्तर्गत थे और जिनमें उसका प्रचार-कार्य हो रहा था। सीमावर्ती राज्यों में वह न केवल भारत के धुर दक्षिण के स्वतन्त्र प्रदेशों का, बल्कि पांच ग्रीक राजाओं का भी, जिक्र करता है। इस प्रकार हमें वह विस्तृत प्रदेश दृष्टि-गोचर होता है जिसमें अशोक कहता है कि मेरा धम्म फैल गया है। यह न केवल सारे भारत और श्रीलंका में प्रचारित हो गया था, बल्कि सीरिया, मिस्र, मैसिडोनिया, एपिरस और सिरीन के उन भागों में भी फैल गया था जो ग्रीक शासकों के अधीन थे। पर इतने ही पर अंत नहीं था। क्योंकि उसी प्रज्ञापन में सम्राट् आगे बताता है : "जहाँ देवताओं के प्रिय के दूत नहीं पहुँच सके वहाँ के लोग भी धर्मानुशासन, धर्मविधान और धर्माचरण की प्रसिद्धि सुनकर उनका अनुसरण करते हैं, और करेंगे।" चीन और बर्मा में उसका जो धार्मिक प्रचार हो रहा था, यह उसका निर्देश हो सकता है :

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यदि हम अशोक के सम्यगायोजित कार्यक्रम पर, और उसे क्रियान्वित करने के लिए अशोक ने जो व्यवस्थित उद्योग किया, उस पर विचार करें तो उसके धर्म-प्रचार कार्यों के विस्तार के बारे में शिला प्रज्ञापन १३ में कही गयी बातें किसी भी तरह अविश्वसनीय नहीं प्रतीत होतीं। पर कुछ विद्वान उन्हें संदेह की दृष्टि से देखते हैं और यह मानते हैं कि अशोक के समय में बौद्ध धर्म भारत की सीमाओं से बाहर नहीं गया था। इनमें सबसे प्रमुख हैं प्रो० टी० डब्लू० राइस-डेविड्स। अशोक ने इस प्रज्ञापन में धम्म-प्रचार के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है उस पर यह पालि विद्वान कहता है : "यह कहना कठिन है कि इसमें से कितना अंश सिर्फ राजकीय डींग है। प्रतीत होता है कि ग्रीक राजाओं का उल्लेख, सिर्फ गिनती बढ़ाने के लिए कर दिया गया है; और कि वास्तव में वहाँ कोई दूत भेजा ही नहीं गया था। यदि वहाँ दूत भेजे भी गये होंगे तो भी आत्म-संतुष्ट ग्रीकों ने उनकी ओर कोई विशेष ध्यान न दिया होगा। अशोक ने अपनी सफलता का जो अनुमान किया है उससे उसके अपने अहंकार का ही अधिक पता चलता है, ग्रीकों की वश्यता का नहीं। हम यह तो सोच सकते हैं कि ग्रीकों ने इस बेहूदगी पर बड़ी दिल्लगी की होगी कि एक "जंगली" उन्हें उनका कर्त्तव्य सिखाये, पर हम यह नहीं सोच सकते कि एक विदेशी राजा के कहने पर उन्होंने अपने देवताओं और अंधविश्वासों को छोड़ दिया होगा।"[१]

१. बुद्धिस्ट इंडिया, पृ० २९८-९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यहां प्रो० राइस-डेविड्स ने यह मान लिया है कि अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए ग्रीक राजाओं के पास दूत भेजे होंगे। पर यह एक निरी कल्पना है। शिला प्रज्ञापन १३ से जो कुछ हम समझ सकते हैं वह यह है कि बहुत संभाव्यतः, अशोक ग्रीक राजाओं के यहां पहले ही दूत भेजा करता था, पर अब उसने अपने इन अफसरों के द्वारा ग्रीक राज्यों में उसी तरह अपने धर्म का प्रचार शुरू कर दिया जैसे वह अपने साम्राज्य के भीतर अफसरों द्वारा धर्म-प्रचार करता था। हम जानते हैं कि सेल्युकीयन राजतंत्र ने मौर्य दरबार में बारी-बारी दो राजदूत भेजे थे। मिस्र के शासक टालेमी फिला-डेल्फोस ने भी इस भारतीय दरबार में एक दूत भेजा था। यदि ये बातें सही हैं तो यह बिलकुल समझ में आने वाली बात है कि मौर्य राजतन्त्र भी, चन्द्रगुप्त के समय से, बदले में अपने राजदूत ग्रीक दरबारों में भेजता होगा। और क्योंकि बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए अशोक द्वारा अपनाया गया एक बहुत अधिक सफल तरीका यह था कि उसने उस धर्म के प्रचार के लिए ऊंचे अफसरों को नियुक्त किया था, इसलिए स्वभावतः यह आशा होती है कि ग्रीक राज्यों के बारे में भी, जहां उसके अफसर दूतों के रूप में कार्य कर रहे थे, उसने ठीक यही रीति अपनायी होगी। प्रो० राइस-डेविड्स का यह भी विचार है कि अगर क्षण भर के लिए यह मान भी लिया जाए कि अशोक के राजदूत धर्म-प्रचार का कार्य भी करते थे, तो भी वे ग्रीक लोगों में से बहुत अधिक बौद्ध नहीं बना सके होंगे क्योंकि ग्रीक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोग इतने आत्मसंतुष्ट थे कि वे न तो "जंगलियों" के उपदेश सुनने वाले थे और न अपने देवताओं और अन्धविश्वासों को छोड़ने वाले थे। यहां भी प्रोफेसर महोदय ने यह धारणा बना ली है कि अशोक ने बहुत से ग्रीकों को बौद्ध बनाया। बौद्ध सम्राट् ने तो सिर्फ यह कहा है कि मैंने ग्रीक राज्यों में अपने धर्म का प्रचार किया। इसका यह अर्थ होना आवश्यक नहीं कि उसे ग्रीकों को बौद्ध बनाने में सफलता मिली, बल्कि वह सिर्फ उन राज्यों के लोगों को बौद्ध बनाने में सफल हुआ जिनमें बहुत से ग्रीकेतर होंगे। फिर, ग्रीक लोग दूसरों के धर्म को स्वीकार करने में इतने असमर्थ क्यों थे? सभ्यता में अपने से हीन 'जंगलियों' के धर्मों के प्रति उनका रुख बेशक समझ में आने योग्य है। पर आप यह क्यों मान बैठते हैं कि वे बौद्धिक दृष्टि से दुराग्रही थे और एक ऐसी जाति के धार्मिक प्रभावों से अप्रभाव्य थे जो संस्कृति में उनसे किसी भी तरह हीन नहीं थी। उदाहरण के लिए, क्या हम नहीं जानते कि ग्रीक या यवन, जो भारतीय सभ्यता के सम्पर्क में आए, बौद्ध तथा अन्य भारतीय मतों के अनुयायी हो गये।[१] साहित्य और शिलालेखों में उनका अनेक जगह उल्लेख है। फिर, मिस्र के टालेमी फिलाडेलफोस ने सिकन्दरिया के पुस्तकाल की स्थापना या विस्तार किया था, और एपिफेनिअस के लेख से हमें ज्ञात है कि उसका पुस्तकाध्यक्ष हिन्दुओं की पुस्तकों के अनुवाद के लिए उत्सुक था। निश्चित रूप से, ग्रीक

१. IA, १९११, पृ० ११-३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसे सांस्कृतिक दुराग्रही नहीं थे, जैसा उनके कुछ आधुनिक प्रशंसक उन्हें समझते हैं ।

प्रो० राइस-डेविड्स का विचार है कि अशोक के समय में बौद्ध धर्म का जो प्रसार हुआ उसकी कथा अशोक के प्रज्ञापनों की अपेक्षा सिंहल के इतिहास-ग्रंथों में अधिक संरक्षित है। इन ग्रंथों में मोग्गली के पुत्र तिस्स द्वारा भारत के विविध भागों में भेजे गये प्रचारक-मंडलों का विवरण दिया गया है। प्रत्येक मंडल में एक नेता और उसके चार सहायक थे। प्रोफेसर साहब कहते हैं कि "जब हम देखते हैं कि उनके अनुसार, प्रचारक-मंडल अशोक ने नहीं भेजे थे बल्कि संघ के नेताओं ने भेजे थे, और कि उनमें पश्चिम की ओर ग्रीक राज्यों में ऐसे मंडल भेजने का कोई उल्लेख नहीं है, तब यह, कम-से-कम संभाव्य तो है ही कि इन दृष्टियों से उनका विचार, सरकारी उद्घोषणाओं की अपेक्षा अधिक सही है।"[1] दूसरे शब्दों में प्रो० राइस-डेविड्स यह कहना चाहते हैं कि ग्रीक लोगों में आत्म-संतुष्टि और आत्म-विकत्थना इतनी अधिक थी कि बौद्ध धर्म ग्रीक राज्यों तक नहीं फैल सकता था, और कि क्योंकि सिंहली इतिहास-ग्रंथों में यह वर्णन है कि अशोक के समय बौद्ध धर्म का प्रचार सिर्फ भारत के सीमावर्ती प्रदेशों में हुआ था, इसलिए यह ही अधिक संभाव्य और सही माना जाना चाहिए। और फिर, क्योंकि इन ग्रंथों के अनुसार, धर्म-प्रचारक बौद्ध संघ के नेता ने भेजे थे, अशोक ने

१. बुद्धिस्ट इंडिया, पृ० ३०१-२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं, इसलिए अशोक का यह दावा कि उसने ग्रीक राज्यों में बौद्ध धर्म का प्रचार किया, या कि उसे भारत में बौद्ध धर्म का प्रसार करने में सफलता मिली, शुद्ध राजकीय डींग है और उसके अपने अहंकार की निदर्शक है। सिंहली इतिहास-ग्रंथों में, जो श्रीलंका के भिक्षु लिखकर छोड़ गये हैं, कहीं-कहीं सच्चे इतिहास के अंश संरक्षित होने के कारण, उनमें अपने अटल विश्वास को वे उचित समझते हैं। और प्रो० राइस-डेविड्स यह दिखाने का यत्न करते हैं कि उन्होंने इन धर्म-प्रचारक मंडलों के बारे में जो इतिहास ग्रथित किया है विशेषकर उसके बारे में यह कथन कहां तक सही है। वह कहते हैं कि धर्म के प्रचार के लिए जो तीन प्रचारक हिमालय प्रदेश में भेजे गये थे, वे मज्झिम, कस्सप-गोत्त और दुंदुभिस्सर थे। स्वभावत: यह समझा जाता कि यह बात निरी कपोल-कल्पना है। परन्तु कनिंगहम ने सांची में जो स्तूप खोले उनमें उसे कुछ भस्म-पात्र मिले जिन पर ये नाम खुदे हुए थे, और उनमें यह बताया गया था कि इनमें से पिछले दो भिक्षु प्रचार के लिए हिमालय की ओर गये थे। प्रोफेसर साहब का विचार है कि यह इस बात का स्पष्ट प्रमाण है कि सिंहली भिक्षुओं ने, अशोक के समय बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए किये गये कार्य का सही विवरण हम तक पहुँचाया है। पर, दीपवंश में पाँच नाम दिये गये हैं जिनमें से एक मज्झिम है, लेकिन महा-वंश में कहा है कि मज्झिम इस मंडल का नेता था। सांची के भस्म-पात्रों के लेखों में मज्झिम का नाम अवश्य है पर जिस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यक्ति को हिमालय के देशों का आचार्य बताया गया है, वह मज्झिम नहीं, बल्कि गोतीपुत कसप-गोत है। फिर, इन लेखों में हिमालय के आचार्य कसप-गोत के साथ कम से कम नौ भिक्षु बताये गये हैं, जिनमें से सिर्फ दो दीपवंश के नामों से मिलते हैं। सांची के लेखों में दीपवंश द्वारा निर्दिष्ट दो और नाम क्यों नहीं हैं, अथवा दीपवंश सांची के लेखों में आये शेष सात नामों की चर्चा क्यों नहीं करता। इसलिए, जहाँ तक प्रचारक-मंडल के इस विवरण का प्रश्न है, वहाँ तक दीपवंश को ऐतिहासिक दृष्टि से विश्वसनीय और सही कैसे माना जा सकता है, यह हमारी समझ में नहीं आता। सिंहली इतिहास-ग्रंथों के अनुसार, जो चार आचार्य भेजे गये थे वे रक्खित, धम्म-रक्खित, महाधम्मरक्खित, और महारक्खित थे। क्या चार व्यक्तियों के नामों की यह समरूपता इस विवरण पर प्रबल संदेह पैदा करने के लिए काफी नहीं है? नामों की यही समरूपता दो भिक्षुओं, मज्झिम और मज्झिमांतिक में मिलती है। फिर, दो व्यक्तियों, सोन और उत्तर को, जो प्रचार के लिए स्वर्णभूमि गये थे, विद्वान लोग वास्तव में एक ही व्यक्ति मानते हैं। इस प्रकार यह ठीक ही सोचा गया[1] है कि ऐतिहासिक लेख्य के रूप में, इस विवरण का उपयोग करते हुए बहुत सतर्क रहने की आवश्यकता है। इन अवस्था में यह कहना कि सिंहली इतिहास-ग्रंथों में प्रचार मंडलों का अशोक के प्रज्ञापनों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय

---

१. कर्न, मैनुअल आफ इंडियन बुद्धिज्म, पृ० ११७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विवरण है, "एक अमान्य अटकल" है।

अशोक ने ग्रीक राजाओं के राज्यों का उल्लेख सिर्फ एक बार नहीं किया। और न यह बात है कि सुदूर देशों में अपने धार्मिक प्रचार के विवरण में ही उसने उनकी चर्चा की हो। एक और स्थान पर भी इन राजाओं का उल्लेख हुआ है। शिला प्रज्ञापन २ में वह मनुष्यों और पशुओं के लिए की गयी अपनी चिकित्सा-व्यवस्था की, और जहाँ औषधियाँ नहीं होती थीं वहाँ उन्हें भेजने और रोपने की चर्चा करता है। वह कहता है कि यह लोकोपकारी कार्य न केवल मेरे राज्य में बल्कि ग्रीक राज्यों में भी किया गया। तो इसलिए क्या हम यह मान लें कि अशोक की दोनों बातें सही नहीं हैं? यह तो उस पर सीधी मिथ्यारचना का आरोप लगाना होगा, जिसे कोई भी समझदार आदमी उचित नहीं बता सकता। यह तो संभव है कि अशोक ने वास्तविक परिणामों को अतिरंजित करके कहा हो। पर उसके इस कथन पर कोई निष्पक्ष, व्यक्ति तर्कसंगत संदेह नहीं कर सकता कि वह अपना धर्म प्रचार अपने अफसरों द्वारा करता था, और कि यह प्रचार वह सिर्फ अपने ही राज्य में नहीं, बल्कि विदेशी राज्यों में भी करता था। पर यह पूछा जा सकता है और यह पूछना उचित होगा कि क्या उसके प्रचारक कार्यों का उन देशों में कोई स्थायी प्रभाव हुआ? इसलिए हमें यहाँ यह विचार करना है कि ग्रीक प्रदेशों में अशोक का प्रचार कहाँ तक सफल हुआ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह एक स्मरणीय तथ्य है कि बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म में बहुत-सी विशेषताएं एक जैसी हैं, और कि उनका सादृश्य आकस्मिक नहीं कहा जा सकता। यहाँ सबसे अच्छा यह होगा कि हम एफ० मैक्समूलर द्वारा पच्चीस वर्ष पूर्व दिये गये एक ज्ञानवर्धक व्याख्यान का सारांश प्रस्तुत कर दें। आपने कहा था कि दो रोमन कैथोलिक पादरियों को, अपनी तिब्बत यात्रा में, यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि उनका और बौद्ध भिक्षुओं का कर्मकांड बिल्कुल मिलता था। उन्होंने इस मेल का कारण शैतान को बताया। पर यदि प्राकृतिक कारणों से यह मेल हो सकता है तो और कोई कारण खोजने की आवश्यकता नहीं। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि चीन में सातवीं सदी के मध्य भाग से आठवीं सदी के अंत तक ईसाई मिशनरियों की हलचलें जोरों पर थीं। तो इस तरह इस मेल की बड़ी संतोषजनक रीति से व्याख्या हो जाती है। परन्तु बौद्ध और ईसाई धर्मों में कुछ और भी मेल दिखायी देते हैं जो बौद्ध धर्म के प्राचीन काल से संबंध रखते हैं। इनके अन्तर्गत पाप-स्वीकृति, उपवास, भिक्षुओं का ब्रह्मचारी रहना, और मालाएं भी हैं, और क्योंकि वे ईसाई युग के आरम्भ होने से पहले भी भारत में विद्यमान थीं, इसलिए यही मानना होगा कि वे ईसाइयों ने भारत वालों से सीखीं। यदि कोई यह कहे कि हम सब एक ही प्रकार के मनुष्य हैं और इसीलिए यह मेल दिखायी देता है, तो उसे इस तरह के और उदाहरण प्रस्तुत करने होंगे। यदि उन्हें सिर्फ आकस्मिक घटना कहा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

जाए तो ऐसी आकस्मिक घटनाओं के ही और उदाहरण देने चाहिएं। मैक्समूलर की अपनी सम्मति यह थी कि वे मेल संख्या में इतने अधिक और इतने जटिल हैं कि उन्हें आकस्मिक घटना नहीं माना जा सकता। पूछा जा सकता है कि फिर इन चीजों का ज्ञान कैसे फैला ?[1] वस्तुत: ईसप की कहानियों और बाइबिल के कुछ भागों में भारतीय प्रभाव होने का संदेह बहुत पहले से किया जाता था। जब स्मरणातीत काल से पश्चिम और पूर्व के बीच विचारों का विनिमय हो रहा था तब भला यह कैसे माना जा सकता है कि बुद्ध के धर्म के मुख्य विचार ही पश्चिम वालों को अज्ञात रहे होंगे। पर बौद्ध ग्रंथों में कहीं यह उल्लेख नहीं कि भिक्षुओं ने उन प्रदेशों में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। दूसरी ओर, हम जानते हैं, जैसे कि अशोक हमें स्पष्ट रूप से बताता है, कि उसने अपने समकालीन ग्रीक राजाओं के यहां भेजे गये सरकारी दूतों को बुद्ध के धम्म का प्रचार करने के लिए तथा जीव-दया के अन्य कार्य करने के लिए नियुक्त किया था। क्या इसमें ज़रा भी सन्देह हो सकता है कि पश्चिमी एशिया में बौद्ध धर्म का प्रसार अशोक के प्रचार के परिणामस्वरूप हुआ ? ईसाइयत पर बौद्ध धर्म का प्रभाव पड़ा, इसका आवश्यक रूप से यह अर्थ नहीं कि ईसाई धर्म बौद्ध धर्म का प्रक्षीण रूप मात्र है। इससे यह आशय कदापि नहीं निकलता कि ईसाई धर्म में मौलिकता, सत्य और सौन्दर्य नहीं है। जैसे कि डा० पॉल केरस हमें

१. जर्नल आर्फ महाबोधि सोसायटी, ५.४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बताते हैं, "ईसाई धर्म का एक भी मूल तत्त्व मूलतः नया नहीं है, पर तो भी यह सारा विशिष्ट सम्मिलन निश्चित रूप से मौलिक है और एक ऐसे युग का श्रीगणेश है जो, कम से कम पश्चिम में, पहले सब युगों से सर्वथा भिन्न था।"[1]

पर पश्चिमी एशिया में बौद्ध धर्म से निर्विवाद रूप से प्रभावित धर्म शायद एक ईसाई धर्म ही न था। और भी अनेक धार्मिक संप्रदाय इसी प्रकार प्रभावित हुए होंगे। इस तरह का एक संप्रदाय ऐसनस था, जिसके पंडित-पुरोहितों ने एक छोटा-सा यहूदी संघ बना लिया था—ये लोग विचित्र, कुछ-कुछ साधुओं के से आचरण करते थे और मृत सागर के तट पर रहते थे। और विद्वान लोग बहुत समय से यह स्वीकार करते हैं कि उनकी कुछ महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ बौद्ध धर्म से ली गयी थीं।[2] यह भी स्वीकार किया गया है कि ऐसनस लोगों का अस्तित्व ईसाई धर्म के उदय से भी पहले विद्यमान था। इसी तरह का एक और धार्मिक संघ थेराप्यूटी था—इसके अनुयायी सिकन्दरिया के निकट रहते थे और ईसाइयत से पहले के यहूदी-धर्म में एक संगठन के रूप में विद्यमान थे। नके उपदेशों और जीवन की रीतियों पर बौद्ध-धर्म का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है।[3] इस प्रकार पश्चिमी एशिया की धार्मिक स्थिति पर बौद्ध धर्म का प्रभाव प्रथम शताब्दी

१. बुद्धिजम एण्ड इट्स क्रिश्चियन क्रिटिक्स, पृ० २१५–६।
२. E. R. E. V. ४०१।
३. वहीं, XII, ३१८-९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ई० पू० तक मिलता है और निःसंदेह अशोक के धर्म प्रचार के उत्साह और उन प्रदेशों में किये गये कार्य के कारण ही पैदा हुआ होगा ।

जब हम कहते हैं कि अशोक ने अपने अफसरों द्वारा अपने साम्राज्य में और उससे बाहर, भारत और पश्चिमी एशिया दोनों में, धम्म का प्रचार किया, तब इसका यह अर्थ कदापि नहीं होता कि बौद्ध भिक्षुओं ने स्वयं अपने धर्म के लिए कुछ नहीं किया । दीपवंश और महावंश हमें बताते हैं कि मोग्गलिपुत्त तिस्स ने भारत के विभिन्न भागों में प्रचारक भिक्षु भेजे जिससे हमें यह मानना पड़ता है कि अशोक के समय में भी बौद्ध धर्माधिकारियों ने अपने धर्म के प्रचार के लिए अपने निजी तरीके अपनाये । पर, जैसे कि हम देख चुके हैं, हमें उनके विवरण का उपयोग करते हुए सतर्क रहना है । प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्माधिकारियों ने कम-से-कम दो दल भेजे, एक हिमालय प्रदेश में और दूसरा पश्चिमी भारत में । पहले दल का नेता मज्झिम नहीं था, गोतीपुत्त कसप-गोत था । और इन हिमालय प्रदेशों के अन्तर्गत कश्मीर और गंधार भी थे । इस तरह मज्झन्तिक, जिसको पृथक् रूप से इन प्रदेशों में भेजा गया कहा जाता है, और मज्झिम एक ही व्यक्ति सिद्ध होता है । संभाव्यतः हुआ यह होगा कि गोतीपुत कसप-गोत के नेतृत्व में गये दल में मज्झिम भी होगा और कि गोतीपुत कसप-गोत ने मज्झिम को प्रचार कार्य के लिए इन दो प्रान्तों का भार सौंप दिया होगा । इसी प्रकार, रक्खित,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

धम्मरक्खित, महाधम्मरक्खित और महारक्खित चार अलग-अलग नाम नहीं हैं, जैसा सिंहली इतिहास-ग्रंथों से अनुमान होता है। वे संभाव्यतः एक ही व्यक्ति का निर्देश करते हैं जो पश्चिमी भारत भेजा गया था जिसके अन्तर्गत वनवासी, अपरान्त, महारट्ठ और योनालोक थे। दो और मिशन इसी प्रकार भेजे गये प्रतीत होते हैं—एक सुवर्णभूमि और दूसरा लंका। ये मिशन शायद मोग्गलिपुत्त तिस्स ने भेजे होंगे पर उनका उन कार्यों से कोई संबंध नहीं था जो अशोक ने इसी उद्देश्य से किए। अशोक के पास अपने धर्म के प्रचार के लिए अपने राज-शासन का सारा तंत्र और वित्त मौजूद थे, और जब, जैसा कि हम देखते हैं, उसे सब अफसरों को अपना प्रचारक बनाने का नया, पर प्रभावी, तरीका सूझा, तब स्वभावतः अधिक वास्तविक, द्रुत और विस्तृत परिणाम निकलने की आशा करनी चाहिए। और अगर हम यह ध्यान रखें कि बौद्ध संघ के अधिकारियों ने भी थोड़ी-बहुत लगन के साथ उसी दिशा में कार्य जारी रखा, तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं कि दोनों के सम्मिलित प्रयत्नों के परिणामस्वरूप धर्म के प्रचार में अत्यधिक सफलता हुई हो। क्योंकि क्या हम यह नहीं देखते कि तीसरी शताब्दी ई० पू० के मध्य भाग के बाद से बौद्ध धर्म एकाएक बड़े विस्तृत क्षेत्र में फैलता चला गया और भारत तथा अफगानिस्तान के विविध भागों में स्तूपों, विहारों, और गुफाओं आदि धार्मिक निर्माण-कार्यों की बाढ़-सी आ गयी। इस काल में बौद्ध धर्म की ऐसी प्रधा-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नता रही है कि और सब धर्म पिछड़ गये और साहित्य तथा वास्तुकला में उनके बहुत कम अवशेष मिलते हैं। पर इसका अधिकतर श्रेय तीसरी शताब्दी ई० पू० के राजर्षि इस बौद्ध सम्राट् को मिलना चाहिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ६

अशोक-कालीन स्मारकों के आधार पर सामाजिक और धार्मिक जीवन

यदि हम अशोक के कार्य करने के समय की सामाजिक और राजनैतिक परिस्थितियों पर विचार न करें तो उसकी, तथा उसकी सफलताओं की पूरी तस्वीर हमारे सामने नहीं आ सकती। यहाँ भी यह ध्यान रखना चाहिए कि इस अध्याय में उसकी पूरी तस्वीर नहीं आ सकती। हमारा उद्देश्य तो सिर्फ यह दिखाना है कि अशोक के प्रस्तर-अभिलेखों से इस पर क्या प्रकाश पड़ता है, और जहाँ अत्यधिक आवश्यक होगा वहीं हम इस चित्र को बाहरी सामग्री की सहायता से अधिक स्पष्ट और उजला करेंगे ।

सबसे पहले हम यह जानने का यत्न करेंगे कि भारत के धार्मिक जीवन के बारे में हमें क्या जानकारी मिल सकती है। हम देख चुके हैं कि अशोक प्रजा को जो धम्म का आचरण सिखाता है उसमें वह "ब्राह्मणों और श्रमणों" से उचित व्यवहार की बात कहता है। इन शब्दों का अर्थ स्पष्ट रूप से समझा नहीं गया । इसका यही अस्पष्ट-सा अर्थ समझ लिया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया है कि "ब्राह्मण और तपस्वी" या "ब्राह्मण और सन्यासी।" यही पदावलि पालि साहित्य में, उदाहरण के लिए परिनिब्बानसुत्त में, भी आती है, जहाँ प्रोफेसर राइस-डेविड्स इसका यह अर्थ करते हैं कि "साधु-जीवन के कारण ब्राह्मण।"[१] पर यह द्वन्द्व समास है, कर्मधारय नहीं, और इसका अर्थ "ब्राह्मण तथा श्रमण" ही किया जाना चाहिए। बौद्धों के पालि ग्रंथों में जहाँ कहीं भी ब्राह्मणों और श्रमणों का एक साथ उल्लेख हुआ है वहाँ दोनों को अधिकतम, परन्तु समान, पावनता और आदर का पात्र माना गया है।[२] इसलिए वे दो परस्पर-विरोधी प्रकार के धर्मों का निर्देश करते हैं। ब्राह्मण वे सन्यासी और साधु प्रतीत होते हैं जिनके विचार और आचार वेदों के अनुसार थे, और श्रमण वे जिनके सिद्धान्त और आचरण ब्राह्मण-शास्त्रों के विपरीत थे। दोनों धर्मों के व्यक्ति, अपने भिन्न सिद्धान्तों और आचारों के बावजूद, एक-सा पवित्र जीवन बिताते होंगे और इस तरह आम जनता की दृष्टि में बराबर आदर के अधिकारी होते होंगे। यही कारण है कि ब्राह्मण सन्यासियों का भी, बुद्ध के समय में, श्रमणों के समान आदर किया जाता था, और यही कारण है कि अशोक स्वयं भी दोनों के लिए समान आदर प्रदर्शित करता है और जनता से भी ऐसा ही करने का अनुरोध करता है।

स्तम्भ प्रज्ञापन ७ में तीन धार्मिक संप्रदायों का नामो-

---

१. S. B. E, XI, १०५, टि० १।

२. IA, १८९१, पृ० २६३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ल्लेख है, अर्थात् संघ, ब्राह्मण आजीविक और निगंथ। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि अशोक कहता है कि इनके अलावा और भी सम्प्रदाय हैं, पर क्योंकि वह उनका नाम न लेकर सिर्फ इन तीन का नाम लेता है, अतः स्पष्ट है कि उसके समय में ये तीन सम्प्रदाय ही सबसे मुख्य थे। इन तीन में से संघ शब्द निश्चित ही बौद्ध सम्प्रदाय के लिए है और क्योंकि अशोक स्वयं इस संप्रदाय का अनुयायी था, इसलिए वह उसका सबसे पहले और इस नाम से उल्लेख करता है। अशोक के समय में जो बौद्ध धर्म प्रचलित था उसके सिर्फ एक विशेष रूप का हमें पता है। यह विशेष रूप निगलीव स्तंभ लेख में उल्लिखित कोना-कमन बुद्ध है। इस अभिलेख में अशोक कहता है कि मैंने अपने अभिषेक के बीसवें वर्ष में, दूसरी बार स्वयं यहाँ आने पर, इस बुद्ध के स्तूप को बड़ा कराया। इससे यह स्पष्ट है कि अशोक के समय से पहले ही गौतम के धर्म पर पूर्ववर्त्ती बुद्धों का धर्म थोपा जाने लगा था। निगंथ निग्रंथ निर्ग्रन्थ या महावीर के अनुयायी अर्थात् जैनी हैं। इस प्रकार आजीविक[1] रह गये और विचित्र बात है कि उन्हें ब्राह्मण कहा गया है। हम नहीं जानते कि इसका ठीक-ठीक क्या अर्थ है। पर यह प्रतीत होता है कि आजीविकों के दो संप्रदाय थे—एक ब्राह्मण आजीविक, और दूसरा अ-ब्राह्मण आजीविक,

१. JDL, II. १–८० में डा. बेनीमाधव बरुआ का आजीविकों पर एक विद्वत्तापूर्ण लेख है जिसमें वह सब जानकारी है जो विविध स्रोतों से उनके बारे में प्राप्त होती है। पर यह अनुमान कि आजीविकों के कम से कम दो सम्प्रदाय थे, सर्वथा मेरा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अ-ब्राह्मण आजीविक संभाव्यतः वे थे जिनका जैनों से संबंध था और दूसरे संप्रदाय में संभाव्यतः मस्करी या परिव्राजक थे जिनका पाणिनि और पतंजलि ने उल्लेख किया है। यह जांच बड़ी मनोरंजक हो सकती है कि आजीविकों के ये दो समुदाय अपने सिद्धान्तों और आचारों के आधार पर, जो इस समय बिलकुल मिल गये प्रतीत होते हैं, पृथक्-पृथक् किये जा सकते हैं या नहीं। उदाहरण के लिए, एक बौद्ध लेखक कहता है कि आजीविक मछली खाते थे, एक दूसरा बौद्ध ग्रंथ उन्हें जीवों के प्रति अत्यधिक दयालु बताता है और ये दोनों बातें परस्पर मेल नहीं खातीं। फिर, कुछ बौद्ध सुत्त कहते हैं कि वे धम्म की फलप्रदता में विश्वास नहीं करते थे-- तो फिर वे अत्यन्त कठोर धार्मिक तप क्यों करते थे, जैसा कि कुछ और बौद्ध सुत्त हमें बताते हैं। प्रतीत होता है कि यहाँ परस्पर-विरोधी सिद्धान्तों और आचारों का निराशाजनक घुटाला है जो तभी स्पष्ट हो सकता है जब उनको पृथक्-पृथक् आजीविक संप्रदायों से संबंधित करने का यत्न किया जाए। जिस बात पर यहाँ हमें ध्यान देना है वह यह है कि यदि आजीविक संप्रदाय दो थे तो उनमें से अधिक महत्त्वपूर्ण ब्राह्मण आजीविक थे और ये संभाव्यतः वही थे जिनके लिए अशोक ने बराबर में पहाड़ी गुफाएं खुदवायीं। ध्यान देने की बात यह है कि यहाँ अशोक हमें स्वयं बता रहा है कि उपर्युक्त ब्राह्मण-श्रमण शब्द से उसका क्या आशय है। अशोक का संघ और निर्ग्रन्थ तो श्रमण-धर्मी होते थे और आजीविक ब्राह्मण-धर्मी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक ने इन संप्रदायों को निर्दिष्ट करने के लिए जिस शब्द का प्रयोग किया है वह है पासंड। इसे संस्कृत पाषण्ड का पर्यायवाचक माना गया है जिसका अशोक के समय में भी 'नास्तिक' अर्थ होता था, जैसा कि कौटिल्य अर्थशास्त्र से स्पष्ट है। परन्तु अशोक ने इस शब्द का इस अर्थ में प्रयोग नहीं किया क्योंकि वह अपने संघ को भी पासंड कहता है। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि जिन शिला प्रज्ञापनों में यह शब्द आया है, उनमें से शाहबाजगढ़ी और मानशेरा के पाठों में प्रायः सर्वत्र, अन्य प्रतियों के पासंड शब्द के स्थान पर प्रषड शब्द का प्रयोग हुआ है। इससे मालूम होता है कि यह संस्कृत के पाषंड शब्द का तद्भव रूप न होकर, पार्षद, अर्थात् पर्षद का सदस्य, का तद्भव रूप है। पर प्राचीन संस्कृत में 'पर्षद' शब्द 'धार्मिक सभा' का भी वाचक है। यह अशोक के पासंड शब्द के निकट तो अवश्य है, पर उसके सही अर्थ को व्यक्त नहीं करता। यह सर्वथा सम्भव है कि अशोक के समय में यह संस्कृत शब्द ठीक यही अर्थ व्यक्त करता हो। प्रत्येक पासंड या धार्मिक समुदाय दो भागों में विभक्त था: (१) प्रव्रजित या सन्यासी, और (२) गृहस्थ। अशोक इन विभागों का दो बार उल्लेख करता है, एक बार शिला प्रज्ञापन १२ में और दूसरी बार स्तम्भ प्रज्ञापन ७ में।

पासंडों के साथ संबद्ध एक शब्द धम्म है। हम देख चुके हैं कि अशोक धम्म से क्या समझता था। उसकी दृष्टि में धम्म का अर्थ था कुछ नैतिक कर्तव्य, और क्योंकि वह गृहस्थी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बौद्ध, यानी उपासक, था, इसलिए स्वभावतः उसके धर्म के अन्तर्गत वे कर्त्तव्य थे जो बौद्ध धर्म के उपासकों के लिए निर्धारित किये गये हैं। पर यह ध्यान रखना चाहिए कि वह इस बात से अपरिचित न था कि अन्य पासंड भी प्रायः उन्हीं कर्त्तव्यों की शिक्षा देते थे। ऊपर यह दिखाया जा चुका है कि शिला प्रज्ञापन १३ में अशोक यह स्वीकार करता है कि धम्म के नाम से मैं जो नैतिक कर्त्तव्य करने के लिए आग्रह करता हूँ, वे कर्त्तव्य हैं जिनकी शिक्षा सब पासंड, चाहे वे ब्राह्मण संप्रदायों के हों चाहे श्रमण संप्रदायों के, देते हैं। दूसरे शब्दों में, वह कहता है कि सब सम्प्रदायों का धम्म प्रायः एक ही है। और यही कारण है कि शिला प्रज्ञापन ७ में वह कहता है कि "(मेरे राज्य में) सब स्थानों पर सब संप्रदाय रह सकें क्योंकि उन सबका ध्येय आत्म-संयम और हृदय की पवित्रता है," और शिला प्रज्ञापन १२ में कहता है कि लोगों को एक दूसरे के मुख से धम्म का श्रवण करना चाहिए ताकि इसके सार की वृद्धि हो। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि सब ही संप्रदाय कुछ धार्मिक गुणों और आचारों का उपदेश करते थे और उनके अनुसार वही धम्म था। प्रो० राइस-डेविड्स के शब्द इस प्रसंग में उद्धृत करने योग्य हैं। "धम्म शब्द का (अंग्रेजी) अनुवाद लॉ (विधि या कानून) किया गया है। पर अंग्रेजी के लॉ शब्द के जो विविध अर्थ हैं उनमें से एक का भी वाचक यह नहीं है। बल्कि इस प्रसंग में जब यह प्रयुक्त होता है, तब इसका अर्थ होता है वह कार्य, जिसे रूढ़ि के अनुसार करना

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'शुभ विधि' है। इस प्रकार इसका ठीक-ठीक अर्थ धर्म कभी नहीं होता, बल्कि वह कार्य होता है जिसे करने में सत्य-भावना वाले व्यक्ति की शोभा है—दूसरी ओर, जो कार्य समझदार आदमी स्वभावतः करेगा। यह कर्मकांड या धार्मिक सिद्धान्तों से सर्वथा पृथक् वस्तु है।"[1] इसी कारण गौण शिला प्रज्ञापन २ में, जहाँ अशोक और जगह की तरह अपने नैतिक कर्तव्यों का उल्लेख करता है, वहाँ अन्त में कहता है कि वे 'पोराणा पकिति दिघावुसे' अर्थात् (मनुष्य की) प्राचीन और चिरस्थायी प्रकृति के उपादान हैं। इससे एक कदम और आगे बढ़कर, प्रो० जौली कहते हैं कि "सारे संस्कृत साहित्य में धर्म शब्द एक अत्यधिक व्यापक और महत्त्वपूर्ण शब्द है। भारतीय टीकाकारों ने इसकी व्याख्या उस कार्य के रूप में की है जिसमें आत्मा का अपूर्व नामक गुण पैदा हो और जो स्वर्गीय आनन्द और अन्तिम मुक्ति का मूल हो।"[2] इस प्रकार धम्म का अर्थ है रूढ़ि के अनुसार किया गया वह कोई भी कार्य जो सत्य भावना वाला आदमी स्वभावतः करेगा और, साथ ही, जो स्वर्गीय सुख का देने वाला हो। अशोक भी इसी अर्थ को व्यक्त करना चाहता है, क्योंकि शिला प्रज्ञापन ९ में वह स्पष्ट कहता है : "सब सांसारिक धर्म-कर्म संदिग्ध प्रकार के हैं। हो सकता है कि इनका ध्येय पूर्ण हो जाये और हो सकता है कि न हो। पर धम्म मंगल

---

१. बुद्धिस्ट इंडिया, पृ० २९२।

२. E. R. E, IV, ७०२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समय द्वारा प्रतिबन्धित नहीं है, और चाहे इससे यहाँ कोइ कार्य सिद्ध हो या न हो, पर परलोक में इससे अनन्त पुण्य मिलता है ।"

धम्म शब्द के उपर्युक्त अर्थ से एक बड़ा प्रश्न पैदा हो जाता है । क्योंकि इसका यह अर्थ है कि धर्मयुक्त कार्य स्वयं फलप्रद है और बीच में किसी ईश्वर के हस्तक्षेप के बिना ही स्वर्गीय सुख प्रदान करने में समर्थ है । इसी कारण स्मिथ ने अशोक की पद्धति को बिना ईश्वर का धार्मिक संप्रदाय कहा है ।[1] पर उसने जो कुछ कहा है वह न केवल अशोक के धम्म के बारे में, बल्कि उसके समय के अधिकतर पासंडों के धम्म के बारे में ठीक बैठता है । अशोक के समय तक कर्म का सिद्धान्त सर्वत्र माना जाता था । साधारण जनता धर्मयुक्त कार्य करके ही संतुष्ट थी और वह आशा करती थी कि अपने कर्म के परिणामस्वरूप, इस संसार में किये हुए धार्मिक कार्यों के पुरस्कार के रूप में, हम अगली बार कोई न कोई देवता बनकर पैदा होंगे । कर्म का और उसके परिणामस्वरूप होने वाले पुनर्जन्म का, नाश करने का यत्न सिर्फ सन्यासी और साधु करते थे, और उन्हें ही इसमें सफलता होती थी--चाहे वे ब्राह्मण हों या श्रमण । और इसलिए एक चेतन, पृथक् ईश्वर में विश्वास की कोई आवश्यकता नहीं थी । पाँचवीं सदी ई० पू० से अशोक के समय तक व्यक्तिगत आत्मा की मुक्ति के बारे में अपना अपना अलग सिद्धान्त लिये हुए, एक के बाद

१. अशोक, पृ० ३३-४ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दूसरा विचारक और एक के बाद दूसरा सम्प्रदाय सामने आया। लेकिन एक या दो को छोड़कर और सब कर्म के मोहक सिद्धान्त में उलझ गये और यह मानने लगे कि सिर्फ कर्म से व्यक्ति का कल्याण होता है। क्या बौद्ध, क्या आजीविक, क्या जैन और क्या अन्य सम्प्रदाय, सबके सब यही मानते थे-- सिर्फ एक भक्तिमार्ग ऐसा था जो कर्म के सिद्धान्त को अधिक दूर तक नहीं मानता था और यह प्रतिपादन करता था कि परमात्मा के प्रति आत्मार्पण से ही मुक्ति मिल सकती है। पर इस समय तक जो भक्ति मार्ग विशेष प्रचलित नहीं हुआ था, वह अशोक के बाद शीघ्र ही प्रमुखता प्राप्त करने लगा। और सच्चाई यह है कि तब तक इतना अधिक व्याप्त हो गया कि उसी बौद्ध धर्म पर, जो इतना अधिक और इतने काल से प्रतिष्ठित था, भक्ति की छाप पड़ी।

प्रचलित विश्वास के एक और भी अंश का अशोक ने अपने शिला प्रज्ञापनों में उल्लेख किया है। यह सत्य है कि हिन्दू समाज कर्म के सिद्धान्त से इतना अधिक अभिभूत था कि कर्म करने को ही सबसे महत्त्वपूर्ण और फलप्रद माना जाता था, और कि एक वैयक्तिक ईश्वर की पूजा और उपासना को विचारणीय नहीं समझा जाता था। पर यह सिर्फ वहाँ तक सत्य था जहाँ तक भविष्य-जीवन का सम्बन्ध था। पर इस जीवन के बारे में क्या हो? यह बात सर्वथा अग्राह्य है कि प्राचीन भारत के लोग ऐसे दार्शनिक और अ-सांसारिक थे कि उन्हें सांसारिक सुखों से कोई वास्ता ही न था। शिला प्रज्ञापन

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

९ में अशोक कहता है : "लोग रोगों में, विवाहों में, पुत्रों के जन्म पर और यात्रा पर विविध (सौभाग्यप्रद) धर्म-कार्य करते हैं । इन, तथा ऐसे अन्य, अवसरों पर, लोग अनेक धार्मिक कृत्य करते हैं। परन्तु इन प्रसंगों पर स्त्रियां बहुत, अनेक तरह के (पर) क्षुद्र, निरर्थक कृत्य किया करती हैं।" इससे अशोक के समय के लोक-विश्वासों के एक और अंश पर प्रकाश पड़ता है , और यक्षों, चैत्यों, गंधर्वों, नागों आदि की पूजा के, जिसके बारे में बौद्ध पालि साहित्य में इतनी अधिक सामग्री मिलती है, प्रचलित होने का पता चलता है । और इन बौद्ध लेखों से यह सिद्ध कर देना भी असंभव नहीं है कि अशोक का यह कथन सत्य था कि स्त्रियां ऐसे शुभावह कृत्य करने में विशेष रूप से अग्रसर थीं । लोक-विश्वास की इस प्रवृत्ति की ओर अशोक का रुख कदापि शत्रुतापूर्ण नहीं था। "सौभाग्यप्रद कृत्य", वह कहता है, "अवश्य किये जाने चाहिएं। पर इस प्रकार के कृत्य का बहुत थोड़ा फल होता है", और इस सिलसिले में वह ऐसे कृत्यों की धम्म-मंगल से तुलना करता है, और कहता है कि जहाँ उन कृत्यों की फलप्रदता संदिग्ध है, वहाँ धम्म-मंगल पर समय की कोई शर्त्त नहीं है और वह कम-से-कम परलोक में निर्भ्रान्ति रूप से अनन्त पुण्य प्रदान करता है ।

सामाजिक जीवन के बारे में भी अशोक के लेखों से बड़ी मनोरंजक झलकियाँ मिलती हैं । हिन्दू सामाजिक जीवन के साथ संबंधित एक बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण बात शास्त्र द्वारा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निषिद्ध या अनुमोदित भोजन का विचार है। हम जानते हैं कि स्तम्भ प्रज्ञापन ५ में अशोक कुछ प्रकार के पशुओं, पक्षियों और मछलियों का नामोल्लेख करता है जिनका वध निषिद्ध है। उसके कहे हुए कुछ प्राणी पहचाने नहीं जा सकते पर बहुत सारे हमें ज्ञात हैं। उनके बारे में अशोक स्पष्ट रूप से कहता है कि वे प्राणी न खाये जाते हैं और न किसी और उपयोग में आते हैं। अपने कथन के पिछले अंश से उसका वास्तव में क्या अभिप्राय है, यह पूरी तरह स्पष्ट नहीं। पर इसमें कोई संदेह नहीं कि यहाँ वह उन प्राणियों की चर्चा कर रहा है जो भोजन में तो काम नहीं आते पर तब भी औषधि या सजावट में उपयोग के लिए मारे जाते हैं। अब यदि हम अशोक द्वारा उल्लिखित ऐसे प्राणियों की सूची की तुलना उन प्राणियों की सूची से करें जिन्हें धर्मसूत्रों या धर्मसंहिताओं ने भोजन या वध के लिए अनुमोदित या निषिद्ध किया है, तो हमें बड़े विचित्र परिणाम प्राप्त होते हैं। इनमें कुछ तो ऐसे हैं जिन्हें अशोक और धर्म-शास्त्र दोनों ने निषिद्ध कहा है। इनमें शुक (तोता), सारिका (मैना), चक्रवाक (चकवा) और हंस हैं।[1] पर कुछ और प्राणी अशोक के समय में निषिद्ध थे, लेकिन स्मृतिकारों ने उनके वध की अनुज्ञा दे दी थी। यहाँ भी हमें उनके दो विभाग करने पड़ते हैं—एक वे प्राणी जिनके वध की अनुज्ञा सब

१. इस प्रसंग में मनमोहन चक्रवर्ती का अत्यधिक विद्वत्तापूर्ण लेख 'एनिमल्स इन दि इन्स्क्रिप्शन्स आफ पियदसी' (MASB, जिल्द १, संख्या १७ देखिए।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्मृतिकारों ने दे दी है और दूसरे वे जिनके वध की अनुज्ञा कुछ ने दे दी है। पहले विभाग में कफट और दुडि अथवा नर और स्त्री कछुआ तथा सयक या सेह हैं जिनको स्मृतिकारों ने अनुज्ञात किया है, पर अशोक ने निषिद्ध किया है। दूसरे विभाग का सिर्फ एक उदाहरण अर्थात् पलसते या गेंडा, मिलता है जिसको अशोक ने निषिद्ध किया है, पर याज्ञवल्क्य, गौतम, मनु और आपस्तंब ने अनुज्ञात किया है और वसिष्ठ तथा बौधायन ने निषिद्ध किया है। हम यहाँ बहुत सूक्ष्म ब्योरे में नहीं जा रहे——उसकी विस्तृत चर्चा और कहीं की जा सकती है। पर इस प्रसंग में हम एक मनोरंजक बात को नहीं भुला सकते। अब तक हमने जिन प्राणियों पर विचार किया है वे हैं जिन्हें अशोक ने तो सर्वथा अवध्य घोषित वे किया है और स्मृतियों ने अंशतः या पूर्णतः भोज्य बताया है। पर एक प्राणी ऐसा है जिसे अधिकतर स्मृतियों ने निषिद्ध किया है, पर जो अशोक के समय में भोज्य वस्तु के रूप में उपयोग में लाया जाता था। यह है मोर, जिसका मांस मध्यदेश के लोग बड़े चाव से खाते थे और जो अशोक का प्राणिरक्षा का कार्यक्रम अमल में आने के बाद भी राजा के भोजन के लिए मारा जाता रहा था।[1] पर एक को छोड़कर और सब धर्मशास्त्रों ने मोर मारने पर प्रायश्चित्त का विधान किया है।

इस अध्याय का उद्देश्य विभिन्न धर्मशास्त्रों के काल

---

१. ऊपर, पृ० १७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

या वर्त्तमान स्वरूप के बारे में कोई विचार करना नहीं है। पर क्योंकि अशोक के वे सब स्तम्भ, जिन पर यह प्रज्ञापन है, मध्यदेश में मिले हैं, इसलिए यह परिणाम निकलता है कि विहित या निषिद्ध भोजन के जो पदार्थ इसमें उल्लिखित हैं, वे उस देश पर लागू होते हैं। धर्मसूत्रों में बौधायन और वसिष्ठ आर्यावर्त्त या मध्यदेश के आचारों के संकलनकर्त्ता माने जाते हैं। परन्तु बौधायन तो यह कहता है कि उत्तर के आचार उत्तर भारत में और दक्षिण के आचार दक्षिण भारत में अनुसरण किये जाने चाहिएं, और गौतम कहता है कि आर्यावर्त्त में प्रचलित आचार सर्वत्र प्रामाणिक माना जाता है। यह बात इस तथ्य के साथ मेल खाती है कि मोर का मांस सब स्मृतियों द्वारा निषिद्ध है, पर बौधायन तथा गौतम द्वारा निषिद्ध नहीं है, और वे मध्यदेश के थे। अब, हमें भारत के बारे में जिस बात पर ध्यान देना है, वह यह कि बौद्ध और जैन धर्मों के निरन्तर बढ़ते हुए प्रभाव के कारण निरामिष भोजन की प्रवृत्ति बढ़ती जाती थी और कि जो भोजन पहले अनुज्ञात थे वे बाद के काल में निषिद्ध हो गये होंगे, पर जो पहले निषिद्ध थे, वे बाद में अनुज्ञात नहीं हो सकते। बौधायन और गौतम दोनों ने पाँच पादांगुलि वाले प्राणियों, सेह और कछुए, के खाने को अनुज्ञात किया है, पर वे कहते हैं कि गेंडे के बारे में कुछ संदेह है। परन्तु अशोक के समय में न केवल गेंडा, बल्कि सेह और कछुआ भी निषिद्ध हैं। जहाँ तक कम से कम इन आधारों का सम्बन्ध है, हमें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मानना होगा कि धर्मसूत्रों का निर्माण अशोक के राज्य से पहले हुआ था ।

सामाजिक जीवन से सम्बन्धित एक और मनोरंजक बात है स्त्रियों की स्थिति । आम तौर पर यह समझा जाता है कि प्राचीन भारत में स्त्रियां पर्दे में नहीं रहती थीं और कि पर्दे की प्रथा भारत में मुसलमानों के साथ आयी । पर इससे अधिक गलत धारणा और हो नहीं सकती । भास और कालिदास के नाटकों के पढ़ने से इसमें कोई सन्देह नहीं रहता कि उनके समय में पर्दा प्रचलित था। वात्स्यायन के, जो तीसरी शताब्दी ई० प० में हुआ, कामसूत्र से इसकी पर्याप्त पुष्टि हो जाती है ।[1] पर ईसा से बहुत समय पहले तक इस प्रथा का पता चलता है। हम देख चुके हैं कि अशोक अपने अवरोधन की चर्चा करता है, जिसका अर्थ है महिलाओं के रहने का भीतरी बंद कक्ष । और इसके अनुरूप ही, अर्थशास्त्र में अन्तःपुर का उल्लेख है,[2] जिसके बारे में वहाँ न केवल उसके निर्माण की रीति बतायी गयी है, बल्कि बाहरी व्यक्तियों से उसकी रक्षा का उपाय भी बताया गया है । रामायण में भी स्त्रियों को पर्दे में रखने की प्रथा का कई जगह जिक्र है । पर इसका प्राचीनतम उल्लेख पाणिनि ३.२.३६ में है, जिसमें असूर्यंपश्या शब्द दिया गया है, और जिसकी व्याख्या करते हुए काशिका में लिखा है असूर्यंपश्या राजदाराः (=वे जो सूर्य नहीं देखतीं, अर्थात् राजा की पत्नियां) । अगर काशिका

१. SAMSJ, जिल्द २, भाग १, पृ० ३३७ और ३५९–६० ।

२. पृ० ४० और आगे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

में यह परम्परागत उदाहरण के रूप में दिया गया है तो इसका यह अर्थ है कि पाणिनि के समय में राजा की रानियां इतनी कड़ाई से अन्तःपुर में बंद रहती थीं कि उन्हें कभी सूर्य देखने का अवसर भी न मिलता था।

फिर, शिला प्रज्ञापन ९ में, जिसमें अशोक रोग, विवाह, पुत्रजन्म, यात्रा आदि में किये जाने वाले मंगल-कृत्यों की चर्चा करता है, वह कहता है कि "स्त्रियां बहुत, अनेक प्रकार के, (पर) क्षुद्र, निरर्थक मंगल-कृत्य करती हैं।" वह प्रवृत्ति सनातनी हिन्दू स्त्रियों में आज तक प्रायः वैसी ही चली आती है और हमें बेंथम का यह कथन स्मरण करा देती है कि "स्त्री का धर्म अधिक सरलता से अंधविश्वास की ओर, अर्थात् सूक्ष्म क्रियाकलाप की ओर, झुक जाता है।[1]"

हम नहीं जानते कि अशोक के समय में समाज का ठीक-ठीक ढांचा कैसा था। पर उसके प्रज्ञापनों की दो-तीन उक्तियों से उसकी कुछ आंशिक झांकियाँ मिलती हैं। इस प्रकार शिला प्रज्ञापन ५ में कहा गया है कि धर्म-महामात्रों को उन ब्राह्मणों और इभ्यों की देख-भाल के लिए नियुक्त किया गया है जो धन के लिए सेवा करते थे। यहाँ ब्राह्मण से अभिप्राय सांसारिक ब्राह्मणों से है, संसार-त्यागी ब्राह्मण सन्यासियों और साधुओं से नहीं, जो श्रमणों के साथ आये हैं। इभ्य शब्द विचित्र है। यह एक बार उपनिषदों में आता है, और पालि साहित्य में भी उसका प्रयोग मिलता है। उदा-

१. थियोरी आफ लेजिस्लेशन (पेटरनोस्टर लाइब्रेरी), पृष्ठ ३९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हरण के लिए, यह महानारद कस्सप जातक में प्रयुक्त हुआ है, जहाँ टीकाकार ने इसकी व्याख्या गहपति (गृहपति) की है । गृहपति शब्द साधारणतया ब्राह्मण-व्यवस्था के तीसरे वर्ग, वैश्य का सूचक माना गया है । पर पालि ग्रंथों में वेस्स (वैश्य) शब्द सिर्फ सिद्धान्त-विवेचन के सिलसिले में पाया जाता है, लेकिन उनमें कोई ऐसा संकेत नहीं है कि वैश्य एक पृथक् जाति या वर्ण थे ।[१] इसके विपरीत, इभ्य या गृहपति एक सुनिश्चित सामाजिक समुदाय, एक उच्च धनिक वर्ग, था जो सदा क्षत्रियों और ब्राह्मणों के बाद आता था । यह कुछ विचित्र प्रतीत हो सकता है कि अशोक के लेखों में क्षत्रियों का एक वार भी उल्लेख नहीं । पर हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि वैश्यों की तरह क्षत्रियों का भी, योद्धा जाति के अर्थ में, अलग अस्तित्व नहीं था । उस समय, क्षत्रिय शासक वर्ग के सूचक थे, जिसमें अशोक के समय उसके संबंधी, उसके अधीन सामन्त और दक्षिण में अंत या सीमावर्त्ती राजा थे । और हम जानते हैं कि इनका अशोक ने अपने प्रज्ञापनों में उल्लेख किया है । क्षत्रियों या योद्धा वर्ग की तरह, शूद्रों की भी सिर्फ सिद्धान्त-विवेचन में ही चर्चा होती थी, पर एक पृथक् वर्ण या वर्ग के रूप में उनका कोई वास्तविक अस्तित्व नहीं था, और अशोक के समय में समाज के निचले स्तरों में भृतक या किराये के मज़दूर और दास थे जिनके प्रति दया रखने के लिए राजा विशेष रूप से शिक्षा देता है,

---

१. फिक का सोशल आर्गेनाइजेशन, आदि, पृ० २५१ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और उसके अनुसार धम्म के अन्तर्गत जो नैतिक कर्त्तव्य आते हैं उनमें एक यह भी है। उस समय जब आज के ढंग की वर्ग-व्यवस्था नहीं पैदा हुई थी, भृतक और दास, सारतः पृथक् सामाजिक समुदाय थे। भारत में दासता की प्रथा उस समय नहीं थी और यद्यपि किराये के मज़दूर होते थे पर वे विभिन्न वर्णों के होते थे; और आजकल के सामाजिक तंत्र की लाक्षणिक विशेषता वर्ण है, वर्ग नहीं।

अशोक-कालीन भारत के सामाजिक जीवन से सम्बन्धित एक और बात उसके शिला प्रज्ञापन २ से ध्वनित होती है। उसमें राजा हमें बताता है कि अपने और अपने पड़ोसी राजाओं के राज्यों में उसने दो प्रकार की चिकित्सा का प्रबन्ध किया—एक मनुष्यों के लिए और एक पशुओं के लिए। और वह यह भी बताता है कि औषधीय वनस्पतियाँ, मूल और फल, जहाँ नहीं होते वहां सर्वत्र बाहर से पहुंचाये गये और बोये गये। इस अभिलेख से हम यही समझ सकते कि अशोक ने मनुष्यों के लिए औषधालय और पशुओं के लिए पिंजरापोल खोले। यह कहना कठिन है कि भारत के किसी और भाग में धमर्थि संस्थाएं स्थापित करने का चलन था या नहीं, पर यह निश्चित है कि बम्बई प्रदेश में यह चलन मौजूद था। इस प्रकार, अट्ठारहवीं शताब्दी के अभिलेखों से यह सर्वथा स्पष्ट है कि महाराष्ट्र और गुजरात, दोनों में राजा और सामन्त गरीबों और असमर्थों के लिए मुफ्त चिकित्सा की व्यवस्था प्रायः किया करते थे, कि इसके निमित्त

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चिकित्सकों को माफी भूमि या गांव पुरस्कार में मिलते थे, और कि कुछ अवस्थाओं में, इन पुरस्कारों का प्रयोजन स्पष्ट रूप से यह बताया गया है कि वे उन भूमियों पर चिकित्सोपयोगी वनस्पतियाँ उगा सकें।[१] पिंजरापोल या पशु चिकित्सालय तो पश्चिमी भारत में आज तक पाये जाते हैं। पिंजरापोल का प्राचीनतम वर्णन वह है जो हैमिल्टन ने प्रकाशित किया है और यह अट्ठारहवीं शताब्दी के पिछले दिनों में सूरत में कायम पिंजरापोल का वर्णन है।[२] टूटे अंग वाला या अन्य प्रकार से असमर्थ पशु, उसके मालिक के वर्ण या जाति का विचार बिना किये उसमें भर्ती किया जाता था। यह बात बहुत उपयुक्त जंचती है। क्योंकि जब अशोक कहता है कि मैंने मनुष्यों और पशुओं, दोनों के लिए चिकित्सा का प्रबन्ध किया है तब उसका आशय यही है कि उसने मनुष्यों के लिए तो धर्मार्थ औषधालय बनाये हैं और पशुओं के लिए पिंजरापोल जैसी चीज बनायी है। फिर जब वह कहता है कि जहाँ औषधीय वनस्पतियाँ, मूल और फल पहले नहीं होते थे, वहाँ वे बाहर से पहुंचाये गये और बोये गये हैं, तब इसका यही अर्थ है कि इन संस्थाओं के साथ कुछ कृषि क्षेत्र बनाये गये थे जिससे सब वनस्पतियाँ हर समय उपयोग के लिए तैयार मिल

१. सैलेक्शन्स फ्राम दि सतारा राजाज़ एंड दि पेशवाज डायरीज, जिल्द ८, पृ० २२१-३; एस० एच० होडीवाला की 'स्टडीज इन पारसी हिस्ट्री' पृ० १८६-८। इन निर्देशों के लिए मैं डा० सुरेन्द्रनाथ सेन का ऋणी हूं।

२. हेमिल्टन की 'डिस्क्रिप्शन आफ हिंदोस्तान' (१८२०), पृ० ७१८, क्वार्टो संस्करण।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सकें। यह सचमुच बड़ी विलक्षण बात है कि रोगी मनुष्य और पशु की मुफ्त चिकित्सा की प्रथा, जो पश्चिमी भारत में अट्ठारहवीं शताब्दी में प्रचलित थी, तीसरी शताब्दी ई० पू० में भी विद्यमान थी। और एक दूसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि अशोक के इस लोकोपकारी कार्य द्वारा उस समय ज्ञात सब औषधियाँ संसार को उपलब्ध हो गयीं।[1]

इस काल के सामाजिक जीवन का कोई विवरण तब तक पूर्ण नहीं कहा जा सकता जब तक इसके सांस्कृतिक पहलू पर विचार न कर लिया जाए। अब हम यथासंभव संक्षेप में, इस पर विचार करने का यत्न करेंगे। इसमें यह स्मरण रखना चाहिए कि अशोक के लेख उस काल की सांस्कृतिक उन्नति की सीधी चर्चा बहुत कम करते हैं। पर उनसे संस्कृति के वाहनों, अर्थात् लेखन या वर्णमाला और भाषा पर बहुत प्रकाश पड़ता है। अशोक के लेख दो लिपियों में उत्कीर्ण हुए हैं, (१) ब्राह्मी और (२) खरोष्ठी। खरोष्ठी में उत्कीर्ण लेख शाहबाजगढ़ी और मानशेरा में पाये गये चौदह शिला प्रज्ञापन हैं। उसके और सब लेख ब्राह्मी में हैं। बूलर ने, एक चीनी लेखक के आधार पर, इस शब्द का सही रूप खरोष्ठी बताया है और इसे खरोष्ठ (गधे का ओठ) शब्द से व्युत्पादित किया है जो इसके आविष्कर्त्ता ऋषि का नाम

१. इस विषय का सावधानी से अनुसंधान करने की आवश्यकता है; पर, तब तक देखिए दि सर्जिकल इंस्ट्रुमेंट्स आफ़ दि हिन्दूज़, लेखक—जी० एन. मुखोपाध्याय, जिल्द १, पृष्ठ ३४ और आगे, तथा पृ० ४८ और आगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

था। पर सिलवेन लेवी, एक और चीनी लेखक के आधार पर, उसका सही रूप खरोष्ट्री बताता है और इसे खरोष्ट्र शब्द से बना हुआ मानता है जो भारत के पास, उससे बाहर, एक देश था। दूसरी लिपि को ब्राह्मी कहा गया है क्योंकि यह ब्रह्मा देवता से प्रादुर्भूत मानी जाती है। खरोष्ठी लिपि फारसी, अरबी और उर्दू की तरह, दायीं ओर से बायीं ओर को लिखी जाती थी और ब्राह्मी, आजकल की सब हिन्दू लिपियों की तरह, बायीं ओर से दायीं ओर लिखी जाती थी। खरोष्ठी भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में चीनी तुर्किस्तान तक चलती थी और ब्राह्मी सारे भारत में, जिसमें खरोष्ठी का प्रयोग करने वाले प्रदेश भी शामिल थे, प्रचलित थी। खरोष्ठी पाँचवीं शताब्दी ई० प० के आस-पास स्वयं अपनी मौत मर गयी, जबकि ब्राह्मी को न केवल भारत की, बल्कि श्रीलंका, बर्मा और तिब्बत की भी, सब लिपियों की जननी माना गया है। खरोष्ठी के दायीं ओर से बायीं ओर लिखे जाने से मालूम होता है कि यह सामी (सैमिटिक) देश से चली थी। यह आरामेईक लिपि से निकली मानी जाती है जो एकिमीनियनों के शासन-काल में मिस्र से ईरान तक सर्वत्र फैली हुई थी। अब यह बात तक्षशिला में हाल में मिले एक आरामेईक शिलालेख से सिद्ध हो चुकी है कि वे, गांधार जीतने के बाद, शासन के लिए आरामियन लोगों को वहाँ लाये : और इस तरह उन्होंने भारत के लोगों को आरामेइक भाषा और वर्णमाला से परिचित कराया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम पहले देख चुके हैं कि मौर्य प्रशासन के राजनयिक आचार और राज-दरबार पर ईरानी प्रभाव पड़ा था, और हमने बताया है कि यह उत्तर-पश्चिमी भारत पर, एकिमीनियन आधिपत्य के कारण था[1]। ब्राह्मी लिपि के उद्गम के बारे में अनेक और विभिन्न विचार हैं। पर वे सब अंत में दो वादों के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। इनमें से पहला ब्राह्मी को इसी देश में उत्पन्न मानता है। पहले लासेन ने यह सुझाव रखा था और बाद में कनिंगहम ने इसका समर्थन किया। दूसरे वाद के अनुसार, इसका उद्गम सामी (सैमिटिक) है। यह वाद दो प्रकार का है, और इनमें से जिस विचार को भारतीय प्राचीन-लिपि शास्त्र के सब यूरोपीय विद्वान अब स्वीकार करते हैं वह वेबर और बूलर का है जिनकी यह मान्यता है कि ब्राह्मी लिपि उत्तरी सामियों की लिपि से निकली है जो इस समय ज्ञात प्राचीनतम फीनिशियन वर्णमाला है और लगभग ८५० ई० पू० की मानी जाती है। कनिंगहम ने इसके सामी उद्गम का खंडन करने में जिस तर्क को सबसे प्रबल बताया था वह यह था कि ब्राह्मी बायें से दायें चलती है, न कि अन्य सामी लिपियों की तरह दायें से बायें। पर बूलर ने निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया है कि शुरू में ब्राह्मी भी

१. बूलर को इण्डियन पैलियोग्राफी (अनु.) पृ० २४ तथा आगे; IA, १९०४, पृ० ७९ और आगे; वहीं, १९०५, पृ० २१ और आगे, और पृष्ठ ४१ और आगे; वहीं, १९०६, पृष्ठ ४ और आगे; कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इंडिया, जिल्द १, पृ० ६२ और ६५७।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

दायें से बायें लिखी जाती थी। इस प्रकार के चलन का स्मरण कराने वाले उदाहरण अशोक के लेखों में मिल सकते हैं। इस तरह का एक उदाहरग ध, त, ओ आदि असंयुक्त अक्षरों का व्युत्क्रम यानी उल्टा रूप है जो इन अभिलेखों में मिलता है। संयुक्त व्यंजन भी इन लेखों में कहीं-कहीं व्युत्क्रम रीति से लिखे हुए हैं। इस प्रकार त्प, स्त, और व्य इस तरह खुदे हुए हैं जैसे वे प्त, त्स और व्व हों। यह उदाहरग भी यही बात स्मरण कराता है कि ब्राह्मी शुरू में दायें से बायें लिखी जाती थी। इस प्रकार सामी वाद पूरी तरह विजयी हो ही चुका था कि छह वर्ष पूर्व निजाम राज्य में प्रागैतिहासिक टीलों की खुदाई हुई और उनमें मिले मृद्-भांडों पर बने हुए चिह्नों का अध्ययन किया गया। इन चिह्नों में से कम-से-कम पाँच वही हैं जो अशोक-कालीन वर्णमाला में हैं। फिर, एक नवपाषाण (Neolith) भारतीय संग्रहालय (इंडियन म्यूजियम) में है जिस पर तीन निकटस्थ चिह्न हैं जो एक लिखावट प्रतीत होते हैं, और वे अशोक के तीन अक्षरों से काफी सादृश्य रखते हैं। इस प्रकार ब्राह्मी वर्णमाला के उद्गम की विवेचना ऐतिहासिक से प्रागैतिहासिक क्षेत्र में पहुँच गयी। और ऐसा होता भी क्यों नहीं, क्योंकि यूरोप में भी सब सामी और अन्य वर्णमालाओं का उद्गम अब प्रागैतिहासिक काल में बताया जा रहा है, और यह विचार बल पकड़ता जा रहा है कि वर्ण-माला प्रागैतिहासिक मनुष्य के साथ ही पैदा हुई। और परि-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

णामतः जब प्रागैतिहासिक कलाकृतियों पर बने हुए कम से कम आठ प्रतीक अशोक काल के वर्णों के संवादी हैं, तब यह मानना अधिक तर्कसंगत है कि ब्राह्मी प्रागैतिहासिक होती हुई भी इसी देश में उत्पन्न हुई है, न कि यह कि ८०० ई० पू० की एक सामी वर्णमाला से निकली है।

अब हमें जिस प्रश्न पर विचार करना है वह यह है : अशोक के समय में भाषा की क्या अवस्था थी ? इस समस्या पर विचार आरम्भ करने से पहले हमें इन लेखों में दिखायी देने वाली दो वर्ण-विन्यास संबंधी (Orthographic) विशेषताओं पर ध्यान देना चाहिए; अन्यथा सम्भव हैं कि उन्हें बोली-संबंधी विशेषताएं समझ लिया जाये। पहली बात तो यह है कि अशोक के अभिलेखों में सजातीय व्यंजनों का द्वित्व नहीं दिखाई देता। इस प्रकार अत्थि (संस्कृत अस्ति) और सव्व (संस्कृत सर्व) के स्थान पर हमें सादे अथि और सव शब्द मिलते हैं। पर यह इन्हीं लेखों की विशेषता नहीं है। क्योंकि चौथी शताब्दी ई० पू० तक, स्मारकीय प्राकृत में लिखा हुआ शायद ही कोई शिला-लेख हो जिसमें अन्तर्भाव के कारण होने वाले व्यंजनों के द्वित्व को लिखने में दिखाया गया हो। दूसरे, शाहबाजगढ़ी और मानशेरा वाले चौदह शिला प्रज्ञापनों में हम देखते हैं कि दीर्घ और ह्रस्व स्वर लिखने में भेद नहीं किया गया। वर्णविन्यास सम्बन्धी यह विशेषता भी सिर्फ अशोकीय अभिलेखों में ही नहीं पाई जाती, बल्कि परवर्त्ती काल के सब

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

खरोष्ठी लेखों में भी पायी जाती है। सिर्फ ये दो बातें हैं जिन्हें वर्ण-विन्यास की रीति-विशेष बताकर व्याख्या कर लेना उचित है, पर और सब मामलों में ये लेख वास्तविक उच्चारण के अभिव्यंजक माने जा सकते हैं।

अब, हमारे अभिलेखों से बोलियों-संबंधी कौनसी विशेषताएं प्रकट होती हैं ? क्या अशोक के समय में बोलियों के अस्तित्व का कोई प्रमाण मिलता है ? इस प्रश्न पर अब हमें विचार करना ह। यदि हम इस राजा के सात स्तम्भ प्रज्ञापनों को लें तो यह बात ध्यान में आये विना नहीं रह सकती कि वे सब एक बोली में हैं, और उन सब में कुछ स्पष्ट समानताएं एक जैसी दिखायी देती हैं। इनका श्री सेनार्ट ने[1] बड़ी खूबी से वर्णन किया है। इसमें न तो 'ण' है, और न 'ञ', बल्कि सर्वत्र 'न' है। आदि का 'य' लुप्त है, जिसके परिणामस्वरूप, उदाहरण के लिए, यथा की जगह अथा मिलता है। र के स्थान पर ल का प्रयोग है (राजा के स्थान पर लाजा)। पुंल्लिग का, और प्रायः नपुंसकलिंग का भी, प्रथमा का एक वचन 'एकारान्त' है, जैसे समाज के लिए समाजे, दानम् के लिए दाने। आम तौर से, अनादि 'र्य' वाले संयुक्त व्यंजन में 'य' से पहले 'इ' लगाकर अन्तर्भाव नहीं होने दिया गया है—जैसे अवध्यानी के लिए अवधियानी। फिर, अनादि 'र' सर्वत्र लुप्त है, जैसे प्रिय के लिए 'पिय'। क्योंकि सात स्तम्भ प्रज्ञापनों वाले सारे स्तम्भ मध्यदेश में पाये गये हैं, इसलिए

१. IA, १८९२, पृष्ठ १७१ और आगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम कह सकते हैं कि ये सब विशेषताएं उस प्रदेश की बोली की लाक्षणिक विशेषताएं हैं। पर जब हम चौदह शिला प्रज्ञापनों पर आते हैं तब हमारे सामने एक और समस्या आती है। पहले तो, हम देखते हैं कि मध्यदेश की ये बोली-सम्बन्धी विशेषताएं धौलि और जौगड़ा प्रतिलिपियों में पूरी तरह, और कालसी वाली प्रतिलिपि में प्रायः पूरी तरह दिखायी पड़ती हैं। और इसके वाद जव हम शेष प्रतिलिपियों पर विचार करते हैं तो देखते हैं कि शाहबाजगढ़ी, मानशेरा, और गिरनार प्रज्ञापनों में, मध्यदेश की बोली की कुछ विशेषताओं के साथ-साथ कुछ अपनी निजी विशेषताएं दिखायी देती हैं, जो बोली-संबंधी अंतरों की सूचक हैं; और यदि हम आगे अनुसंधान करें तो हम देखते हैं कि वे दो पृथक् बोलियां हैं, जिनमें से एक शाहबाजगढ़ी और मानशेरा वाली प्रतियों से, और दूसरी गिरनार प्रति से निरूपित होती है। जब पाटलिपुत्र के सचिवालय से एक आदेश जारी किया गया होगा तब एक मसविदे की प्रतियां प्रत्येक प्रान्तीय सरकार को भेजी गयी होंगी। पर जब यह मसविदा उत्कीर्ण किया गया होगा तब उस स्थान पर तो यह बिलकुल मूल के अनुरूप उत्कीर्ण होने की आशा की जा सकती है जहाँ की भाषा वही थी जो पाटलिपुत्र की थी। इसी कारण स्तम्भ प्रज्ञापनों में, यद्यपि वे छः विभिन्न स्थानों पर खोदे गये थे, लगभग एक ही मसविदा मिलता है। ये स्तम्भ शुरू में जिन स्थानों पर खड़े किये गये थे वे सब मध्यदेश में थे, और परि-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

णामतः पाटलिपुत्र से जो मसविदा जारी किया गया था, और जो उसी प्रांत की बोली में था, वह यथासंभव मूल के अनुरूप उत्कीर्ण हुआ । पर शिला प्रज्ञापनों के मामले में स्थिति भिन्न थी । जहाँ तक कालसी, धौलि और जौगड़ा की प्रतियों का संबंध है, इन स्थानों के मध्यदेश के अन्तर्गत या सीमावर्ती होने के कारण, उनमें प्रायः एक ही मसविदा है और वह प्रायः सारा स्तंभ प्रज्ञापनों की बोली में है परन्तु शाहबाजगढ़ी और मानशेरा उत्तरापथ के, तथा गिरनार दक्षिणापथ के अन्तर्गत थे ।[1] उनकी अपनी बोलियां थीं और परिणाम यह था कि यद्यपि मध्यदेश के मसविदे को ठीक-ठीक नक़ल करने का पूरा यत्न किया गया परन्तु फिर भी बोली-संबंधी प्रांतीय विशेषताएं उनमें आ ही गयीं । उत्तरापथ की बोली की, और दक्षिणापथ की बोली की क्या-क्या विशेषताएं थीं ? ये बोलियां मध्यदेश की बोली से भिन्न थीं, यह तो इसी बात से सूचित होता है कि इनमें मध्य-देश की बोली की सब विशेषताओं का सर्वथा अभाव है । इस प्रकार उनमें न केवल 'न' है, बल्कि 'ञ' और 'ण' भी हैं । पुंल्लिग का प्रथमा एकवचन रूप ओकारांत है, एकारान्त नहीं । 'र' के स्थान पर 'ल' का प्रयोग नहीं है, इत्यादि । अब हमें यह देखना है कि उत्तरापथ और दक्षिणापथ की बोलियां परस्पर किस दृष्टि से भिन्न थीं । दोनों में अधि-करण (सप्तमी) का एकवचन कभी-कभी अवश्य एका-

१. CL., १९१८, पृष्ठ ४४ और आगे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रांत है, पर प्रायः दक्षिणापथ की बोली में इसके अन्त में 'न्हि' आता है और उत्तरापथ की बोली में 'सि', जो मध्य-देश की बोली में भी आता है। उत्तरापथ की बोली में तीन ऊष्म वर्ण, श, ष और स, हैं, पर दक्षिणापथ की बोली में सिर्फ स है, जैसे कि मध्यदेश की बोली में है। दक्षिणा-पथ की बोली में 'व्य' साधारणतया इसी रूप में है, पर उत्तरापथ की बोली में यह अन्तर्भाव होकर 'व्व' बन जाता है। फिर, इसमें 'य' और 'इ' प्रायः एक-दूसरे से बदल जाते हैं और वर्ग का तीसरा वर्ण पहला बन जाता है। दक्षिणा-पथ की बोली में संयुक्त स्वर 'ऐ' विद्यमान है, और हमेशा 'ष्ठ' के, तथा कभी-कभी 'स्त' के स्थान पर 'स्ट' हो जाता है।

भारतीय भाषाशास्त्र के बारे में एक और बात पर भी अशोक के लेखों से प्रकाश पड़ता है। कुछ भाषाशास्त्री, बिना किसी स्पष्ट धारणा के, यह कहा करते हैं कि पालि और प्राकृत में ध्वनि-संबंधी ह्रास हो गया, और कि इससे पता चलता है कि ये परवर्त्ती काल की हैं।[1] उनका कहना है कि अंतर्भाव, विच्छेद (अलग-अलग करके बोलना या लिखना), मूर्धन्य और महाप्राण वर्णों की प्रचुरता आदि से ध्वनि-संबंधी ह्रास सूचित होता है। पर क्या जिन बोलियों में ये विशेषताएं दिखायी पड़ती हैं, वे आवश्यक रूप से उन बोलियों से परवर्त्ती काल की हैं जिनमें ये विशेषताएं नहीं हैं? क्या

१. आर० जी० भंडारकर के विल्सन फाइलोलौजिकल लैक्चर्स, पृ० ८ और आगे; पृ० ३४ और आगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह बात नहीं है कि वे उच्चारण की एक रीति-विशेष को सूचित करती हैं जो किसी वर्ग, जाति या देश के लोगों में प्रचलित है, और दूसरे में नहीं है ? आइए, हम देखें कि क्या अशोक के अभिलेखों से हम किसी परिणाम पर पहुंच सकते हैं ? यदि हम, उदाहरण के लिए, गिरनार वाली प्रति की, कालसी वाली प्रति से तुलना करें तो स्पष्ट दिखायी देगा कि कालसी वाली प्रति में गिरनार वाली प्रति की अपेक्षा अधिक ध्वनि-ह्रास दिखायी देता है। हम पहले ही देख चुके हैं कि संयुक्त व्यंजनों का मूल 'र' गिरनार वाली प्रति में आमतौर से मौजूद है, पर कालसी वाली में सर्वत्र अनुपस्थित है। इस प्रकार गिरनार वाली प्रति में हमें "सर्वत्र" शब्द मिलता है, पर कालसी वाली में सब जगह 'सवत' (सव्वत्त) मिलता है। फिर गिरनार वाली में हस्ति है, और कालसी वाली में हथि (हत्थि) है। गिरनार वाली प्रति की तुलना करने पर कालसी वाली प्रति की भाषा में पाये जाने वाले अंतर्भाव के अनेक उदाहरणों में से ये दो चार यहाँ दिये गये हैं। फिर मूर्धन्य वर्णों की प्रचुरता की बात को लीजिए। संस्कृत के कृत और भृत शब्दों के लिए गिरनार वाली में कत और भत हैं, पर कालसी वाली में सर्वत्र कट और भट हैं। इसी प्रकार गिरनार के द्वादस या ऐदिस के स्थान पर कालसी में दुवाडस और हेडिस हैं। हेडिस शब्द और हेत तथा हिद आदि शब्द भी कालसी वाली प्रति में महाप्राण की प्रवृत्ति को सूचित करते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पालि और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्राकृत के सामान्य नियमों के अनुसार कालसी वाली बोली में गिरनार वाली की अपेक्षा अधिक ध्वनि-ह्रास दिखायी देता है। पर क्या इससे कोई भाषाशास्त्री यह निष्कर्ष निकालने का साहस करेगा कि कालसी वाली बोली गिरनार वाली बोली से परवर्त्ती काल की है? निश्चित है कि कोई भी ऐसा साहस नहीं कर सकता, क्योंकि गिरनार वाली और कालसी वाली बोलियां अशोक के राज्य-काल में साथ-साथ विद्यमान थीं, और इसलिए एक को दूसरी से परवर्त्ती काल की नहीं कहा जा सकता। तो भी, इन भाषाशास्त्रियों के सिद्धान्तों के अनुसार, कालसी वाली बोली में गिरनार वाली बोली की अपेक्षा अधिक ध्वनि-ह्रास दृष्टिगोचर होता है, और इसलिए इसे अवश्य परवर्त्ती काल की मानना चाहिए। सच बात यह है कि जिन्हें हम पालि और प्राकृत भाषा के नियम कहते हैं, उनसे ध्वनि-ह्रास का ज़रा भी संकेत नहीं मिलता, और न उनके परवर्त्ती होने का संकेत मिलता है जैसी उनकी मान्यता है; वे तो एक वर्ग, जाति या देश विशेष की उच्चारण की रीति को सूचित करते हैं जो सब कालों में प्रचलित थी। उदाहरण के लिए, वैदिक भाषा को लीजिए।[1] वैदिक भाषा में, अंतर्भाव होने पर व्यंजनों का द्वित्व होता है, यह बात इस तथ्य से स्पष्ट है कि विविष्ट्यै के साथ-साथ हमें विविट्ट्यै रूप भी मिलता है। मूर्धन्य वर्णों की प्रचुरता के उदाहरण के रूप में हमें, वैदिक भाषा में कुट, पड्भिः और विदड्ढता

---

१. इंडीस्क स्टडीन, II. ८७, टिप्पणी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी मिलत हैं, और साथ ही कृत, पद्भिः और विदग्धता भी। और क्या आज भी हम नहीं देखते कि कुछ बंगाली पंडित भी, संस्कृत संदर्भों को पढ़ते हुए, उदाहरण के लिए, स्मृति और लक्ष्मी शब्दों को, ऐसे बोलते हैं जैसे ये सृति और लक्खी हों। सचाई यह है कि ऐसा कोई साक्ष्य नहीं जिससे यह सिद्ध होता हो कि ये ध्वनिगत परिवर्तन वस्तुतः ध्वनि-ह्रास हैं, और कि इनसे निश्चित रूप से पश्चाद्वर्तिता सूचित होती है, जैसा कुछ भाषाशास्त्रियों का दावा है। इसके विपरीत, वे प्रयोग उच्चारण की एक भिन्न आदत के सूचक हो सकते हैं, जो किसी भी काल, या वर्ग या प्रांत में, शुद्ध और परिमार्जित शैली के साथ-साथ विद्यमान हो सकते हैं।

इस प्रसंग में भरत के नाट्यशास्त्र[1] के सत्रहवें अध्याय में कहे गये शब्द याद रखने योग्य हैं। वह स्पष्ट रूप से हमें बताता ह कि संस्कृत और प्राकृत दो भाषाएं नहीं हैं, बल्कि भाषा की, अर्थात्, उच्चारण और शब्दों (पाठ्य)। की, दो रीतियां हैं। उसने सिर्फ चार भाषाएं मानी हैं, अर्थात् अभिभाषा—देवों की भाषा, आर्यभाषा—राजाओं की भाषा, जाति-भाषा—विभिन्न वर्णों और आदिमजातियों की भाषा, और जात्यंतरी—पक्षियों तथा पशुओं की भाषा। पहली दो में सदा संस्कृत-पाठ्य अर्थात् परिमार्जित वाक्यावलि होती है, पर तीसरी में संस्कृत, अर्थात् परिमार्जित और प्राकृत, अर्थात् गंवारू शैली, दोनों होती हैं। इन शब्दों के

---

१. ५, २५ और आगे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अस्पष्टार्थक प्रयोग से, और इस विचार से कि, उदाहरण के लिए, पालि में दिखायी देने वाले ध्वनिगत परिवर्त्तन ध्वनि-ह्रास के सूचक हैं और इसलिए इसके परवर्त्ती काल का होने की कसौटी हैं, बड़ा विभ्रम पैदा हुआ है। यदि हम कुछ भाषा-शास्त्रियों द्वारा पैदा किये गये और फैलाये गये विभ्रम और धारणाओं को सावधानी से अपने मन से दूर कर दें तो हम देखेंगे कि जिस भाषा में मौर्य सम्राट् अशोक के प्रज्ञापन लिखे गये हैं वह ठीक' वही भाषा है जिसका व्याकरण पाणिनि, कात्यायन और पतंजलि ने बनाया था, पर कि प्रज्ञापनों में उस भाषा का प्राकृत रूप है, और इन वैयाकरणों ने उस भाषा के संस्कृत रूप का व्याकरण बनाया है। हम यहां गिरनार प्रति के शिला प्रज्ञापन ९ से एक नमूने का संदर्भ लेते हैं--

देवानं-पियो प्रियदसि राजा एवं आह (:) अस्ति जनो उचावचं मंगलं करोते आबाधेसु वा आवाहविवाहेसु वा पुत्रलाभेसु वा प्रवासंम्हि वा। एतम्ही च अञ्ञम्हि च जनो उचावचं मंगलं करोते।

अब, यदि हम कुछ ध्वनिगत विशेषताओं की छूट दे दें तो यह कहना कठिन है कि इस प्रज्ञापन की भाषा उस भाषा से भिन्न है जिसका व्याकरण पाणिनि और पतंजलि ने लिखा था। आज के एक पंडित की और कोई भारतीय भाषा बोलने वाले एक व्यक्ति की बोली में इससे कहीं अधिक अंतर होगा। डा० एफ० डब्लू० टॉमस जैसे एक निष्पक्ष

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विद्वान ने पहले ही कहा है कि "इन प्रज्ञापनों की भाषा आदर्श से इतनी दूर नहीं जितनी दूर आजकल की लिखित और बोलचाल की अंग्रेजी हैं।"[१] अशोक के समय में मध्यदेश, उत्तरापथ और दक्षिणापथ के अनुसार, ध्वनिगत विशेषताएं भी तीन ही प्रकार की थीं, और ये तीनों उस समय की तीन मुख्य बोलियां थीं। पर यदि हम एक बार यह स्वीकार कर लें कि इन बोलियों के विभेद, उच्चारण और शब्दावलि की विभिन्न रीतियां मात्र थे, तो अनिवार्यतः यह निष्कर्ष निकलता है कि इन बोलियों का आदर्श रूप वह भाषा होनी चाहिए जिस पर वैयाकरणों ने लिखा है। इससे हमें पतंजलि का यह कथन स्मरण हो आता है कि पाणिनि ने जिस भाषा के लिए लिखा है, वह, वह भाषा है जिसे शिष्ट, अर्थात् सुसंस्कृत ब्राह्मण, स्वभावतः व्याकरण का बिना अध्ययन किये बोलते हैं।[२] ध्यान देने की बात यह है कि पतंजलि ने जिन शिष्टों की चर्चा की है वे हैं जो अष्टाध्यायी नहीं पढ़ते पर फिर भी वैसे बोलते हैं जैसे इसमें बताया है। इससे प्रकट होता है कि पतंजलि के समय लगभग १५० ई० पू० तक वही भाषा आर्यावर्त्त के सुसंस्कृत ब्राह्मणों की भाषा थी जिसका व्याकरण अष्टाध्यायी है?

यह माना जा सकता है कि अशोक काल की बोलियां उस

१. JRAS, १९०४, पृ० ४६२।

२. आर० जी० भंडारकर के विलसन फाइलोलौजिकल लैक्चर्स, पृष्ठ २९५–६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाषा की शैलियां मात्र हैं जो अधिकतर अ-संस्कृत वर्ग में प्रचलित थी। पर यह पूछा जा सकता है कि फिर शिष्ट ब्राह्मणों की भाषा में कोई शिलालेख क्यों नहीं है? क्योंकि, क्या प्रसिद्ध शिलालेखज्ञ डा० फ्लीट ने बहुत निश्चय से हमें नहीं बताया है कि पश्चिमी क्षत्रप वंश के रुद्रदामन के काल, १५० ई० प०, से पहले का एक भी शिलालेख संस्कृत में नहीं मिलता जिससे स्पष्ट है कि उस समय साधारण जनता संस्कृत नहीं समझती थी और इसलिए उस समय यह बोली भी नहीं जाती होगी।

पर यह कथन पूरी तरह सही नहीं है कि इस काल का एक भी शिलालेख संस्कृत का नहीं मिलता। क्योंकि उदयपुर राज्य (राजपूताना) में मिली घोसूंडी बावड़ी का शिलालेख उस भाषा में है जिसे संस्कृत कहा जाता है, विशेषकर इस कारण कि इसमें हमें दोहरा रूप दो बार प्रयुक्त दिखायी देता है।[1] बूलर ने इस अभिलेख का समय ३५० से २५० ई० पू० माना है। इसलिए यह लेख अशोक के समय के आसपास का है। यह कहना सर्वथा तर्कसंगत है कि ऐसे और भी संस्कृत अभिलेख अवश्य रहे होंगे जो मूलतः संस्कृत में उत्कीर्ण कराये गये, पर वे नष्ट हो गये। ऐसे शिलालेख ब्राह्मण स्मारकों पर ही हो सकते थे, जो गांवों और शहरों के निकट होने के कारण, और अधिकतर बौद्ध

---

१. MASI, नं० ४, पृ० ११९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

तथा जैन स्मारकों की तरह वस्ती से वहुत एकान्त स्थान में न होने के कारण, अब शायद सदा के लिए लुप्त हो गये।

डा० फ्लीट और प्रो० राइस-डेविड्स, दोनों की यह मान्यता है कि ३०० ई० पू० और १०० ई० पू० के बीच के काल के शिलालेख एक तरह की पालिभाषा में हैं जो लोक-भाषा से संवद्ध और उस पर आधारित है। उनकी सम्मति में, इससे निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है कि १०० ई० पू० तक प्रचलित भाषा पालि थी, और कि संस्कृत, जिसका व्याकरण पाणिनि और पतंजलि ने लिखा है, उस समय लोकभाषा क़तई नहीं हो सकती थी। इस विचार को स्वीकार नहीं किया जा सकता। पहले तो, हम अभी देख चुके हैं कि अशोक के समय का कम-से-कम एक शिलालेख मौजूद है जो स्पष्ट और असंदिग्ध संस्कृत में है। दूसरे, इन विद्वानों ने उस बात पर ध्यान नहीं दिया दिखता, जो फ्रेंच विद्वान श्री सेनार्ट ने इन शिलालेखों की भाषा के, या जिसे वे स्मारकीय प्राकृत कहते हैं उसके, वारे में कही है। सवसे पहले तो हमें उस विस्तृत प्रदेश को ध्यान में रखना है जिस पर वे विखरे हुए हैं, अर्थात् गुंजरात और पश्चिमी तट की गुफाओं से लेकर कृष्णा नदी के मुहाने और पूर्वी तट पर उड़ीसा में खंडगिरि की गुफाओं तक, तथा मध्यवर्ती भारत में सांची से और वरहौत से लेकर वम्वई प्रान्त के दक्षिणी छोर पर वनवासी[1] तथा मद्रास प्रांत में कांची या आजकल

---

१. IA. १८९२, पृ० २६०।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के कांजीवरम तक। दूसरे, ये अभिलेख कम से कम सात शताब्दियों, लगभग २५० ई० पू० से ४५० ई० प० तक, के काल के हैं और उनमें से सबसे प्राचीन और सबसे अर्वाचीन में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखायी देता। डा० ओटो फ्रैंक[1] ने उनमें ध्यान देने योग्य कुछ बोली-संबंधी विशेषताएं अवश्य बतायी हैं, पर वे, विशेषकर अशोक के लेखों में दिखायी देने वाली विशेषताओं की तुलना में, इतनी थोड़ी हैं कि हमारे वर्तमान कार्य के लिए व्यर्थ हैं। अब यह प्रश्न पैदा होता है: यह कैसे संभव है कि इतने विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई भाषा सात शताब्दियों तक जनसाधारण के मुख से आगे बढ़ती रहे और उसमें कोई ह्रास या रूपांतर न हो? यह निश्चित रूप से असम्भव है और इस तथ्य से इस निष्कर्ष की अच्छी तरह पुष्टि हो जाती है कि प्राकृतों के जो प्राचीनतम साहित्यिक नमूने--प्राचीनतम नाटकों की हाल और प्राकृतों के पद्य-हमारे मौजूद हैं, वे इस काल की समाप्ति के या उसके कुछ समय बाद के हैं, पर तब भी उनमें बहुत अधिक ध्वनिगत परिवर्तन दिखायी देता है। यह संभव नहीं कि इन लेखों की बोली इतने विस्तृत भूभाग में और सात शताब्दी जैसे सुदीर्घ काल तक जीवित लोक-भाषा रही हो, पर यह बहुत संभव है कि यह भाषा लगभग २०० ई० पू० से ४५० ई० प० तक प्राचीन भारत की हिन्दुस्तानी अर्थात् हिन्दी या राष्ट्रभाषा (अन्तर-जनपदीय भाषा) रही हो। आजकल

१. पालि एण्ड संस्कृत, पृ० ११० और आगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की हिन्दुस्तानी में भी प्रांतीय विशेषताएं स्पष्टतया मौजूद हैं। महाराष्ट्र की हिन्दुस्तानी में निश्चित रूप से मराठी पदावलि और वाक्य-रचना की पुट रहती है और बंगाल की हिंदुस्तानी में बंगला की, और महाराष्ट्र तथा बंगाल की हिन्दुस्तानी उस हिन्दुस्तानी से भिन्न होती है जो, उदाहरण के लिए, बनारस में बोली जाती है। पर तो भी इस कथन पर कोई आपत्ति नहीं कर सकता कि हिंदुस्तानी (अर्थात् हिंदी) आधुनिक भारत की राष्ट्रभाषा (अन्तर-राज्य भाषा) है। यही अवस्था स्मारकीय प्राकृत की थी, जो जहाँ तहाँ कुछ प्रांतीय भेदों के होते हुए भी, जैसा कि सबसे पहले डा० फ्रैंक ने पहचाना था, लगभग २०० ई० पू० से कम से कम १५० ई० प० तक, भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा थी। अब हमें इस प्रश्न पर विचार करना है कि यह कब और क्यों राष्ट्र-भाषा बनी। निश्चित रूप से यह अशोक के समय इस पद पर नहीं पहुंची। मध्यदेश की बोली उत्तरापथ की बोली से उतनी भिन्न थी जितनी ये दोनों बोलियां दक्षिणापथ में प्रचलित बोली से भिन्न थीं। इस प्रकार, हमें अशोक के लेखों में एक के स्थान पर तीन बोलियों का प्रयोग मिलता है। दूसरी ओर, स्मारकीय प्राकृत जिस रूप में शिलालेखों में प्रयुक्त होती थी, उसमें वह एक भाषा थी। इसके अतिरिक्त, यह अशोक के समय में नहीं, बल्कि उसके शीघ्र बाद पैदा हुई। इस भाषा की उन्नति के कारणों की कल्पना ही की जा सकती है। धर्म-प्रचार में अशोक के अक्षय उत्साह के परिणामस्वरूप सारे भारत में

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपूर्व हलचल दिखायी देने लगी होगी। एक प्रांत को दूसरे प्रांत से पृथक् करने वाली सब बाधाएं टूट गयी होंगी और अन्तः-प्रांतीय संचरण शुरू हो गया होगा जो बड़े जोर-शोर से चला होगा, और उसका परिणाम यह हुआ होगा कि अशोक की मृत्यु के शीघ्र बाद सारे भारत के लिए एक सामान्य भाषा की आवश्यकता बड़ी तीव्रता से अनुभव होने लगी होगी। शायद उस प्रांत की, जो उस समय इस हलचल का केन्द्र था और जहाँ महाराष्ट्री नामक प्राकृत की जनक भाषा बोली जाती थी, स्थानीय बोली से इस नयी आवश्यकता की पूर्ति हुई होगी। और जो बोली कभी सिर्फ एक स्थानीय बोली थी, वही अब एक ऐसी सार्वत्रिक भाषा के पद को सुशोभित करने लगी जिसमें एक ओर तो बौद्धों के धर्मग्रंथ लिखे जाते थे ताकि वे सारे भारत में समझे जा सकें, और दूसरी ओर, वह सरकारी या राजकीय भाषा मान ली गयी तथा और धर्मों के लोगों द्वारा भी अपनाली गयी। इस प्रकार बेसनगर के प्रसिद्ध स्तंभ का वैष्णव लेख, सातकर्णि का नानाघाट गुफाओं वाला लेख, जिसमें उसके अनेक वैदिक यज्ञों के नाम गिनाये गये हैं, और गौतमीपुत्र सातकर्णि तथा वसिष्ठीपुत्र पुलुमावि (शातवाहन वंश वाले) द्वारा जारी की गयी राजघोषणाएं सब स्मारकीय प्राकृत में हैं जो लगभग वैसी ही हैं जैसी दक्षिणी बौद्ध ग्रन्थों की पालि।[1]

---

१. पालि और स्मारकीय प्राकृत के बारे में कही गयी ये सब बातें १९१९ में कलकत्ता विश्वविद्यालय में दिये गये मेरे दो व्याख्यानों में से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अब अशोक के काल में प्रचलित कला क वारे में दो शब्द कह दिये जाएं। इस प्रसंग में भी हम सिर्फ उन स्मारकों के विषय में ही कहेंगे जो वास्तव में उसने वनवाये थे और उनके विषय में कुछ नहीं कहेंगे, जिनका उसके नाम के साथ संबंध जोड़ दिया गया है। संस्कृति के शायद इसी एक पहल पर उसके स्मारकों से प्रकाश पड़ता है। हम जानते हैं कि ये स्मारक वे शिलाएं और स्तूप हैं जिन पर उसके धम्म प्रज्ञापन खुदे हुए हैं, और वे गुफाएं हैं जो उसने आजीविकों को अर्पित कर दी थीं। कला और वास्तुविद्या की कृतियों के रूप में

उद्धृत की गयी हैं। उन्हीं व्याख्यानों में मैंने इस विचार का प्रतिपादन किया है कि जिसे गाथा बोली कहा जाता है, वह प्रायः कुशान काल के शिलालेखों की मिश्रित संस्कृत है, और पहली सदी ई० पू. से तीसरी सदी ई० प० तक, जब ब्राह्मणवाद की बढ़ती हुई प्रधानता के कारण अब्राह्मण संप्रदाय भी बड़े पैमाने पर संस्कृत का अध्ययन करते थे, पालि अभी साहित्य की भाषा के रूप में लुप्त नहीं हुई थी, वह शिष्ट लोगों की (यदि साहित्य की नहीं तो कम से कम) वोलचाल की भाषा को निरूपित करती है। इसी कारण हम कुछ वौद्ध ग्रंथ भी इसमें लिखे हुए पाते हैं। यह स्वाभाविक है कि जो बौद्ध संप्रदाय कुशान काल में पैदा हुए, उनके धर्मग्रंथ उस भाषा में हों जिसे शिष्ट लोग बोलते थे। तीसरी शताब्दी ई० प० तक संक्रमणकालिक अवस्था रही, और इसके अंत में संस्कृत सर्वत्र प्रयोग की भाषा हो गयी और साहित्य की भाषा के रूप में पूरी तरह प्रतिष्ठित हो गयी जिसमें वह आगे भी वनी रही। जो ब द्ध संप्रदाय इस काल में पैदा हुए, उनके धर्मग्रंथ पूरी तरह संस्कृत में हैं। इसी कारण धम्म पद हमें तीन रूपों में, अर्थात् न केवल पालि और मिश्रित संस्कृत में, बल्कि शुद्ध संस्कृत में भी लिखा हुआ मिलता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

उनका इतना अधिक वर्णन किया जा चुका है कि यहाँ कुछ भी कहने की आवश्यकता नहीं। हमें तो उन पर इन्जीनियर और कलाकार, दोनों के दृष्टिकोण से विचार करना है। यह ज़रा भी असंभाव्य नहीं, जैसा कि पहले श्री सेनार्ट ने सुझाया था, कि एकिमीनियन राजा डेरिअस की आज्ञप्तियों को देखकर ही मौर्य सम्राट् के मन में यह विचार आया कि शिलाओं पर उत्कीर्ण कराकर धार्मिक प्रज्ञापन जारी किये जाएं। और स्मिथ का यह विचार भी सही प्रतीत होता है कि अशोक ने डेरिअस के नक्शे-रुस्तम वाले शिलालेख को ही अपना आदर्श बनाया, जिसके बारे में यह माना जाता है कि वह 'ऐतिहासिक के बजाय चिन्तनात्मक' है और इसमें डेरिअस का, अपने देशवासियों को, उनकी भविष्य की नीति, आचार और धर्म के बारे में अन्तिम उपदेश है।"[१] पर अशोक ने स्तूपों का भी इस कार्य में उपयोग किया और इस तरह वह एक कदम और आगे बढ़ गया। जहाँ तक शिलाओं को चिकना करने और उत्कीर्ण करने का प्रश्न है, अशोक के शिल्पियों ने संभवतः अपने ईरानी शिल्पी-बंधुओं से उत्कृष्ट कार्य नहीं किया। पर स्तम्भों के विषय में स्थिति सर्वथा भिन्न है। ईरानी शिल्पकृतियों में स्तम्भ का सर्वथा अभाव नहीं था। पर ऐसे स्तम्भों के निर्माण का उद्गम भारत ही में हुआ प्रतीत होता है जो स्वतन्त्र हों और किसी भवन के अंग न हों, और पश्चिमी एशिया या यूरोप में रोमन

१. स्मिथ का 'अशोक', पृ० १४१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्राटों से पहले ये स्तम्भ नहीं मिलते। फिर अशोक के स्तूप ४० से ५० फुट तक लम्बाई वाले, और औसतन २ फुट ७ इंच व्यास के, अनुपम विशालकाय एकपाषाण हैं। लगभग चार फुट वर्ग और ५० फुट लम्बे शिलाखंड को खदान में से निकालना आज बीसवीं सदी में भी, जब हम अपने आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान, प्रशिक्षण, और उपकरणों पर इतना अभिमान करते हैं, बड़ा श्रमसाध्य कार्य है। दो हज़ार वर्ष पूर्व, मौर्य काल के शिल्पियों ने इस भारी कार्य को कैसे किया होगा, इस पर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। पर ऐसे विशालकाय पाषाण-खंडों को सच्चा काट कर साफ करके, उनके सुन्दर गोल स्तूप बनाना, और उसे दर्पण की तरह ऐसा चमका देना कि आजकल के मिस्त्री भी उस पर विस्मय विमुग्ध रह जाते हैं, और भी अधिक परिश्रम-साध्य और नाजुक कार्य था। पर इसे भी उन्होंने बड़ी सफलता से पूरा किया। लेकिन इतनी ही बात नहीं है। अशोक के सारे के सारे स्तम्भ उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले के चुनार नामक स्थान की एक खदान से निकाले हुए बलुवा पत्थर (सैंड-स्टोन) के बने हुए हैं। यह माना जाता है कि उन्हें वहां छेनी से साफ करके विभिन्न स्थानों को भेजा गया। ऐसे महाकाय स्तंभों को बड़ी-बड़ी दूर ले जाने के लिए (और कुछ स्तम्भ पहाड़ी खदान से सैकड़ों मील दूर पहुंचाये गये थे) और उन्हें अलग-अलग तरह के तथा दूर-दूर के स्थानों पर खड़ा करने के लिए जिन यान्त्रिक साधनों और बुद्धिकौशल की आव-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

श्यकता है, आज भी उन्हें जुटाना, यदि असंभव नहीं तो बड़ा कठिन अवश्य है। सोलह शताब्दियों बाद सुलतान फीरोज-शाह अशोक के तीन स्तम्भ दिल्ली लाया था; और हमारा सौभाग्य है कि उसके इंजीनियरों को ये स्तम्भ दिल्ली लाने और उन्हें यहाँ खड़ा करने में जो अत्यधिक कठिनाई हुई होगी, उसका सजीव चित्रण इनमें से एक के बारे में—अर्थात् उसके बारे में जो तोपरा (ज़िला अम्बाला, पंजाब) से लाया गया था—अब भी सुरक्षित है। एक तत्कालीन इतिहास-लेखक शम्स-इ-सीराज लिखता है :—

"थट्टा पर चढ़ाई करके लौटने के बाद से सुलतान फीरोज प्रायः दिल्ली के निकटवर्ती स्थानों में आया-जाया करता था। देश के इस भाग में दो पत्थर के स्तम्भ थे। एक तो सढौरा और खिजराबाद के ज़िले में, पहाड़ियों के नीचे तोपरा गांव में था और दूसरा मीरठ शहर के निकट था।..... जब फीरोजशाह ने पहली बार ये स्तम्भ देखे तब वह इन पर मुग्ध हो गया और उसने उन्हें बड़ी सावधानी से हटाकर विजय-स्मारक के रूप में दिल्ली ले जाने का संकल्प किया।

"खिजराबाद दिल्ली से ९० कोस दूर, पहाड़ियों के निकट है। जब सुलतान उस ज़िले में गया और उसने तोपरा गांव में वह स्तम्भ देखा तब उसने इसे दिल्ली ले जाने का, और वहाँ इसे भावी पीढ़ियों के लिए स्मारक के रूप में स्थापित करने का संकल्प किया। स्तम्भ को नीचे उतारने के उत्तम उपाय सोचने के बाद, पास-पड़ोस के सब लोगों

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

को, जो दोआब में या उससे बाहर रहते थे, तथा घुड़सवार और पैदल सब सैनिकों को वहाँ उपस्थित होने का आदेश दिया गया। उन्हें इस कार्य के लिए उपयोगी सब उपकरण और सेंबल की रुई का एक एक गट्ठर भी साथ लाने की आज्ञा दी गयी। सेंबल की रुई के गट्ठर स्तम्भ के चारों ओर जमा कर दिये गये और जब इसके आधार पर से मिट्टी हटायी गयी तब यह धीरे धीरे उस गद्दे पर आ पड़ा। इसके बाद धीरे-धीरे वह रुई हटा दी गयी और कुछ दिनों बाद स्तम्भ सुरक्षित धरती पर आ गया। जब स्तम्भ की नींव की जाँच की गयी तो मालूम हुआ कि उसके नीचे एक बड़ा वर्गाकृति पत्थर आधार के रूप में था—यह पत्थर भी निकाल लिया गया।

"इसके बाद इस स्तम्भ पर ऊपर से नीचे तक सरकंडे और खालें सी गयीं ताकि इसे कोई हानि न पहुंचे। बयालीस पहियों की एक गाड़ी बनायी गयी और प्रत्येक पहिये के पास एक रस्सा बांधा गया। प्रत्येक रस्से पर हजारों आदमी लगे, और बड़े परिश्रम तथा कठिनाई के बाद स्तम्भ गाड़ी पर चढ़ाया गया। प्रत्येक पहिये पर एक मजबूत रस्सा बांधा गया, और इनमें से प्रत्येक रस्से पर २०० आदमी (४२×२०० ८४००) लगे। इतने हजार आदमियों के युगपत् उद्योग से गाड़ी हिली और यमुना के किनारे लायी गयी। यहाँ सुलतान उसका स्वागत करने आया। बहुत-सी बड़ी-बड़ी नौकाएं एकत्र की गयी थीं, जिनमें से कई ५००० से ७०००

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मन तक अनाज ढो सकती थीं और छोटी से छोटी २००० मन अनाज ढोने वाली थी । यह स्तम्भ बड़ी चतुराई से इन नौकाओं पर चढ़ाया गया और इस तरह फिरोजाबाद ले जाया गया । वहाँ उतार कर इसे असीम परिश्रम और कौशल से खुश्की में ले जाया गया ।

"इस समय इस पुस्तक का लेखक १२ वर्ष का था, और हजरत मीर खाँ का शागिर्द था । जब यह स्तम्भ इस स्थान पर लाया गया तब उसकी स्थापना के लिए जामि-मस्जिद के पास एक स्थान का निर्माण आरम्भ हुआ और उसमें अत्यन्त कुशल वास्तुविद् और कारीगर लगाये गये । यह पत्थर और चूने का बनाया गया और इसमें कई सीढ़ियां थीं । जब एक सीढ़ी बन गयी तब स्तम्भ इसके ऊपर खड़ा किया गया, फिर दूसरी सीढ़ी बनायी गयी और स्तम्भ को फिर उठाया गया और इसी तरह तब तक करते गये जब तक यह अभीष्ट ऊंचाई तक न पहुंच गया । इसके बाद इसे सीधा खड़ा करने के लिए और उपाय किये गये । बड़े मोटे-मोटे रस्से लाये गये और आधार की छहों सीढ़ियों पर चर्खियां (भारी बोझ उठाने का यंत्र) लगायी गयीं । रस्सों के सिरे स्तंभ के ऊपरी भाग पर बांधे गये और दूसरे सिरे चर्खियों पर से, जो मजबूती से बांधी गयी थीं, लाये गये । इसके बाद चर्खियां घुमायी गयीं और स्तम्भ लगभग आधा गज ऊपर उठाया गया । इसके बाद इसे फिर नीचे धसक जाने से रोकने के लिए लकड़ी के लट्ठे और रुई की बोरियां नीचे रखी गयीं । इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार, थोड़ा-थोड़ा करके, स्तम्भ को लम्बकोण पर खड़ा किया गया । तब इसके चारों ओर बड़े बड़े शहतीर लगाकर इसे सहारा दिया गया और एक मचान (या पाड़) बना दिया गया । इस प्रकार यह तीर की तरह बिलकुल सीधा, लंब से ज़रा भी अविचलित, खड़ा कर दिया गया । उपर्युक्त वर्गाकृति पत्थर स्तम्भ के नीचे स्थापित किया गया था ।"[१]

फीरोजशाह ने अशोक के सिर्फ तीन स्तम्भ हटाये थे और वे भी सबसे बड़े स्तम्भ नहीं थे और अपने असली स्थानों से १५० मील से अधिक दूर नहीं ले जाये गये थे । इसके विपरीत, अशोक ने ऐसे तीन नहीं, बल्कि तीस स्तम्भ खड़े कराये थे और जिनमें से बहुत से इससे बहुत अधिक दूर ले जाये गये थे । इन स्मारकों के खदान, सफाई और स्थानान्तरण से, अशोक के मजदूरों की अत्यधिक कार्यकुशलता का और उसके इंजीनियरों की उच्चकोटि की सूझ-बूझ का बड़ा स्पष्ट प्रमाण मिलता है ।

यह ध्यान देने की बात है कि अशोक के समय से पहले मुश्किल से ही कोई भवन पत्थर का था, और कि वास्तु-कार्यों में पत्थर के उपयोग के लिए भारत इस बौद्ध सम्राट् का ऋणी है । अपने प्रज्ञापनों में अशोक ने बार-बार यह कहा है कि जिन दो उद्देश्यों से उसे अपने प्रज्ञापन शिलाओं और स्तम्भों पर उत्कीर्ण कराने की प्रेरणा मिली है उनमें से एक यह है कि वे चिरस्थायी हों । इसी कारण

१. इलियट, हिंस्ट्री आफ इंडिया, ३, ३५० ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक ने अपने राज्य के दक्ष कारीगरों और साधनों का उपयोग करना, और अपनी धम्मलिपियों को पत्थरों पर उत्कीर्ण कराना उचित समझा। अशोक से पहले भारत की वास्तु कला में मुख्यत: लकड़ी का उपयोग हुआ है, जैसा कि बर्मा, चीन और जापान में आज भी होता है। लकड़ी, स्थायिता के अतिरिक्त और सब दृष्टियों से, पत्थर की अपेक्षा अच्छी इमारती वस्तु है। मैगास्थनीज ने लिखा है कि "पाटलिपुत्र के चारों ओर एक लकड़ी की दीवार थी जिसमें तीर छोड़ने के लिए छिद्र बने हुए थे।" जब चन्द्रगुप्त की राजधानी ही लकड़ी के खम्भों से घिरी हुई थी, तब यह अनुमान स्वाभाविक है कि उस समय निर्माण कार्य में प्राय: एकमात्र लकड़ी ही प्रयुक्त होती थी। जातकों में भी[1] लकड़ी के मकानों का उल्लेख बहुत है, ईंटों के मकानों का कहीं-कहीं है,[2] पर पत्थर के मकानों का कहीं भी नहीं है। पर इसका यह अर्थ नहीं कि संगतराश की कला और उद्योग उस समय थे ही नहीं, क्योंकि जातकों में इसके उल्लेखों का अभाव नहीं है।[3] दूसरे, अशोक के ही समय के आसपास की कम से कम एक प्रस्तर मूर्त्ति है जो पर्खम[4] में मिली है, जिसका निर्माण राजशिल्पियों ने नहीं किया। तीसरे राजपूताना

---

१. जातक, II. १८. ७–१३; VI. ३३२. २१।

२. वही, VI. ४२९. १७. ८।

३. देखो, उदा. जातक I. ४७८, ५ और १२।

४. कैटे. आर्कि. म्यू., मथुरा, पृ० ८३ और प्ले. XII.

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के नगरी स्थान में, हमें वासुदेव-संकर्षण को समर्पित एक समाधि के अतिप्राचीन पाषाणमय घेरे के अवशेष मिले हैं, जिनका समय अशोक से कुछ पहले रखना होगा।[१] एक और पाषाण-भवन, जो फर्गुसन [२] के अनुसार निश्चित रूप से अशोक से पहले का है, वह है जो राजगिरि में है और जिसे जरासंध की बैठक कहते हैं। अगर इस सम्राट् से पहले पाषाण कला और उद्योग के विकास का और प्रमाण अपेक्षित हो तो वह पिपरावा स्तूप[३] से निकाली गयी विशालकाय पत्थर की तिजोरी से मिल जाता है। यह ४ फुट ४ इंच × २ फुट सवा आठ इंच × २ फुट सवा दो इंच का सलेटी रंग के बलुआ पत्थर का विशालकाय एकपाषाण है और उच्चकोटि की कारीगरी का नमूना है। प्रतीत होता है कि जब अपनी धम्मलिपियों को स्थायी रूप देने का विचार अशोक के मन में आया तब उसने संगतराश की कला का उपयोग किया जो पहले ही बहुत विकसित और उन्नत दशा में थी।

यह तो हमने अशोक के स्मारकों पर इंजीनियर के दृष्टि-कोण से विचार किया। पर कला की दृष्टि से वे किस कोटि के हैं? इस दृष्टि से भी, ये स्मारक जिन तीन वर्गों में बांटे गये हैं, उनमें से स्तम्भ ही सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। प्रत्येक स्तम्भ में तीन भाग हैं—खंभा (शैफ्ट) और घंटाकृति स्तंभ-

---

१. MASI, नं० ४, पृ० १२८।

२. HIEA. जिल्द १, पृ० ७१।

३. SAMSJA, जिल्द ३, भाग १, पृ० ४२६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

शीर्ष (कैपिटल), शीर्षफलक (एबैकस) और ऊपर चारों ओर की कलाकृति स्तंभशीर्ष, शीर्षफलक और ऊपरी कलाकृति मिलकर स्तम्भ की सबसे महत्त्वपूर्ण और कलात्मक विशेषता हैं। इसका शायद सबसे अच्छा नमूना वह है जो सारनाथ में मिला है और जिसे सारनाथ स्तंभशीर्ष कहते हैं। इसके बारे में सर जान मार्शल ने लिखा है : "इसके विपरीत, सारनाथ स्तम्भशीर्ष, सर्वश्रेष्ठ कृति न होने पर भी, अत्यधिक उन्नत कला का नमूना है जो तीसरी सदी ई० पू० में संसार में विद्यमान थी——वह एक ऐसे व्यक्ति के हाथ की रचना है जिसके पीछे पीढ़ियों का कलात्मक उद्योग और अनुभव था। शीर्षवर्त्ती सिंहों की उद्दाम शक्ति, उनकी फूली हुई शिराओं और अतिपुष्ट मांसपेशियों में, तथा नीचे की सजीव नक्काशी में, कहीं भी अविकसित कला की छाया नहीं है। शिल्पी का उद्देश्य स्वाभाविकता था, और उसने अपनी कृति सीधे प्रकृति से लाकर खड़ी की है और उसका रूप प्राणवान और सच्चे हाथ से अंकित किया है, पर उसने इससे कुछ अधिक किया है : उसने उन चार सिंहों को, जान-बूझकर और एक निश्चित प्रयोजन से, एक निर्माणीय परम्परागत आत्मा से अनुप्राणित कर दिया है, जिससे उनका स्मारक के वास्तु-स्वरूप के साथ सामंजस्य हो जाए, और शीर्षफलक का अश्व बनाने में उसने उस प्ररूप का उपयोग किया है जो पश्चिमी कला में सुविदित और स्वीकृत था। उसकी नक्काशी कला भी इसी तरह प्रौढ़ है। प्राचीन ग्रीक मूर्त्तिकला की तरह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राचीन भारतीय मूर्त्तिकला में भी, यह चलन था, जैसा कि हम अभी देखेंगे, कि नक्काशी या उभार को दो स्थिर तलों-- पाटी के आरम्भिक सम्मुखस्थ तल तथा पृष्ठभूमि के तल-- के बीच संपीडित कर दिया जाता था। सारनाथ स्तम्भशीर्ष की नक्काशियों में इस प्रक्रम का कोई चिह्न नहीं है; प्राणी का प्रत्येक अंग इसकी वास्तविक गहराई के अनुसार किसी सम्मुखस्थ तल का बिना विचार किये बनाया गया है, जिसका यह परिणाम हुआ है कि यह एक ऐसी मूर्ति लगता है जिसे आधा काट लिया गया है और फिर शीर्षफलक की पृष्ठभूमि पर लगा दिया गया है।"[१]

पर पुराविदों की सम्मति में अशोककालीन वास्तुकला विदेशी है। एक विचार यह है कि स्तम्भ के ऊपरी अर्द्धांश की अधिकतर विशेषताएं (विशेषकर घंटाकृति स्तम्भशीर्ष) ईरान के रास्ते एसीरिया से ग्रहण की गयीं, जहाँ से अशोक को वह प्रेरणा मिली जिसके परिणामस्वरूप भारत की वास्तुकला में लकड़ी का स्थान पत्थर ने लिया।"[२] दूसरा विचार, जो सबसे नया है, यह है कि अशोक का स्तम्भ सर्वथा ईरानी-यूनानी वस्तु है। इसकी वास्तुकला-सम्बन्धी विशेषताएं तो इरान की हैं, पर जीवित रूपों का प्रतिरूपण सर्वथा यूनानी है। क्योंकि लगभग इसी काल में यूनानी भावना बैक्ट्रिया में प्रबल थी और "ईरान के स्फूर्तिहीन, अभिव्यंजनाशून्य

१. CHI, I. ६२०-१।

२. HIEA. जिल्द १. पृष्ठ ५८-९,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूपों को प्राणवान बना रही थी।"[१] और इस प्रकार यह ईरानी-यूनानी कला बैक्ट्रिया से भारत आयी पर, यदि सचमुच अशोक का स्तम्भ ईरानी-यूनानी कला का निरूपण करता है और वह बैक्ट्रिया में विकसित हुई थी, तो क्या कारण है कि स्वयं बैक्ट्रिया में, या उसके आस-पास, उदाहरण के लिए, भारत के उत्तर-पश्चिमी भाग में, उसका कोई नमूना नहीं मिलता। यदि ऐसे नमूने नहीं मिलते तो ईरानी-यूनानी प्रभाव निरी निराधार कल्पना है। दूसरे, ऐसे स्वतन्त्र स्तम्भ, जो किसी भवन के अविभाज्य अंग न हों, बनाने का विचार, जैसा कि ऊपर बता चुके हैं, न ईरानी है और न यूनानी, बल्कि भारतीय है। इसी प्रकार यदि बैक्ट्रियन यूनानियों ने अशोक के स्तम्भों के प्रतिरूपण और निर्माण में इतना प्रमुख भाग लिया तो यह कुछ अजीब-सी बात है कि उन्होंने इस कला में कोई ऐसी विशेषताएं निविष्ट नहीं कीं जो प्रारूपिकतया यूनानी हैं, जैसे आयोनिक या कोरिंथियन पद्धति की विशेषताएं। ये विशेषताएं हमें इंडो-पार्थियन और कुशान काल की वास्तुकृतियों में मिलती हैं, पर अशोक की कृतियों में जरा भी नहीं मिलतीं। यह सत्य है कि यूनानी कला की सुविदित विशेषताएं—मधुपायक (हनीसकल—एक आरोही क्षुप, लोनिसेरा, जिसके पीताभ फूलों में से लम्बी जिह्वा वाले कीट आसानी से मकरंद पी लेते हैं), सांकल और मनकों तथा रीलों के आभूषण—अशोक के स्तम्भों में पाये जाते हैं।

१. CHI. I. ६२२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर ये आभूषण प्रारूपिकतया यूनानी नहीं हैं क्योंकि इतिहासवेत्ताओं के अनुसार, यूनानियों ने स्वयं ये एसीरिया से ग्रहण किये थे। और यह कहना अधिक स्वाभाविक है कि स्तम्भ की अन्य विशेषताएं, जैसे घंटाकृति स्तंभशीर्ष, चिकना बे-नाली खंभा और चमकदार पालिश--ये सब बातें एसीरियनों से सीधे ग्रहण की गयीं, ईरानियों के द्वारा नहीं। यह कहना अधिक निरापद है, जैसा कि राजेन्द्रलाल मित्र ने बहुत वर्ष पहले कहा था, कि भारतीयों ने ये बातें एसीरियनों से सीखीं, पर अशोक के काल से बहुत पहले सीखी थीं।[1] यह निष्कर्ष इस तथ्य के साथ भी सर्वथा संगत हो जाता है कि जरासंध की बैठक को, जिसे सब पुराविद प्राङ् मौर्यकाल का मानते हैं, फर्गुसन एसीरियन उद्गम की, और बीर्स निमरूद से नकल की हुई मानता है।[2] पर भारतीयों और एसीरियनों का सम्पर्क कब और कहाँ हुआ ? ये एसीरियन असंदिग्ध रूप से असुर हैं, जिनका वैदिक साहित्य में उल्लेख है, जो भारत ही में रहते थे, और जिनके साथ वेदकालीन आर्यों के निरन्तर युद्ध होते रहते थे। प्रतीत होता है कि आर्यों के आगमन से पहले वे भारत के अधिकांश पर काबिज़ थे। मालूम होता है कि असुर महान निर्माता थे। क्योंकि ऋग्वेद में भी उनके 'सात दीवारों वाले' या 'लोहे की दीवारों वाले नगरों' की या उनके 'पत्थर के सौ नगरों की' चर्चा

१. इंडो-आर्यन्स, जिल्द १, पृ० १४।
२. केव-टेंपल्स आफ इंडिया, पृ० ३४-५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है। यह उस काल की दृढ़ प्राकारों का उल्लेख प्रतीत होता है, जिनमें से कुछ पत्थर की बनी हुई होंगी। फिर, ऋग्वेद में राजप्रासादों को 'सहस्र-द्वार' बताया गया है और उनमें 'हजार स्तम्भों वाले सभा भवन' हैं--यह भवन ठीक वैसा है जैसा, महाभारत के वर्णन के अनुसार, मय असुर ने युधिष्ठिर के लिए बनाया था। ये बहुत संभाव्यत: लकड़ी के बने हुए थे। असुर वास्तुकला की खास विशेषता भवनों की महाकाय शैली थी। वे बहुत बड़े पैमाने पर भवन बनाते थे। अशोक के समय भारतीय सभ्यता में जितना आर्य अंश था उतना ही एसीरियन अंश था; और इसलिए, जहाँ तक वास्तुकला का सम्बन्ध है, भारत एसीरियनों या असुरों का बड़ा ऋणी था, पर निश्चित रूप से उन्हीं असुरों का, जो भारत में बस गये थे और जिन्होंने इसे अपना घर बना लिया था। इस प्रकार अशोककालीन वास्तुकला प्रधानत: एसीरियन होने पर भी भारतीय थी।

परिशिष्ट

खेद की बात है कि किसी विद्वान ने अब तक असुर समस्या का ठीक-ठीक अध्ययन नहीं किया। नि:संदेह कुछ विद्वानों ने[1] हाल में यह सुझाया है कि वैदिक साहित्य में एक जाति के रूप में निर्दिष्ट असुर बहुत संभाव्यत: एसीरियन थे और ये निर्देश उस काल का स्मरण कराते हैं जब आर्य

१. JRAS, १९१६, पृष्ठ ३६३–४; JBBRAS, जिल्द २५, पृ० ७६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोगों का, मेसोपोटामिया या मध्य एशिया में, पर निश्चित रूप से भारत से बाहर, किसी जगह एसीरियनों से संपर्क था। पर प्रतीत होता है कि यह बात भुला दी गयी है कि बहुत समय पहले एच० एच० विल्सन और के० एम० बनर्जी ने भी यह निष्कर्ष निकाला था। विल्सन ने कहा था कि असुर "भारत की वैदिक-विरोधी जाति प्रतीत होते हैं जिनके नगर इन्द्र ने नष्ट कर दिये थे।"[1] बनर्जी ने एक कदम और आगे बढ़कर यह कहा कि ये असुर ही एसीरियन हैं। उसने यह भी कहा कि जिन तीन विभिन्न अर्थों में असुर शब्द का प्रयोग उत्कीर्ण लेखों में हुआ है, उन्हीं अर्थों में असुर शब्द वैदिक मंत्रों में प्रयुक्त हुआ है।[2] पर उसका विचार था कि आर्य लोग एसीरियनों को मध्य एशिया में मिले, न कि भारत में, जो विल्सन की मान्यता थी। पर विल्सन का विचार अधिक सही प्रतीत होता है। प्रो० वी० के० राजवाडे ने हाल ही में असुर शब्द पर एक विस्तृत निबन्ध लिखा है जिसमें वह ठीक ही कहते हैं: "अधिकतर स्थानों पर असुर शब्द अच्छे अर्थ में प्रयुक्त हुआ है—बुरे अर्थ में यह सिर्फ लगभग १५ बार, अर्थात् कुल (१०५) का सप्तमांश बार, आया है। इससे प्रकट होता है कि ऋग्वेदीय धर्म और जरथुष्ट्री धर्म में जो मतभेद पैदा हुए वे ऋग्वेदीय काल के अंतिम भाग में

---

१. विल्सन का ऋग्वेद, जिल्द ३, पृ० १४।

२. एरियन विटनेस, पृष्ठ ४९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हुए। ऋग्वेदोत्तर काल में शत्रुता अधिकाधिक उग्र होती गई।"[1] यह अन्तिम वाक्य बड़ा महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि आर्यों के असुरों के साथ उग्र युद्ध भारत में हुए, क्योंकि ऋग्वेदोत्तरकाल में आर्य लोग निश्चित रूप से इस देश में बस गये थे। फिर शतपथ ब्राह्मण में एक संदर्भ है जिसमें बताया गया है कि असुर जाति प्राच्य है, जो हम जानते हैं कि मगध का दूसरा नाम था।[2] इसके साथ बिलकुल मेल खाता हुआ तथ्य यह है कि असुर बिहार में छोटा नागपुर प्रदेश में अब भी एक अनार्य आदिम जाति के रूप में पाये जाते हैं। यह बात इस तथ्य के भी अनुरूप है कि बिहार में राजगीर में, जरासंध की बैठक है, जो, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, फर्गुसन के अनुसार प्राङ्-मौर्यकाल की तथा एसीरिया के बीर्स निमरूद की अनुकृति है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भारत में एक बेबिलोनियन मुहर (सील) क्यों मिली।[3] यह मुहर इस समय नागपुर में संग्रहालय में रखी है, और २००० ई० पू० की है। इसका ठीक प्राप्ति-स्थान पता नहीं, पर १९१८ में संग्रहाध्यक्ष (क्यूरेटर) ने मुझे सूचित किया था कि यह मध्य प्रदेश में कहीं मिली थी।

शतपथ ब्राह्मण के समय प्राच्य एक असुर आदिम-जाति को ही सूचित करते थे। भारत के अन्य भागों में और

१. PTFOC, पृष्ठ १८–९।

२. १३. ८.१.५. SBE, जिल्द ४४, पृष्ठ ४२३–४।

३. JASB, १९१४, पृष्ठ ४६२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी असुर बस्तियां रही होंगी । वैदिक साहित्य तथा आर्य काव्यों के समीक्षात्मक और विस्तृत अध्ययन से हम उनके प्रव्रजनों और राज्यों का इतिहास तैयार कर सकते हैं। संभाव्यत: ऐसी एक बस्ती उत्तर प्रदेश के पश्चिमी भाग में थी, जिसमें खांडव-वन भी था जिसके दावानल से अर्जुन ने प्रसिद्ध मयासुर की रक्षा की थी। असुर लोग, पाणिनि के समय तक भी, एक (लड़ाका) जाति के रूप में प्रसिद्ध थे, और उसने उनका उल्लेख परशुओं (प्राचीन ईरानियों) के तुरन्त बाद किया है जो उसका परशुगण बनाते हैं । वे एक म्लेच्छ भाषा बोलते थे ।[१]

इस प्रकार यदि आर्यों के आगमन से पहल ही एसीरियन भारत में मौजूद थे, तो स्वभावत: यह पूछा जा सकता है : भारत में हमें एसीरियन सभ्यता के कौनसे चिह्न मिलते हैं ? पहला और सबसे प्रमुख एसीरियन प्रभाव भारत की प्राचीन वास्तुकला पर पड़ा मालूम होता है । और श्री बा० ग० तिलक ने यह भी प्रदर्शित किया है कि अथर्ववेद में वर्णित कुछ देव या दानव स्पष्टत: कैल्डियन थे ।[२] क्योंकि, अथर्ववेद का काल ऋग्वेद की अपेक्षा अर्वाचीन हैं, इसलिए कैल्डियन देवगण का यह समावेश भारत ही में हुआ होगा । वस्तुत: मौर्य सत्ता के उदय से पहले की भारतीय सभ्यता मुख्यत: आर्य और असुर अवयवों से मिलकर बनी हुई थी ।

---

१. JBBRAS, २५, ७८; ZDMG, ६८, ७१९ ।

२. भंडारकर कामेमो. वौल्युम, पृष्ठ २९ ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ७

इतिहास में अशोक का स्थान

इस समय तक हम अशोक के बहुमुखी अविश्रान्त क्रिया-कलाप की यथेष्ट स्पष्ट धारणा बना चुके हैं। अब हम, इतिहास में उसका वास्तविक स्थान निर्धारित करने की दृष्टि से, उसके कार्य का सही तखमीना लगाने की कोशिश करेंगे। पर तब तक उसकी सफलताओं का कोई विवेचनात्मक रूप हमारे सामने नहीं आ सकता जब तक हम यह निश्चय करने का यत्न न करें कि उसके सामने क्या आदर्श था और कौन-कौन से भाव उसे प्रेरणा देते थे। क्या अशोक ने कहीं यह प्रकट किया है कि उसके क्रिया-कलाप का भीतरी प्रेरणा-स्रोत क्या था? बौद्ध सम्राट् ने अपने मन के भीतरी भागों की झांकी इतनी अधिक बार दी है कि यह मानना कठिन है कि सिर्फ इस प्रश्न पर, जो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है, उसने हमें अपने अन्तर्भाव बताना उचित नहीं समझा। शिला प्रज्ञापन ६ में वह कहता है: "सर्वलोकहित से बढ़कर और कोई अच्छा काम नहीं है। जो कुछ पराक्रम मैं करता हूं वह इसीलिए है कि प्राणिमात्र का मेरे ऊपर जो ऋण है उससे मैं मुक्त होऊँ और उनका इस लोक तथा परलोक में हित बढ़े।" इस प्रकार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक का आदर्श मनुष्य का बंधुत्व, यानी मानव-बंधुत्व न होकर प्राणिमात्र का बंधुत्व है। वह अपने आपको इस सारे चर जगत के साथ संबद्ध अनुभव करता है और उसका परम कर्त्तव्य उन्हें न केवल भौतिक सुख, बल्कि आध्यात्मिक सुख भी, प्राप्त कराना है। फिर, जहाँ तक मनुष्य का सम्बन्ध है, वह यह समझता था कि मेरा कर्त्तव्य सारी मानव-जाति के प्रति है, न कि सिर्फ अपने प्रजाजनों के प्रति। इस प्रश्न पर उसका वक्तव्य सर्वथा स्पष्ट है। दोनों पृथक् कलिंग प्रज्ञापनों में वह हमें बताता है कि जैसे मैं अपनी संतान के लिए, न केवल इस लोक का बल्कि परलोक का मंगल और सुख भी, चाहता हूं, वैसे मैं सारी मानव-जाति के लिए चाहता हूं, और इनमें से दूसरे प्रज्ञापन में वह और एक कदम बढ़कर अपने अफसरों को आदेश देता है कि वे पड़ोसी स्वतन्त्र राज्यों की प्रजाओं को यह समझाने का भरसक यत्न करें कि वे उस पर पूरा भरोसा करें और उन्हें यह विश्वास दिलाएं कि "राजा (अशोक) हमारे लिए पितृ-तुल्य है, वह हमसे वैसे ही प्रेम करता है जैसे अपने-आपसे, हम राजा के लिए उसके संतान के तुल्य हैं।" इससे बिल्कुल स्पष्ट है कि अशोक का पिता-पुत्र भाव सिर्फ अपने प्रजाजनों तक सीमित नहीं है बल्कि सीमान्तवर्ती राज्यों के प्रजाजनों के लिए भी है, और सारी मानव जाति इसके अन्तर्गत आ जाती है। निःसंदेह कोई भी राजा आत्मिक मामलों में अपने स्वतन्त्र पड़ोसियों के राज्यों में, अशोक की तरह, विजय प्राप्त कर सकता था,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और इस प्रकार इन राज्यों के प्रजाजनों से ऐसा व्यवहार किया जा सकता था जैसे ये उसके अपने प्रजा-जन हों।

यहाँ तक हमने उस आदर्श का उल्लेख किया जो अशोक के अपने ही कथन के अनुसार, उसका पथ-प्रदर्शक है और मार्ग-निर्माता। उसने अपनी लक्ष्य-सिद्धि के लिए जिस तरह के उपाय अपनाये, उनसे यह स्पष्ट हो जाएगा कि जो कुछ हमने कहा है, वह सत्य है, और अतिरंजना नहीं है। सर्व-प्रथम, मनुष्यों और प्राणियों, दोनों के भौतिक सुख के विषय में, हम देख चुके हैं कि उसने कौन-कौन से परोपकार के कार्य आरम्भ किये।[1] इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य औषधीय मूलों और वनस्पतियों का पहुंचाना और उगाना था। यह तथा अन्य धर्मार्थ कार्य, जैसे कुएं खुदवाना और छायादार वृक्षों का लगवाना, उसने न केवल अपने राज्य में, बल्कि भारत के भीतर और बाहर राज्य करने वाले अपने समकालीन राजाओं के राज्यों में भी किये। हम यह भी जानते हैं कि उसने पशुओं के प्रति विवेकहीन क्रूरता को रोकने और उनका वध[2] बंद करने के लिए क्या कदम उठाये। पर उसने पशुओं पर ही दया दृष्टि नहीं रखी। धम्म के उपादान-भूत दो नैतिक आचार, जैसे कि हम देख चुके हैं, प्राणानां अनारम्भो, जीव-नाश न करना, और अविहिंसा भूतानाम्, जीवित प्राणियों को हानि न पहुँचाना, हैं। और इनके सर्वथा अनुसार ही,

---

१. ऊपर पृ० १४६।

२. ऊपर, पृ० १५१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वह शिला प्रज्ञापन २ में स्वीकार करता है कि मैंने "दोपायों और चौपायों को, पक्षियों और जलचर प्राणियों को, अनेक तरह से लाभ पहुंचाया है, यहाँ तक कि जीवन भी दान किया है।" इस प्रकार अशोक के समक्ष एक बड़ा विस्तृत कार्यक्रम था जो कि निरे पशुओं के लिए न था, सारे प्राणि-जगत के लिए था। यह तो उस भौतिक या लौकिक सुख की चर्चा हुई जो उसने मनुष्यों तथा अन्य सब प्राणियों को प्राप्त कराने में सफलता हासिल की। पर हम जानते हैं कि उसने आत्मिक सुख के संवर्धन के लिए भी, अर्थात् न केवल अपने राज्य के अपितु बाहर के भी मानव-मात्र में धम्म उत्पन्न और प्रचारित करने के लिए भी भरसक यत्न किया। हम देख चुके हैं कि अशोक इस दिशा में बड़ी सफलता प्राप्त करने का दावा करता है, और कि भारत से बाहर के देशों के बारे में भी उसका यह दावा गाल बजानामात्र न था।[1] कारण कि हम जानते हैं कि उसके धर्मप्रचार कार्य कितने सफल हुए। बुद्ध की शिक्षा सारे भारत और श्रीलंका में फैल गयी। यह २०० ई० पू० से पहले चीन में भी फैल गयी। और यद्यपि पश्चिमी एशिया में बौद्ध धर्म स्वीकार किये जाने के कोई संकेत नहीं मिले पर इतनी बात असंदिग्ध है कि इसका ईसाइयत पर बड़ा प्रभाव पड़ा, और यह तो मानना ही होगा कि इसने अपना एक आधारभूत सिद्धान्त--मानव-बंधुत्व--बुद्ध की उन शिक्षाओं में से ग्रहण किया है जो इस बौद्ध

१. ऊपर, पृ० १५८।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सम्राट् ने प्रचारित की थीं।

इस प्रकार हम देख चुके हैं कि अशोक के मन में हर समय कौन-सा आदर्श घूम रहा था, और प्राणिमात्र के लिए किये जाने वाले उसके अनवरत क्रियाकलाप की प्रेरक-शक्ति कौनसी थी। अब हम यह निर्धारित करने की स्थिति में हो सकते हैं कि इतिहास में उसका क्या स्थान है। प्राचीन काल के अनेक साथी सम्राटों से उसकी तुलना की गयी है। पर इस तुलना से उसे जरा भी क्षति नहीं पहुंचती। इस प्रकार उसकी तुलना रोमन सम्राट् कौंस्टेंटाइन महान से, दो विभिन्न दृष्टिकोणों से, की गयी है। प्रो० राइस-डेविड्स की मान्यता है कि अशोक कौंस्टेंटाइन के समान था क्योंकि जैसे कौंस्टेंटाइन का धार्मिक दान-पुण्य ईसाई चर्च के आध्यात्मिक ह्रास का कारण बना, वैसे ही अशोक का धर्म-परिवर्तन और संघ को दिया हुआ उदार दान "बौद्ध धर्म की अवनति की दिशा में और इसे भारत से निकाल दिये जाने की दिशा में पहला कदम थे।"[1] पहले तो, यह कहना ठीक नहीं कि बौद्ध धर्म भारत से निकाल दिया गया। कारण कि यह अब भी बंगाल के कुछ भागों में मौजूद है। पर इसमें कुछ संदेह नहीं कि आजकल यह जीर्ण अवस्था में है, और इसकी यह दुर्गति बारहवीं शताब्दी के शीघ्र बाद, अर्थात् अशोक के लगभग डेढ़ हजार साल बाद हुई। इसलिए यह बात हमारी समझ में नहीं आती कि उसके इतने दीर्घकाल बाद

१. बुद्धिज़्म, पृ० २२२।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

होने वाले बौद्ध धर्म के लोप की जिम्मेदारी उस पर कैसे डाली जा सकती है। फिर, इस बात का क्या प्रमाण है कि उसने बौद्ध संघ को अंधाधुंध दान दिया? प्रो० राइस-डेविड्स चाहते हैं कि हम बौद्ध विवरणों पर पूर्ण भरोसा करें पर उनका अधिकतर भाग, कम से कम वह जो अशोक के सम्बन्ध में है, किसी भी तरह विश्वसनीय नहीं। और, यदि ज़रा देर को यह भी मान लें कि सिंहली तथा अन्य भिक्षुओं ने परम्परा की सही रूप में रक्षा की है, तो इस बात का क्या प्रमाण है कि अशोक के तत्काल बाद की शताब्दियों में बौद्ध भिक्षुओं का आध्यात्मिक ह्रास हो गया था। गुप्त काल के आरम्भ, अर्थात् लगभग ३५० ई० प०, के बाद तक बौद्ध धर्म की अवनति के कोई चिह्न नहीं मिलते। कुछ विद्वान अशोक और कौंस्टेंटाइन की तुलना इस कारण करते हैं कि दोनों ही राजा होते हुए भी अपने-अपने धर्मों के संरक्षक थे और उन्होंने उनके प्रचार में बहुत अधिक सहायता की।[1] पर वे यह भूल जाते हैं कि 'जिन परिस्थितियों में अशोक ने अपने धर्म के प्रचार का यत्न किया, वे उन परिस्थितियों से सर्वथा भिन्न थीं जिनमें कौंस्टेंटाइन ने कार्य किया'।[2] "कौंस्टेंटाइन ने जीतते हुए पक्ष का पोषण किया" जबकि अशोक ने ऐसे धर्म का नेतृत्व किया जिसकी बहुत कम प्रगति हुई थी।

१. हार्डी, अशोक: आइन–कैरेक्टर–बिल्ड; आदि पृष्ठ ३०; राइस डेविड्स, बुद्धिस्ट इंडिया, पृष्ठ २९७–८; रैप्सन, एन्शेंट इंडिया, पृष्ठ १०४।

२. टाइम्स लिटरेरी सप्लीमेंट, अगस्त ७, १९१४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

कौंस्टेंटाइन "स्वार्थबुद्धि, चालाक, अंधविश्वासी, प्रायः निष्ठुर, निन्दापरायण व्यक्ति था--जिसकी सफल दूरदर्शिता के एक महान उदाहरण से वह 'महान' कहलाने का पात्र है।"[1] इसके विपरीत, अशोक की आत्मा विचारवान तथा सबके लिए करुणापूर्ण थी और वह उच्च आदर्शों, सतत प्रयत्नों, एकांतनिष्ठा और आश्चर्यजनक उपायसंपन्नता वाला व्यक्ति था। "कौंस्टेंटाइन ने राजनैतिक लक्ष्य से सहिष्णुता का सहारा लिया।" अशोक की सहिष्णुता सच्चे हृदय की प्रेरणा थी। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में कौंस्टेंटाइन प्रतिक्रियावादी होकर पेगनवाद की ओर झुक गया था और यहां तक हुआ कि उसका धर्म एक 'अजीब खिचड़ी' हो गया। अशोक में कहीं ऐसी गिरावट नहीं आयी और वह आदि से अन्त तक इसी धम्म पर दृढ़ रहा। V. Sim

एक दूसरा शासक, जिसका नाम अशोक के साथ लिया जाता है, एक और रोमन सम्राट् मार्कस औरेलियस एंटोनियस[2] है, जिसका राज्यकाल १२१ से १८० ई० प० रहा। जहां तक निजी जीवन के भद्र आदर्शों का सम्बन्ध है, इसमें कोई सन्देह नहीं कि वह अशोक का समकक्ष था और मानसिक संस्कृति की दृष्टि से उससे बढ़कर भी था। पर आदर्श की उदात्तता और अविश्रान्त तथा सम्यग्योजित उत्साह की दृष्टि से अशोक रोमन सम्राट् से कहीं ऊपर था। मार्कस

१. ERE., IV, ७७।

२. मैकफेल, अशोक. पृ० ८०; CHI. I. ५०९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

औरेलियस के कुछ प्रशंसकों ने अवश्य यह कहा है कि उसका जीवन मानवमात्र के प्रेम और धर्म से संचालित था। पर वे यह भूल गये हैं कि वह "रोमनों की व्यावहारिक भद्रता और अभिमान तथा राजनैतिक लक्ष्य की दृढ़ता से ओतप्रोत था," और कि वह ईसाइयों पर व्यवस्थित रीति से अत्याचार करता था, और वह सिर्फ इस कारण कि उसकी राय में ईसाइयत के फैलने पर रोमन समृद्धि कायम नहीं रह सकती थी।"[1] बौद्ध सम्राट् का जीवन और शासन ऐसे संकीर्ण और निकृष्ट आदर्श से दूषित या मानव जाति के किसी भाग के प्रति ऐसी अमानवीय शत्रुता से कलंकित न थे। इसके विपरीत, उसने न केवल सारी मनुष्य जाति के बल्कि सारे प्राणिजगत के भी कल्याण के लिए परिश्रम और व्यवस्था से उद्योग किया और उसका आत्म-दमन का जीवन किसी मूलवंशीय, राष्ट्रीय या पारिवारिक अभिमान या पक्षपात से दूषित न था।

एक लेखक ने अशोक की तुलना राजा एल्फ्रेड, शार्लमेन, उमर खलीफा, आदि अन्य कई राजाओं से की है।[2] ऐसे राजा अनेक हुए हैं जो अशोक के समान महान योद्धा या महान प्रशासक हुए हैं। पर अपने जिस कार्य के कारण अशोक विश्वव्यापी और शाश्वत यश का अधिकारी है वह है उसके द्वारा किया हुआ अपनी प्रजा का भौतिक और

१. EB., XVII., ६९५.

१. मैकफेल, अशोक. पृ० ८०

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

आत्मिक कल्याण। और ऐसे किसी राजा की अशोक से तुलना नहीं हो सकती जिसमें उसकी यह विशेषता काफी अधिक परिमाण में न रही हो। इसलिए, अशोक के नाम के साथ-साथ जिस राजा का नामोल्लेख किया जा सकता है वह एकमात्र मुगल सम्राट् अकबर था।[1] इसमें कोई संदेह नहीं कि अकबर ने अपने प्रजाजनों के सुख और कल्याण के लिए बड़ा यत्न किया पर अशोक से उसका सादृश्य विशेष रूप से इस बात में था कि उसने भी धार्मिक सहिष्णुता प्रदान की और प्रत्येक धर्म में सत्य का निश्चय करने के लिए सहानुभूति से यत्न करके प्रजा के सामने एक उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत किया। हम जानते हैं कि सूफियों, सुन्नियों, शियाओं, ब्राह्मणों, जैनों (जतियों), बौद्धों, ईसाइयों, यहूदियों, सेबियनों, जरथुष्ट्रियों और अन्य मतावलम्बियों के शास्त्रार्थ सुनने और उनकी अध्यक्षता करने में उसे कितना आनन्द आता था। हम यह भी जानते हैं कि वह ये वाद-विवाद क्यों कराता था। वह प्रायः कहा करता था कि "सच्चा मनुष्य वही है जो जिज्ञासा के मार्ग पर न्याय का अनुसरण करता है, और प्रत्येक संप्रदाय से वे बातें ग्रहण कर लेता है जो तर्कानुमोदित हों। संभव है कि इस प्रकार वह ताला, जिसकी कुंजी खो गयी है, खुल जाए।"[2] इस श्रेष्ठ संकलन का परिणाम था एक नये धर्म "दीने इलाही" का आरम्भ, जो एकेश्वरवाद था

१. ERE., II, १२७।

२. वहीं, I, २६९ और आगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

"और इसमें प्रकाश और अग्नि की, विशेषकर सूर्य के रूप में पूजा की जाती थी, जो पारसियों के धर्म से भिन्न नहीं है।" अशोक के विषय में, हम देख चुके हैं कि अपनी धर्म-जिज्ञासा के परिणामस्वरूप उसने जैन धर्म से अंशतः मिश्रित बौद्ध धर्म का अवलम्बन कर लिया था। पर यह स्मरण रखना चाहिए कि अकबर "सबसे पहले एक राजनैतिक और दुनियावी व्यक्ति था, और धार्मिक सत्य के लिए अपनी सम्राटता को खतरे में डालने को तैयार न था।" इस प्रकार जब उसने देखा कि धर्म में उसके नयी बातें प्रचलित करने से मुसलमानों में विद्रोह पैदा हो रहा है, तब उसने सब धार्मिक वाद-विवाद बंद कर दिये। वह, उदाहरण के लिए, उस समय ईसाई मिश-नरियों की बात सुनने को तैयार न हुआ जिस समय उसके नये धर्म के कारण बंगाल में विद्रोह पैदा हो रहा था। फिर, वह सबके प्रति सहिष्णु भी नहीं था। जब इलाही नामक संप्रदाय पैदा हुआ तब अकबर ने उसके अनुयायियों को पकड़वा कर सिंध और अफगानिस्तान भेज दिया और वहाँ उनके बदले घोड़े खरीदे। अकबर की धर्म-जिज्ञासा मुख्यतः विद्यात्मक ढंग की थी, और जब उसने "दीने-इलाही" की उद्घोषणा की तब इसके पीछे आत्म-गुरुत्व की भावना भी थी। उसमें उस धर्म के लिए जरा भी जोश या उत्साह नहीं था, और परिणामतः, उसके प्रतापी सम्राट् होने के बावजूद दीने-इलाही राजदरबार से बाहर नहीं फैला और अपने संस्थापक के साथ ही समाप्त हो गया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यूरोपियन इतिहास-कारों के मूल्यांकन के अनुसार, सिकन्दर महान, सीजर और नैपोलियन संसार के महानतम सम्राट हैं। वे संभाव्यतः अशोक से भी बड़े योद्धा और प्रशासक थे। पर क्या बड़े योद्धा और बड़े प्रशासक होने का यह अर्थ है कि वे बड़े आदमी भी थे? श्री एच० जी० वेल्स को, जिन्होंने "दि आउटलाइन आफ हिस्ट्री" पुस्तक लिखी है, हाल में ही इस प्रश्न पर विचार करना पड़ा। क्योंकि यह इतिहास जीवन और मानव-जाति का इतिहास है, इसलिए इसमें आए हुए सब पात्रों पर एक भिन्न दृष्टि से विचार करना था और एक भिन्न मानदंड से, अर्थात् इस मानदंड से कि क्या उन्होंने संसार को अधिक सुखी और अधिक अच्छा बनाया, उनका मूल्यांकन करना था। इसलिए सिकंदर, सीजर और नैपोलियन के विषय में श्री वेल्स ने बड़ा उचित प्रश्न किया है: "इन तीन व्यक्तियों की, जिन्होंने हमारे इतिहास के इतने अधिक पृष्ठ घेर रखे हैं, मानवजाति को क्या स्थायी देन थी?"[1] सिकंदर ने क्या सृजन किया? क्या उसने पूर्व को यूनानी रंग में रंगा। कुछ समय एड्रियाटिक से सिंध नदी तक का सारा प्रदेश उसके शासन में था। क्या उसने इस अखंडता को स्थायी करने के लिए कोई उपाय सोचा? हमें कोई ऐसी निश्चित चीज मालूम नहीं। "ज्यों-ज्यों उसकी शक्ति बढ़ी," श्री वेल्स लिखते हैं, "त्यों-त्यों उसकी मदांधता और प्रचण्डता भी बढ़ती गयी। वह खूब शराब पीता था और

१. स्ट्रैंड मैगजीन, सितम्बर १९२२, पृष्ठ २१६ और आगे।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

निर्दयतापूर्वक हत्या करता था। बेबिलोन में एक लम्बी पान-गोष्ठी के बाद उसे एकाएक बुखार आ गया, और तैंतीस वर्ष की आयु में वह मर गया। लगभग तुरन्त ही उसका साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े होने लगा। उसकी यादगार के रूप में सिर्फ एक प्रथा रह गयी। पहले अधिकतर लोग दाढ़ी रखते थे। पर सिकन्दर में इतना अधिक अहंकार था कि उसे अपने चेहरे का ढका जाना बर्दाश्त नहीं था। उसने हजामत करायी और इस तरह ग्रीस और इटली में एक नया फैशन चला दिया जो कई शताब्दी तक जिन्दा रहा। फैशन तो शायद यह अच्छा था, पर यह जाति के लिए उसकी कोई महत्त्वपूर्ण देन नहीं थी।"

जो बात सिकन्दर के बारे में है वही सीजर के बारे में है। इतिहासज्ञ कहते हैं कि उसमें कुछ अन्तर्दृष्टि विद्यमान थी, और वे उसकी चमत्कारिक विश्वनीतियों का भी उल्लेख करते हैं। पर वास्तव में वह कैसा था? निरा लम्पट और उच्छृंखल आदमी। जिस समय वह अपनी शक्ति के उच्चतम शिखर पर था और संसार का बहुत भला कर सकता था बशर्ते कि उसमें सचमुच वह उदात्त दृष्टि होती जो उसमें बतायी जाती है, उस समय हम उसे मिस्र में लगभग एक वर्ष तक साइरन क्लियोपैट्रा के साथ मौज करता और मजे उड़ाता पाते हैं, यद्यपि तब वह चव्वन वर्ष का था। इससे वह एक हलके दर्जे का बूढ़ा विषयासक्त मनुष्य दिखायी देता है, मनुष्यों का श्रेष्ठ शासक नहीं। नैपोलियन के विषय में श्री वेल्स ने यह लिखा है, "पुरानी व्यवस्था नष्ट हो चुकी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

थी या हो रही थी; अपरिचित नये वल, रूप और दिशा की खोज में संसार में घूम रहे थे। लाखों-करोड़ों विस्मित मानसों में एक विश्व गणराज्य और चिरस्थायी विश्वशान्ति की आशा अंकुरित हो रही थी। यदि इस मनुष्य में ज़रा भी दृष्टि की गम्भीरता, और सृजनात्मक कल्पना की शक्ति होती, यदि उसमें ज़रा भी निःस्वार्थ आकांक्षा होती, तो वह मानवजाति के लिए ऐसा काम कर गया होता जो उसे इतिहास का सूर्य बना देता ………………। इस अवसर में और कोई कमी नहीं थी—सिर्फ एक भद्र कल्पना की कमी थी। और ऐसी कल्पना के अभाव में नैपोलियन, अवसर के इस महान पर्वत के शिखर पर उस तरह गर्दन अकड़ा कर चलने के सिवा और क्या कर सकता था जिस तरह मुर्गी का बच्चा घूरे के ढेर पर चलता है।"[1] नैपोलियन ने अपने देश को चाहे जितना लाभ पहुंचाया हो पर जहाँ तक मानव जाति के प्रति उसके आभारों का सम्बन्ध है, वे प्रायः शून्य हैं। और श्री वेल्स ने उसका जो मूल्यांकन किया है उसे गलत नहीं समझा जा सकता।

अशोक के बारे में हम जानते हैं कि उसे कैसी कल्पना-दृष्टि प्राप्त हुई थी और वह कितनी गहरी थी। यह न केवल मानव-जाति में, बल्कि प्राणिमात्र में बंधुता की दृष्टि थी। यही बात दूसरे शब्दों में कहें तो, वह सारे संसार के भौतिक सुख और नैतिक उत्थान की वृद्धि करने के स्वप्न से अभिभूत

१. दि आउटलाइन आफ हिस्ट्री, पृ० ४९०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो गया था। और उसने अपने साधनों को, एक बिलकुल नयी और अनुपम रीति से, अपने साध्य के अनुकूल बनाकर अपनी सृजनात्मक कल्पना प्रदर्शित की। मौर्य साम्राज्य उस समय अपने यश के उच्च शिखर पर था जिस समय अशोक ने, अपनी दुर्लभ कल्पना से, इस अवसर का लाभ उठाया, और अपनी सारी शक्तियां तथा राज्य के सारे साधन अपने भद्र लक्ष्य की सिद्धि के लिए अर्पित कर दिये। इसलिए श्री वेल्स का, इस बौद्ध सम्राट् के लिए यह कहना उचित ही है कि "जिन लाखों राजाओं के नामों से इतिहास के पन्ने काले हो रहे हैं, उन राजराजेश्वरों और महाराजाधिराजों के बीच में अशोक का नाम एक अकेले नक्षत्र के समान चमकता है। वोल्गा से जापान तक आज भी उसके नाम का सम्मान किया जाता है। चीन, तिब्बत, और भारत भी, यद्यपि उसने उसके सिद्धान्त त्याग दिये हैं, उसकी महानता की परम्परा को बनाये हुए हैं। जितने लोगों ने कौंस्टेंटाइन या शार्लमेन का कभी नाम सुना है उनसे भी अधिक लोग आज आदरपूर्वक उसका स्मरण करते हैं।"[१] पर अगर किसी राजा से अशोक की तुलना करनी ही हो तो उसकी एक से नहीं, एक साथ तीन राजाओं से तुलना करनी चाहिए। और रेवरेंड डा० कोपलस्टन[२] के स्वर में स्वर मिलाकर हमें यह कहना चाहिए कि "वह बौद्ध धर्म का कौंस्टेंटाइन ही न था, ग्रीस के स्थान

१. वहीं, पृ. २१२।

२. बुद्धिज़म, प्रिमिटिव एंड प्रेज़ेंट, पृ० १६६।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पर बौद्ध धर्म से आविष्ट सिकन्दर था; वह ऐसा निःस्वार्थ नैपोलियन था जो यश के स्थान पर कल्याण (Mettam) से प्रेरित था।"

बौद्ध धर्म के इतिहास म अशोक का स्थान भगवान बुद्ध के बाद सर्वोपरि है।[1] इसलिए एकमात्र सेंटपाल ऐसा ऐतिहासिक व्यक्ति है जिसकी अशोक से उचित रूप से तुलना की जा सकती है, जैसा कि डा० जे० एम० मैकफेल ने ठीक ही लिखा है।[2] यह सत्य है कि ईसा का उपदेश सारी मानव जाति के लिए था, पर उसके सबसे पहले अनुयायियों ने इसके सार्वभौम स्वरूप को पूरी तरह नहीं पहचाना और इस पर बल नहीं दिया, और इस तरह ईसाइयत यहूदी धर्म के ही एक सम्प्रदाय--चाहे वह अधिक प्रबुद्ध और उदार था--का रूप ग्रहण करती जा रही थी। पाल ही ने जाति और (मूसा रचित) नियमों के उन बंधनों को तोड़ फेंका जो इसकी प्रगति को रोके हुए थे। निःसंदेह उसके कुछ साथी प्रचारक ईसाई चर्च का द्वार विस्तृत करके गैर-यहूदियों को उसमें लेने के पक्ष में थे। पर पाल ने कहा: "नहीं, यहाँ कोई द्वार नहीं रहना चाहिए, और न यहाँ कोई द्वार है, क्योंकि यहाँ कोई दीवार नहीं है। प्रत्येक विभाजक को तोड़ दिया गया है, प्रत्येक रोक और विभेद, तथा परमात्मा की दृष्टि में मनुष्यों का भेदभाव खत्म कर दिया गया है। परमात्मा

१. ERE, II, १२७।

२. अशोक, पृ० ८५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

का प्रेम ऐसा सर्वस्पर्शी है जैसा आकाश। ईसा के यहाँ न कोई यहूदी है न ग्रीक, न दास है न मुक्त, न पुमान् है न स्त्री।" इसी प्रकार, अशोक के समय में बौद्ध धर्म एक स्थानीय प्रांतीय सम्प्रदाय मात्र रह गया था। उसने उन्हें सहिष्णुता और एक दूसरे के सिद्धान्तों का आदर सिखाकर, एक सम्प्रदाय को दूसरे से पृथक् करने वाली बाधाओं को नष्ट कर दिया और धर्म के उस सार की वृद्धि की जिसको वे सब मानते थे। और इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस मामले में सम्राट् अशोक बौद्ध पिटकों की सतह से ऊपर हो गया। यह वास्तव में, बुद्ध का सब ही गृहस्थियों के लिए उपदेश था, और बौद्ध धर्म के इस सार्वभौम स्वरूप को ही अशोक ने स्पष्ट रूप से पहचाना और प्रचारित किया। पाल की ही तरह, अशोक आचार-बल को सबसे अधिक महत्वपूर्ण समझता था, और उसने इसे इसके उपयुक्त आसन, विश्व-धर्म के आसन, पर प्रतिष्ठित कराने में कोई कोर-कसर न उठा रखी। इस प्रकार अशोक बौद्ध धर्म का निरा संरक्षक न था, सच्चा भक्त था। पर एक विशाल साम्राज्य का अधिपति और परिणामतः अनंत साधनों का स्वामी होने के कारण वह कहीं अधिक द्रुत और अधिक ठोस सफलता प्राप्त कर सका।

अशोक के कार्य के मूल्यांकन को बिना यह पता लगाये और बिना यह निश्चय किये हम समाप्त नहीं कर सकते कि इसका भारत पर क्या प्रभाव हुआ, अर्थात् इस देश को इससे क्या लाभ या हानि हुई। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि परोक्ष रूप से भारत को इससे बहुत लाभ हुआ है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हम देख चुके हैं कि किस प्रकार अशोक के प्रचार-कार्य से दो बहुत बड़े लाभ हुए। उसके समय में सारा देश आर्य बन चुका था। पर विभिन्न प्रांतों की अलग-अलग बोलियां थीं। पर उसने अपने धर्म के प्रचार के लिए जो महान प्रयत्न किये, उनके कारण एक प्रांत से दूसरे प्रांत में संप्रेषण अधिक प्रायिक और द्रुत हो गया, और यह बात सर्वत्र अनुभव की जाने लगी कि एक सामान्य भाषा हो, जो सब प्रांतों में पढ़ी और समझी जाए, और न केवल धर्मेतर मामलों में, बल्कि धर्म-संबंधी मामलों में भी, विचार-विनिमय का माध्यम बने। इसके परिणामस्वरूप, पालि या स्मारकीय प्राकृत भारत की राष्ट्र-भाषा बन गयी।[1] पहले पालि कोई स्थानीय बोली होगी, कृत्रिम घड़ी हुई भाषा नहीं, जैसा कुछ लोग मानते हैं। संभाव्यतः यह उस प्राकृत की जननी थी जो पीछे से महाराष्ट्री कहलायी और जब यह सारे भारत की सार्वत्रिक भाषा के पद पर प्रतिष्ठित हो गयी, तब, न केवल धर्मेतर और धार्मिक लेख्य बल्कि धार्मिक पवित्रग्रंथ भी पालि में ही लिखे जाने लगे। शुरू में बौद्ध धर्मग्रंथ मगधी बोली में संरक्षित रहे होंगे, पर जब यह नयी एस्पेरेंतो बन गयी, तब वे सब पालि में अनुवादित कर दिये गये ताकि वे भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक समझे जा सकें। राजकीय लेख्य, और धार्मिक दानों के अभिलेख भी इसी भाषा में लिखे जाने लगे। अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रसार के लिए जो प्रायः अतिमानवीय कार्य

१. ऊपर, पृ० २०५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया उसका यह परोक्ष परिणाम हुआ जो भारत के लिए बड़ा भारी वरदान था। उसके कार्य का दूसरा परिणाम यह हुआ कि उससे भारतीय कला को अपरिमित उद्दीपन मिला।[१] इस समय तक वास्तुकला काष्ठगत थी और उसने ही इसे पाषाणीय बनाया। संगतराश की कला और उद्योग अति दीर्घकाल से चले आ रहे थे, और जब अपनी धम्म-लिपियों को स्थायी रूप देने का विचार उसके मस्तिष्क में आया तब उसने अपनी लक्ष्यपूर्त्ति में इस कला का उपयोग करने का तुरन्त निश्चय कर लिया। इसका परिणाम हुआ कि विशालकाय एकपाषाणीय स्तंभ बने, बड़ी-बड़ी चट्टानें उत्कीर्ण की गयीं, और इन सबसे बढ़कर यह बात हुई कि शिलाओं को काटकर मन्दिर बनाये गये, जो क्रमशः अधिकाधिक विशाल होते गये और उनके रूप भी अधिकाधिक कलापूर्ण होते गये, और आज भारत में उनके इतने सारे सुन्दर और भव्य नमूने भरे पड़े हैं कि उन्हें संसार का एक आश्चर्य मानकर उचित ही किया गया है।

हम देख चुके है कि मानवता को अशोक ने विश्व-बन्धुत्व का—न केवल मानव-बन्धुत्व का बल्कि प्राणिबन्धुत्व का—लक्ष्य प्रदान किया। हम यह भी देख चुके हैं कि उसके धर्म-प्रचार कार्य से देश को किस तरह दो महान लाभ हुए। और अब यह प्रश्न करना संगत होगा कि क्या अशोक के क्रियाकलाप का भारत पर कोई सीधा प्रभाव पड़ा और उसने

१. ऊपर पृ० २१४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भारत की प्रकृति को किसी नये सांचे में ढाला। यदि हम इस काल के भारत का आलोचनात्मक पर्यवेक्षण करें तो हम देखते हैं कि हिन्दू सभ्यता भौतिक प्रगति के प्रेरक और आत्मिक संस्कृति के उन्नायक बलों के बीच पूर्णतः संतुलित अवस्था में आ चुकी थी। पर अशोक के अनथक उत्साह से और अपने स्वप्न को मूर्त्त रूप देने के लिए उस द्वारा किये हुए सतत प्रयत्नों से यह संतुलन बिगड़ गया, और परिणाम यह हुआ कि हिन्दू सभ्यता का भौतिक तत्व आत्मिक तत्व से इतनी पूरी तरह दब गया कि यह लुप्त न होने पर भी, अप्रगामी और क्षयोन्मुख हो गयी।

संभव है कि उपर्युक्त विचार कुछ विचित्र मालूम हो, और कुछ अतिरंजित प्रतीत हो। कारण कि अशोक के समय तक विकसित साहित्य से क्या प्रकट होता है? उन वैदिक ग्रंथों और बौद्ध धर्मग्रंथों के अध्ययन से, जो इस सम्राट् के समय में मौजूद थे, हम किस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं? इन ग्रंथों विशेषकर वैदिक काल के ग्रंथों का सावधान और निष्पक्ष अध्ययन करने के पश्चात् स्व० प्रो० मैक्समूलर और प्रो० ब्लूमफील्ड जैसे विद्वानों का क्या विचार है? आइए पहले यह देखें कि प्रो० मैक्समूलर क्या कहते हैं? आप लिखते हैं:[1] "भारतीय लोग राष्ट्रीयता की भावना से सर्वथा कोरे थे और राष्ट्रीय प्रशंसाघोष की आशा में उनके हृदय में कभी गुदगुदी नहीं पैदा होती थी..............। भारतीय

१. HASL, पृ० ३०-३१।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मानस को जिस एक क्षेत्र में कार्य, सृजन और पूजन करने की स्वतन्त्रता अनुभव होती थी वह धर्म और दर्शन का क्षेत्र था; और किसी भी राष्ट्र के मानस में धार्मिक और दार्शनिक विचारों की जड़ें इतनी गहरी नहीं गयीं जितनी भारत के। हिन्दू लोग दार्शनिकों का एक राष्ट्र थे ....। कुल मिलाकर, इतिहास में और कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जिसमें आत्मा के अन्तर्मुख जीवन ने एक सारी की सारी जाति की संपूर्ण कर्म-शक्ति को इतनी पूरी तरह चूस लिया हो, और वस्तुतः, उन गुणों को प्रायः नष्ट कर दिया हो जिनसे कोई राष्ट्र इतिहास में अपना स्थान बनाता है।" प्रो० ब्लूमफील्ड का विचार भी प्रायः यही है।" "भारत के इतिहास के आरम्भ ही से", आप कहते हैं,[१] "जैसे यहाँ धार्मिक संस्थाएं लोगों के चरित्र और विकास की नियामक रही हैं वैसी अन्यत्र कहीं नहीं रहीं। यद्यपि आचरण इस यन्त्रवत् और कठोर व्यवस्था से बहुत नीचे रहा पर तो भी इस मंतव्य को स्वीकार किया जाता है कि जीवन एक सारतः एकाकी धार्मिक यात्रा है, जिसका लक्ष्य वैयक्तिक मुक्ति है। इस तरह की विचार-योजनाओं में राज्य के हित और जाति की उन्नति की कोई गुंजाइश नहीं। भारत ने इन बातों की उपेक्षा जान-बूझकर नहीं की, पर उसका परिणाम तो हुआ ही, और वह यह कि उन दृष्टियों से भारत के राष्ट्रीय चरित्र में एक शून्य वना हुआ है।" भारतीय मानस के घटन

१. दि रिलिजन आफ दि वेद, पृ० ४–५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के बारे में इन दो विद्वानों का यह विचार है। उनकी यह मान्यता है कि भारत की प्रतिभा धार्मिक और दार्शनिक संस्कृति के विकास में ही निहित थी और उसमें न तो राष्ट्रीयता की भावना विकसित हुई थी और न राज्य की धारणा ही बनी थी। दूसरे शब्दों में, राजनीति विज्ञान को भारत की देन शून्य थी और इसलिए संसार के राजनैतिक इतिहास में उसे कोई स्थान नहीं मिल सकता। निःसंदेह, भारतीय मानस के इस मूल्यांकन में कुछ सत्य है, पर यह विचार सिर्फ अंशतः सत्य है। प्रो० मैक्समूलर और प्रो० ब्लूमफील्ड उस समय निःसन्देह सच्चे थे जब उनके विचार पहली बार प्रकाशित हुए। पर उनके प्रकाशित होने के बाद कौटिल्य अर्थशास्त्र प्राप्त हुआ है और आज वह विद्वानों के सम्मुख है। अब यह कहना सही नहीं कि भारतीयों ने कभी भी राजनीति को धार्मिक और दार्शनिक वातावरण से अलग नहीं किया और राजनीति विज्ञान को ज्ञान की स्वतन्त्र शाखा के रूप में नहीं स्थापित किया। कारण कि अर्थशास्त्र से हमें पता चलता है कि उसके समय तक राजनीति-विज्ञान के कम से कम चार संप्रदाय प्रसिद्ध थे, और कम से कम सात अत्यन्त प्रमुख लेखक हो चुके थे, जिनका किसी राजनीति-सम्प्रदाय से संबंध नहीं था। फिर, उसके समय में कौन-कौनसी विद्याएं प्रचलित थीं? वे थीं आन्वीक्षिकी अर्थात् दर्शन, त्रयी अर्थात् धर्म, वार्ता अर्थात् अर्थविज्ञान, और दंडनीति अर्थात् राजनीति विज्ञान। क्या इससे यह स्पष्ट

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं कि राजनीति विज्ञान दर्शन और धर्म से पृथक् था और ज्ञान की एक स्वतन्त्र शाखा था ? इतना ही नहीं, एक सम्प्रदाय, नामश: बार्हस्पत्य यहाँ तक कहता था कि त्रयी या धर्म एक धार्मिक प्रतारणामात्र है, और एक दूसरा संप्रदाय सब विज्ञानों का अन्तर्भाव राजनीति-विज्ञान में करता था, और यह प्रतिपादन करता था कि विज्ञान के नाम को सार्थक करने वाला तो केवल राजनीति-विज्ञान है । क्या इससे स्पष्ट रूप से यह प्रकट नहीं होता कि मौर्य सत्ता के उदय से पहले भारतीयों ने राजनीति विज्ञान को वैसे ही उत्साह और तत्परता से उन्नत किया था जैसे धर्म और दर्शन को, और यदि बाद में एक समय धर्म और दर्शन ने राजनीति-विज्ञान का स्थान भी घेर लिया, तो एक ऐसा भी समय था जब न केवल धर्म का उपहास किया जाता था, बल्कि राजनीति-विज्ञान को ही एकमात्र विज्ञान कहलाने योग्य समझा जाता था। इस बात पर विचार करने का स्थान यह नहीं है कि कौटिल्य से पूर्ववर्ती काल के हिन्दुओं ने राजनी-तिविज्ञान को क्या देन दी, पर जिन्होंने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का अध्ययन किया है उन्हें यह बताने की आवश्यकता नहीं कि भारतीय लोग राज्य की एक सुनिश्चित धारणा विकसित कर चुके थे, और अन्तर्राष्ट्रीय विधि (इंटरनेशनल लॉ) के विषय में भी उनका विचार काफी उन्नत हो चुका था । राजनीति-विज्ञान के साथ-साथ हिन्दुओं ने ज्ञान की, वार्ता (अर्थविज्ञान) नामक एक और शाखा का विकास

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

किया था जिसके अन्तर्गत कृषि, पशुपालन, और व्यापार थे, और जिसका राजनीति-विज्ञान में अच्छी तरह उपयोग किया जाता था।

यद्यपि हिंदुओं ने राज-नीतिविज्ञान नामक एक विशेष विज्ञान का विकास कर लिया था, और बहुत सारे तथा अनेक प्रकार के सिद्धान्त बना लिये थे जिनमें कौटिल्य ने वृद्धि भी की, तो भी प्रतीत होता है कि कौटिल्य के बाद यह विकास सर्वथा अवरुद्ध हो गया। यह बात इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि कौटिल्य के बाद का कोई ऐसा राजनीति-विज्ञान का ग्रंथ नहीं मिलता जिसमें कोई नया विचार हो या इस विषय पर किसी प्रकार की प्रगति हो। तथ्य तो यह है कि प्रतीयमानतः, कौटिल्य के अर्थशास्त्र ने, जो वैसे एक संग्रह मात्र है, उस समय तक प्रचलित राजनी-तिविषयक सब ग्रंथों को मात दे दी थी, और यह इस विषय का प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाने लगा था। कामसूत्र के लेखक वात्स्यायन और याज्ञवल्क्य स्मृति के प्रणेता ने न केवल उसके विचार ही अपनाये हैं, बल्कि उसकी पदावलि भी-ज्यों की-त्यों उठाकर रख ली है। और वाण तथा दंडी ने अपने ग्रंथों में कौटिल्य का जिस तरह उल्लेख किया है, उससे इसमें कोई संशय नहीं रहता कि उनके समय के राजाओं में उसके ग्रंथ का बड़ा मान था।[1] पर यह ग्रंथ भी बहुत

१. देखिए श्री आर. शामशास्त्री द्वारा अनुवादित 'कौटिल्याज़ अर्थशास्त्र' की भूमिका, के. वी. रंगास्वामी आयंगर द्वारा लिखित कन्सिडरेशन्स आफ सम एस्पेक्ट्स आफ एंशेंट इंडियन पोलिटी पृ. १९

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अधिक विस्तृत मालूम हुआ, और हम जानते हैं कि कामंदक ने इसे सरल और संक्षिप्त करने का बीड़ा उठाया। यदि कौटिल्य का अर्थशास्त्र उस समय पढ़ा जाने वाला राजनीति-विषयक एकमात्र ग्रंथ न होता तो निश्चित ही उसने यह काम न उठाया होता। उसके बाद इस विषय का कोई ऐसा ग्रंथ नहीं लिखा गया जिससे हिन्दू राजनैतिक विज्ञान के बारे में हमारी ज्ञान-वृद्धि हो। स्पष्ट है कि कौटिल्य के बाद इस विज्ञान ने कोई प्रगति नहीं की दीखती, और ठीक ऐसे समय जब इसके बहुत उन्नत होने और हमारे राजनैतिक सिद्धान्त और आचरण में बहुत प्रगति होने की आशा थी, यह प्रायः मृत हो गया। हम सब जानते हैं कि बिंबिसार के समय में बिहार में जो छोटा-सा मगध का राज्य था, वह चन्द्रगुप्त के राज्यकाल में किस तरह एक शक्तिशाली मगध साम्राज्य के रूप में परिवर्तित हो गया था जो हिन्दूकुश से लेकर तामिल देश के सीमान्त तक फैला हुआ था। कुछ समय तक स्वयं अशोक ने कलिंग प्रान्त को विजय करके और अपने राज्य में मिलाकर इस केन्द्राभिसारी बल को बढ़ाया था, जो बिंबिसार के साथ पैदा हुआ था।[१] और यदि उसके मन में धम्म की अभिलाषा न समा गयी होती और उसे इस प्रकार पूर्णतः

और आगे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र को परवर्त्ती काल की रचना सिद्ध करने के लिए अभी तक कोई प्रबल प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया।

१. डा. एच. सी. रायचौधुरी द्वारा लिखित पोलिटिकल हिस्ट्री आफ एंशेंट इंडिया, पृष्ठ १६४; पृ० १८२-३

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रूपान्तरित न कर गयी होती तो मगध की अदम्य सैनिक भावना और चमत्कारपूर्ण राज्य-कला तामिल राज्यों और तामिल भारत के दक्षिणी छोर पर अवस्थित ताम्रपर्णी पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन करके ही तृप्त होती, और संभाव्यतः, भारतवर्ष की सीमाओं से बाहर गये बिना तथा रोम के साम्राज्य जैसा साम्राज्य स्थापित किये बिना संतुष्ट न हुई होती। भारत का आर्यकरण अशोक से बहुत पहले पूरा हो चुका था। इस देश की विभिन्न जातियों के लिए यह आर्यकरण वैसा ही था जैसा ग्रीकेतर जातियों के लिए हैलैनिज्म। आर्यों की भाषा और जीवन की रीति प्रायः सारे भारत में अपनायी जा चुकी थी, और राष्ट्रभाषा, यानी पालि भाषा, भी स्वीकार की जा चुकी थी। इस तरह वे सब साधन यहां तैयार थे जो भारत की विभिन्न जातियों को मिलाकर एक राष्ट्रीयता, या यों कहिए कि साम्राज्याधीनता, में लाने के लिए आवश्यक थे। इस परिणति पर पहुंचने के लिए जो एकमात्र चीज आवश्यक थी वह थी राजनैतिक स्थिरता, अर्थात् सांझा राजनैतिक संघ। और यदि अशोक ने अपने बाप-दादा की नीति को जारी रखा होता और बिंबिसार द्वारा नवोत्पादित केन्द्राभिसारी बलों को बढ़ाया होता तो उसकी प्रबल शक्ति और प्रशासनीय प्रतिभा से मगध साम्राज्य दृढ़ हो गया होता और यह राजनैतिक स्थिरता सुनिश्चित हो गयी होती। पर हुआ यह कि उसने, कलिंग युद्ध के शीघ्र बाद, अर्थात् उस घटना के बाद जिससे उसके

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

समान अवसर और साधनों वाले अन्य राजाओं को विश्व प्रभुत्व स्थापित करने की प्रेरणा मिली होती, उसने एक नयी ही परराष्ट्र नीति निर्धारित की। इसके बाद अशोक युद्ध के विचारमात्र से घृणा करने लगा। हम देख चुके हैं कि किस प्रकार, कलिंग युद्ध की भीषणता का वर्णन करते हुए, वह कहता है कि अगर उस मुसीबत का सौवां, नहीं-नहीं हजारवां, भाग भी, मनुष्यों को पुनः भुगतना पड़े तो उससे मुझे अत्यधिक दुःख होगा। और एक अन्य स्थान पर, जैसे बड़ी राहत और खुशी की भावना के साथ वह हमें बताता है कि अब मेरे लिए नगाड़े का शब्द धम्म का शब्द बन गया है, युद्ध का नहीं। पर कलिंग युद्ध की घटना का उल्लेख उसने एक विशेष प्रयोजन से किया है। वहाँ वह सरल भाव से स्वीकार करता है कि मैंने प्रदेश-विजय का विचार सर्वथा त्याग दिया है और धम्म-विजय का रास्ता पकड़ लिया है। वह कहता है कि धम्म-विजय सब सीमावर्ती प्रदेशों में भी हासिल की जा सकती है, और वहाँ प्राप्त की भी गयी है। पर वह इस नयी नीति के प्रतिपादन मात्र से संतुष्ट नहीं है, बल्कि अपने पुत्रों, पौत्रों, तथा अपने सब वंशजों को प्रदेश-विजय की लालसा त्याग देने की प्रेरणा करता है और उनसे आग्रह करता है कि वे उसके शुरू किये हुए धम्म-विजय के कार्य को जारी रखकर और पूरा करके उसके पदचिह्नों पर चलें। विजय के स्थान पर धम्म-विजय की नीति अपनाने का परिणाम आध्यात्मिक दृष्टि से शानदार होते हुए भी राजनैतिक दृष्टि से विनाशकारी

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सिद्ध हुआ। निःसंदेह, शान्ति का प्रेम और आत्मिक उन्नति की आकांक्षा इस प्रकार पैदा हुई और अब वे भारतीय चरित्र में अनुस्यूत हो गयीं। हिन्दू मानस, जो पहले ही आध्यात्मिक था, अब अत्यन्त आध्यात्मिक हो गया। उससे क्षत्रि धर्म, राजनैतिक महानता और भौतिक सुख-लाभ के प्रति कुछ उपेक्षा अवश्य पैदा हुई होगी। यही कारण रहा होगा जिससे कौटिल्य के बाद राजनैतिक सिद्धान्त और आचरण की प्रगति हमें सहसा अवरुद्ध और कुंठित दिखायी देती है, विशेषकर ऐसे समय जब मगध राज्य से यह आशा थी कि वह राष्ट्रीयता की भावना पैदा करेगा और भारत को एक उच्चतर राजनैतिक तल पर खड़ा करेगा। परन्तु अशोक का नया दृष्टिकोण एक केन्द्रशासित राष्ट्रीय राज्य और चक्रवर्ती साम्राज्य की भारतीय आकांक्षा के लिए मारक सिद्ध हुआ। उसकी नीति के परिणाम उसकी मृत्यु के बाद शीघ्र ही दिखायी देने लगे। उत्तर-पश्चिमी क्षितिज पर काले बादल मंडराने लगे और उसकी मृत्यु के बाद मुश्किल से चौथाई सदी गुजरी होगी कि बैक्ट्रियन ग्रीकों ने हिंदूकुश को, जो मौर्य साम्राज्य की उत्तर-पश्चिमी सीमा बनाता था, पार कर लिया, और जो कभी एक शक्तिशाली साम्राज्य था, उसे क्षीण करना शुरू कर दिया। हम जानते हैं कि सिकन्दर के सेनापति होते हुए भी ग्रीक लोग मगध सेना से कितना घबराते थे। विशाल एकिमीनियन साम्राज्य को ध्वस्त और विनष्ट करने के लिए उन्हें सिर्फ तीन लड़ाइयां लड़नी पड़ीं, पर जब वे भारत में घुसे तब उन्हें

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चप्पा-चप्पा जमीन के लिए लड़ना पड़ा और उनके नेता सिकन्दर को भी एक बार प्रायः प्राणान्तक आघात लगा था। निःसंदेह, ग्रीक सैनिक बलवान और वीर योद्धा थे और यद्यपि उन्हें कठिनाई हुई पर तो भी वे बहुत से भारतीय कबीलों को और पंजाब के राजा पोरस तक को जीतने में सफल हो गये थे। परन्तु, जैसा कि प्लूटार्क हमें बताता है, पोरस के साथ हुए युद्ध से मैसिडोनियनों का हौसला इतना टूट गया और भारत में और आगे बढ़ने से उनका दिल इतना हट गया कि जब सिकन्दर ने उनसे यह आग्रह किया कि वे गंगा के पार चलें और मगध सेना से मोर्चा लें तो, उन्होंने उसका बड़ी दृढ़ता से विरोध किया।[१] सिकन्दर बड़ा कुपित और क्रुद्ध हुआ, पर उसे पीछे हटना पड़ा। मैसिडोनियनों के मन में मगध सेना का ऐसा भय बैठ गया था। पर मालूम होता है कि धम्म-विजय की जो नयी परराष्ट्र नीति अशोक ने शुरू की थी, उसके कारण सब वस्तुएं सहसा परिवर्त्तित हो गयीं और वही ग्रीक, जो सिकन्दर के सेनापतित्व में भी मगध सेना के नाम से थर्राते थे, अब उत्तरी भारत का हृदय चीरते हुए और मगध साम्राज्य को खंड-खंड और छिन्न-भिन्न करते हुए आसानी से आगे बढ़ आये।

इससे भी बुरी बात यह हुई कि अशोक की मृत्यु के शीघ्र बाद हुए ग्रीक आक्रमणों ने, जिनके लिए उसकी परि-

१. एंशेंट इंडियाः इट्स इनवेजन बाई एलेग्जेंडर दि ग्रेट—लेखक मैकक्रिंडल, पृ. ३१०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वर्त्तित परराष्ट्र नीति ही जिम्मेदार प्रतीत होती है, शक, पल्हव, कुशान, हूण, गुर्जर इत्यादि अनेक असभ्य जातियों के लिए भारत में द्वार खोल दिया, जो छठी शताब्दी ई० प० तक निरन्तर इस देश में आती, और शुंगों और गुप्तों जैसे एक-दो को छोड़कर और सब देशी राजाओं की सम्राटता को नष्ट करती दिखायी देती हैं। यह सत्य है कि ये सब विदेशी जातियां भारत में बसने के शीघ्र बाद हिंदू हो गयीं पर इस तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि मुसलमानों के आगमन तक देश की राजनैतिक सत्ता पर इन विदेशियों का प्रायः एकाधिकार रहा। इस प्रकार राजनैतिक मौलिकता और नवविकास की पुरानी हिंदू प्रतिभा सुषुप्त पड़ी रही और अपनी मौत मर गयी, और जो विश्व-आधिपत्य किसी समय भारत की आकांक्षा-सा प्रतीत होता था, वह एक असंभव स्वप्नमात्र रह गया।

यद्यपि अशोक के धर्म-प्रचार कार्यों के कारण भारत राष्ट्रीयता और राजनैतिक महानता से दूर हो गया प्रतीत होता है, पर उसने विश्व-भ्रातृत्व और मानव-बंधुत्व की ओर जो हिन्दू समाज के मूलभूत सिद्धांत हैं, निःसंदेह प्रगति की है। यह सच है कि इसके परिणामस्वरूप राजनीति-विज्ञान की प्रगति सहसा अवरुद्ध हो गयी और धर्म तथा दर्शन हिंदू मानस में अधिकाधिक जगह घेरने लगे। पर यह न समझना चाहिए कि हिंदू मानस सांसारिक जीवन के सुखों के प्रति वैरागी या उदासीन हो गया, अथवा भारत का औद्योगिक या

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

व्यापारिक महत्त्व नष्ट हो गया। कुल मिलाकर यह भारत की हानि है या लाभ, इस प्रश्न का निर्णय अलग-अलग लोग अपने अलग-अलग स्वभाव के अनुसार करेंगे। पर इतनी बात निश्चित है कि संसार को इस भारतीय सम्राट् के धर्म-प्रचार कार्य से बहुत लाभ हुआ है और कि जहाँ एक ओर, पूर्व की तरफ बौद्ध धर्म ने न केवल धर्म और दर्शन, बल्कि हिन्दू सभ्यता की और महत्त्वपूर्ण विशेषताएं भी स्थापित कीं, वहाँ दूसरी ओर इसका न केवल थेराप्यूटी और ऐसनस नामक यहूदी संप्रदायों पर बल्कि प्राचीन और मध्यकालीन ईसाइयत पर भी बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अध्याय ८

अशोक के लेख

उनके प्राप्तिस्थान, आदि

शिलालेख

(अ) चौदह शिला प्रज्ञापन

अशोक के लेख शिलाओं या प्रस्तर-स्तंभों पर और गुफाओं में उत्कीर्ण है। सबसे पहले हम उन लेखों पर विचार करेंगे जो चौदह शिलालेख या प्रज्ञापन कहलाते हैं। ये सब मिलाकर चौदह विभिन्न लेखों का एक समूह हैं जो एक निश्चित क्रम में हैं, और एक-दो मामूली शब्द-भेद या बोली-संबंधी विशेषताओं के साथ सात विभिन्न स्थानों में उत्कीर्ण पाये गये हैं। उत्तर-पश्चिम से शुरू करें तो इन लेखों का पहला समूह उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में, पेशावर से लगभग ४० मील उत्तर-पूर्व में, पेशावर के यूसुफज़ई सब-डिवीजन के शाहबाजगढ़ी नामक स्थान पर मिला है। पहले जनरल कोर्ट को इसका पता लगा था, जिसने इसे कपूरदा गढ़ी के बिलकुल निकट अवस्थित बताया था जिसके नाम पर इसे पहले कपूरदागढ़ी लेख कहते थे। पर कपूरदागढ़ी वहाँ से दो मील दूर है और यह शिला वास्तव में उससे बहुत अधिक बड़े गांव शाहबाजगढ़ी की सीमा में है और इस गांव से आधा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मील से भी कम दूर है । इस अभिलेख का अधिकांश, जिसमें बारहवें को छोड़कर और सब लेख हैं, २४ फुट लम्बी, १० फुट ऊंची, और १० फुट मोटी चट्टान के पूर्वी और पश्चिमी फलकों पर उत्कीर्ण है––यह शिला पहाड़ी पर ८० फुट ऊंचाई पर है और इसका पश्चिमी फलक शाहबाजगढ़ी गांव की ओर को है । पर इस समूह का प्रज्ञापन १२, स्वर्गीय सर हेरल्ड डीन ने १८८९ में खोजा था, और वह मुख्य अभिलेख से ५० गज दूर एक पृथक् शिलाखंड पर उत्कीर्ण है । शाहबाज-गढ़ी नाम आधुनिक है पर वर्त्तमान गांव एक बहुत पुराने, विस्तृत नगर के स्थान पर है, और कनिंगहम के अनुसार प्राचीन नगर पो-लु-शा (युआन-च्वांग) या 'फो-शा-फ़' (सुंगयान)[1]–जो एक प्रसिद्ध बौद्ध तीर्थ ओर वेस्संतर जातक का घटना-स्थल है––को निरूपित करता है । यह संभाव्यत: अशोक के राज्य के अन्तर्गत विद्यमान यवन प्रान्त की राजधानी था ।

अब अगला लेख समूह वह है जो उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त के हज़ारा ज़िले में, ऐबटाबाद से १५ मील उत्तर में, मानसेहरा (मनसेरा) नामक स्थान में है । यहाँ सिर्फ पहले बारह प्रज्ञापन दो शिलाओं पर खुदे हुए मिले हैं । तेरहवां और चौदहवां प्रज्ञापन संभाव्यत: वहीं कहीं आस-पास छिपे हुए हैं और मिलने बाकी हैं । पास-पड़ोस में पुरानी आबादी के कोई चिह्न नहीं हैं पर, जैसा कि सर ए० स्टीन ने बताया है, यह अभिलेख एक तीर्थ-स्थल को जाने वाली

१. C. ASR, V. ८–२३; C. CII, I, ८–१२ ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक प्राचीन सड़क के किनारे एक चट्टान पर उत्कीर्ण कराया गया प्रतीत होता है--यह तीर्थ-स्थल आजकल ब्रेरी कहलाता है जो भट्टारिका--देवी या दुर्गा[1] का वाचक कश्मीरी शब्द है। हम देख चुके हैं कि शाहबाजगढ़ी प्रति का प्रज्ञापन १२ एक पृथक् शिला पर उत्कीर्ण है, जबकि मानसेहरा प्रति में वह लेख शिला के एक ओर उत्कीर्ण है। फिर, इन दोनों स्थानों पर अन्य प्रज्ञापनों की अपेक्षा अक्षर बड़े और खुदाई अधिक परिशुद्ध है। इसमें कोई संदेह नहीं, जैसे कि पहले सेनार्ट[2] ने संकेत किया था, कि कम से कम, भारत के इस भाग में, प्रज्ञापन १२ को, जिसमें एक दूसरे के धार्मिक सम्प्रदाय के प्रति सहिष्णुता प्रदर्शित करने को कहा गया है, विशेष महत्त्व दिया गया प्रतीत होता है। मालूम होता है कि जैसे अशोक की दृष्टि में उसके साम्राज्य के इस दूरवर्ती प्रदेश में, जो भारत में होने वाले अभियानों का मुख्य मार्ग होने के कारण, विभिन्न धार्मिक विचारों वाली अनेक जातियों का संगम-स्थल होगा, धार्मिक शांति के उपदेश की विशेष आवश्यकता थी।

चौदह शिला प्रज्ञापनों की तीसरी प्रति यमुना के पश्चिमी तट पर, यमुना और टौंस के संगम पर और मसूरी (मंसूरी) से लगभग १५ मील पश्चिम में बिल्लौर की एक विशाल गोल चट्टान पर उत्कीर्ण है। यह चट्टान ज़िला देहरादून (उत्तर प्रदेश) में कालसी से डेढ़ मील है--यह गांव इससे निकटतम

---

१. PR—ASNWFP-, १९०४–५, पृ० १७।

२. IA. १८९०, पृ. ४३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

है और इसी के नाम पर इसे कालसी लेख कहते हैं। यह पत्थर १० फुट लम्बा, १० फुट ऊंचा और तली पर लगभग ८ फुट मोटा है। दक्षिण-पूर्वी पार्श्व को चिकना किया गया है, पर फिर भी कुछ असमतल रह गया है क्योंकि इस पर पहले वाले तल के उभार कायम[1] हैं। शुरू में श्री फोरेस्ट ने १८६० में इसका पता लगाया था। उस समय लेख के अक्षर अच्छी तरह दिखायी नहीं देते थे क्योंकि सारे तल पर सैकड़ों साल की काली काई जमी हुई थी। पहले-पहल देखने पर लेख ऐसा लगता है कि जैसे बहुत सारे स्थानों पर यह अधूरा हो, पर इसका कारण यह था कि खोदने वाले ने सब चटके हुए और अचिक्कण स्थानों को जान-बूझकर अनुत्कीर्ण रहने दिया है। तली की ओर को, दसवें प्रज्ञापन से आगे अक्षरों का आकार बढ़ता जाता है और वह ऊपरी भाग के अक्षरों के आकार से लगभग तिगुना तक हो जाता है। या तो अक्षरों के इस प्रकार बड़ा कर दिये जाने के कारण, या शायद, लेख का पिछला अंश परवर्ती काल का होने के कारण, निर्मित तल सारे अभिलेख के लिए बहुत छोटा था, इसलिए इसे शिला के बायें हाथ वाले पार्श्व पर पूरा किया गया है। दायें हाथ वाले पार्श्व पर एक हाथी रेखाओं से अंकित किया गया है और उस पर गजतमे (उत्तम हाथी) लिखा है, जो निःसंदेह बुद्ध[2] को निर्दिष्ट करता है। शिला के आस-पास

१. C. ASRI. २४४; C. CIII, १२–१३।

२. IA., V. २५७–८

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बहुत से मूर्त्तियों के पत्थर पड़े हुए हैं जिससे पता चलता है कि पहले इसके पड़ोस में मकान होंगे, और यह स्थान निश्चित रूप से प्राचीन और समृद्ध श्रुघ्न नगर के पास अवस्थित था।

चौथी प्रति प्रसिद्ध गिरनार प्रति है जिसका पहले-पहल कर्नल टॉड ने १८२२ में वर्णन किया था। यह गिरनार पहाड़ को जाने वाले मार्ग पर जूनागढ़ (काठियावाड़) नगर से आधा मील पूर्व में, एक बड़ी चट्टान के उत्तर-पूर्वी पार्श्व पर उत्कीर्ण है। गिरनार गिरिनगर ही है जो बहुत समय तक सौराष्ट्र की राजधानी रहा। प्रभास-खंड में गिरनार को एक शैव तीर्थ कहा है। इस स्थान को जैन भी बहुत आदर की दृष्टि से देखते हैं। यह अभिलेख एक घने वन में गड़ा हुआ था और यदि एक स्थानीय प्रमुख व्यक्ति यात्रियों के लाभ के लिए जंगल में से एक ऊंचा मार्ग न बनवाता तो इसका कभी पता ही न चला होता [1]। लेख के दो भाग हैं जिनके बीच में ऊपर से नीचे तक एक रेखा खिंची हुई है। बायीं ओर पहले पांच प्रज्ञापन उत्कीर्ण हैं और दायीं ओर ६–१२ तक, अगले सात प्रज्ञापन खुदे हैं। तीसरा प्रज्ञापन नीचे है और उसके दायीं ओर १४वीं प्रज्ञापन है। सारा पत्थर बड़ी अच्छी हालत में है––सिर्फ एक स्थान पर जहाँ पाँचवां और तेरहवां प्रज्ञापन हैं, पत्थर नष्ट हो गया है, और कहा जाता है कि उपर्युक्त उच्च मार्ग के लिए पत्थर आदि प्राप्त करने के वास्ते जो विस्फोटन कार्य किये गये थे, उनमें यह नष्ट

---

१. ASWI., II. ९५; PR.—ASWI., १८९८–९, पृष्ठ १५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

हो गया। पास की मिट्टी को उलटने-पलटने पर कैप्टन पोस्टन्स को, १८७७ से पहले, शिला के कई टुकड़े मिले, जिनमें से दो टुकड़ों पर अशोककालीन अक्षर थे, जो निःसंदेह प्रज्ञापन १३ से संबंधित थे—ये बाद में JRAS, १९००, में पृ० ३३५ पर और उससे आगे, वर्णित हैं और पढ़े गये हैं। आर-पार खिंची हुई क्षैतिज रेखाएं प्रज्ञापनों को एक-दूसरे से पृथक् करती हैं। प्रज्ञापन १३ के नीचे जगह छोड़कर लिखा है·········व स्वेतो हस्ती सवलोक-सुखाहरो नाम (श्वेत हाथी जिसका नाम सारे संसार को सुख देने वाला है), और सबसे पहले प्रो० कर्न ने पहचाना कि यह बुद्ध का ही निर्देश है। संभव है कि यहाँ पहले हाथी का वैसा ही कोई निरूपण होगा जैसा धौलि और कालसी के प्रज्ञापनों में मिलता है।

उसी शिला पर रुद्रदामन (ई० प० १५०) और स्कंदगुप्त (ई० प० ४५७) क अभिलेख उत्कीर्ण हैं जो हमें बताते हैं कि इसके निकट चन्द्रगुप्त मौर्य के आदेश से एक सुदर्शन नामक झील बनायी गयी थी, जिसमें मौर्य वंश के स्थानीय प्रतिनिधियों ने जलधाराएं और जलमार्ग बनवाये थे और जिसकी दो बार मरम्मत करायी गयी थी—एक बार रुद्रदामन के शासनकाल में और फिर एक बार स्कंदगुप्त के शासनकाल में।

प्रज्ञापन के कुछ शब्दों वाला एक खंड प्राप्त होने से यह

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अच्छी तरह सिद्ध हो जाता है कि इन लेखों की एक प्रति थाना जिले के सोपारा स्थान पर, जो बम्बई के उत्तर में है, कभी विद्यमान थी ।[1] सोपारा, जो अब भी एक समृद्ध नगर है, एक महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह और बाजार था और उसके नाम थे सूरपारक (महाभारत) सुप्पर (पेरिप्लस), या सौपर (टालेमी) । महाभारत में यह बताया दीखता है कि इसे परशुराम ने बसाया था और उसमें राम-तीर्थ[2] का उल्लेख है । यह बहुत पवित्र स्थान, और बहुत समय तक अपरान्त की राजधानी, था ।

दो प्रतियां[3] भारत के पूर्वी ओर, बंगाल की खाड़ी के तट के निकट कलिंग की सीमा के भीतर मिलती हैं जिसे अशोक ने 'अपने अभिषेक के आठ वर्ष बाद' विजय किया था । उत्तरी प्रति (जिसका श्री किट्टो ने १८३७ में पता लगाया था) अस्वस्तम नामक शिला पर उत्कीर्ण है, जो उड़ीसा के पुरी ज़िले में, भुवनेश्वर से लगभग सात मील दक्षिण में धौलि गांव के निकट (जिसका उल्लेख तोसलीनगर के नाम से प्रज्ञापनों में किया गया है, जो कुमार प्रतिनिधि शासन का केन्द्र था) अवस्थित है । अशोक के लेख तीन समानान्तर ऊर्ध्वाधर कालमों में लिखे हुए हैं, जिनमें से चौदह शिला

१. JBBRAS... XV., २८२; PR--ASWI, १८९७–८, पृ० ७ और आगे ।

२. IA., १८८२, पृष्ठ २३६ ।

३. C. ASR., XIII. ९५ और ११२; CIJ., I. १५ और आगे ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रज्ञापन (प्रज्ञापन १२ और १३ को छोड़कर शष) सार बीच के कालम पर, और आधे दायें कॉलम पर खुदे हुए हैं। बाद में दो स्थानीय प्रज्ञापन जोड़े गये, एक से दायीं तरफ का कालम पूरा हो गया और दूसरा बायीं तरफ वाले सारे कालम पर आ गया। इसलिए यह पिछला, यहाँ के दो पृथक् प्रज्ञापनों में से दूसरा है। शिलालेख के एकदम ऊपर एक छज्जा है जिसके दायीं ओर अत्यधिक कलापूर्ण, ४ फुट ऊंचा, एक हाथी का अग्रभाग है; यह सारा एक अखंड शिला में से काट कर बनाया गया है। यहाँ जो दरजें मिली हैं उनसे मालूम होता है कि यह हाथी शुरू में एक लकड़ी के वितान से परिरक्षित था। दक्षिणी पाठ (जिसकी पहली नकल सर वाल्टर इलियट ने १८५० में की थी) गंजाम नगर के पश्चिम-उत्तर-पश्चिम की ओर लगभग अठारह मील पर ऋषिकुल्या नदी के तट के निकट जौगड़ा नामक एक बड़े दुर्ग (लाक्षादुर्ग) में एक 'चित्रमय' शिला के फलक पर खुदा हुआ है। जौगड़ा लेख शिला के ऊर्ध्वाधर फलक पर तीन विभिन्न चौकियों पर खुदे हुए हैं। पहले पर पहले पांच प्रज्ञापन हैं, पर शिला के छिल जाने से लगभग आधा भाग नष्ट हो गया है। दूसरी चौकी पर अगले पांच प्रज्ञापन और १४वां प्रज्ञापन हैं। इस चौकी का लगभग एक-तिहाई कट-फट गया है। तीसरी चौकी पर वे दो पृथक् प्रज्ञापन हैं जो धौलि में मिले हैं। ये प्रज्ञापन उतनी सावधानी से उत्कीर्ण नहीं किये गये जितनी सावधानी से अन्य दो चौकियों पर उत्कीर्ण किये गये हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(आ) पृथक् कलिंग प्रज्ञापन

धौलि और जौगड़ा में सामान्य प्रज्ञापन माला के बारहवें और तेरहवें प्रज्ञापनों के स्थान पर अंतों (सीमान्तनिवासियों) का प्रज्ञापन और जनपद निवासियों का प्रज्ञापन हैं।

(इ) गौण शिला प्रज्ञापन

पहले-पहल इन प्रज्ञापनों की सिर्फ तीन प्रतियों का पता चला था और उन्हें हम तीन उत्तरी प्रतियां कह सकते हैं। इनमें से एक सहसराम (जिला शाहाबाद, बिहार) की पूर्व की ओर चन्दनपीर चोटी के निकट एक कृत्रिम गुफा में एक चट्टान पर खुदा हुआ है—अब इसके ऊपर एक मुस्लिम पीर की समाधि बनी हुई है और उसी के नाम पर पर यह पुकारी जाती है।[1] स्मिथ ने लिखा है कि अशोक के समय में यहाँ तीर्थ की भावना से हिन्दू यात्री जाते होंगे। पर यह अनुमान मात्र है। दूसरी प्रति कैमूर पर्वत श्रृंखला की तलहटी में रूपनाथ शिला (ज़िला जबलपुर, मध्यप्रदेश) पर उत्कीर्ण है। यहां तीर्थयात्री जाते हैं जो स्थानीय देवता रूपनाथ (शिव) की पूजा करते हैं और राम, लक्ष्मण तथा सीता के नाम पर अभिहित तीन पवित्र सरोवरों में स्नान करते हैं। तीसरी उत्तरी प्रति, जो पहल-पहल कारलेयल को १८७२-७३ में मिली थी, बैराट (जयपुर राज्य, राजपूताना) नामक प्राचीन नगर के निकट, जहाँ, कहा जाता है कि पांडव

१. EC, XI. १–५ (प्रवेश)

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अपने वनवास के अन्तिम दिनों में रहे थे, हिंसगिरि नामक पहाड़ी के नीचे एकान्त में स्थित एक विशालकाय प्रस्तरखंड पर खुदी हुई है। शिला का तल खुरदरा है और ऋतु-प्रभाव से बहुत खराब हो गया है। दक्षिणी प्रतियों में से तीन का पता श्री बी० लेविस राइस ने १८९२ में लगाया था—ये तीनों मैसूर के चितलदुर्ग ज़िले में एक-दूसरी की निकटवर्ती तीन बस्तियों, सिद्धपुर, जतिंग-रामेश्वर और ब्रह्मगिरि, में जो एक प्राचीन बस्ती (संभाव्यतः प्रज्ञापनों की इसिला) के स्थान के पास हैं, खुदे हुए हैं। सिर्फ मैसूर वाली प्रतियों में से प्रत्येक में एक संक्षिप्त पूरक प्रज्ञापन है जिसमें अशोक के धम्म का सारांश दिया हुआ है। इन शिलालेखों के आविष्कार से पहली बार यह स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ कि अशोक का साम्राज्य दक्षिण में मैसूर तक फैला हुआ था। चौथी दक्षिणी प्रति मस्की गौण शिला प्रज्ञापन है जो १९१५[१] में मिला था। यह निजाम राज्य के रायचूर ज़िले में है। यद्यपि यह कटी-फटी अवस्था में है पर तो भी यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण शिला-लेख है क्योंकि अकेले इस लेख में अशोक का नाम लेकर उसे इसका जारी करने वाला बताया गया है—अन्य लेखों में जारी करने वाले का नाम प्रियदर्शी दिया गया है जो इसी राजा का दूसरा नाम है।

---

१. HAS., संख्या १, पृ० १–२।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्तंभ लेख

(अ) सात स्तंभ लेख

अशोक के उत्कीर्ण स्तम्भ साम्राज्य के बीचोंबीच, लोकप्रिय स्थानों पर होने के कारण यूरोपियनों को उनका बहुत समय से पता है।[1] इनमें से सबसे अधिक सुविदित, और यूरोपियनों की निगाह में सबसे पहले आने वाला दिल्ली (शिवालिक, या तोपरा) स्तम्भ है जो फीरोजशाह की लाट के नाम से प्रसिद्ध है। सुलतान फीरोजशाह तुग़लक के समसामयिक इतिहासकार शम्स-इ-सीराज के अनुसार, सुलतान यह स्तम्भ यमुना किनारे के तोपरा (उच्चारण भेद से तोहेरा, तामेरा नाहेरा, आदि) नामक स्थान से जो पर्वतों की तलहटी में, दिल्ली से ९० कोस था, लाया था, और उसने इसे फीरोजाबाद में कोटला के ऊपर स्थापित कराया था। इस पर सात "स्तम्भ प्रज्ञापन" हैं जबकि अन्य स्तम्भों पर सिर्फ छह हैं। सातवें प्रज्ञापन की पहली ग्यारह पंक्तियां कॉलम के पूर्वी फलक पर उत्कीर्ण हैं और शेष पंक्तियां सारे खंभे या दंड (शैफ्ट) के चारों ओर खुदी हैं। यह लेख बाद में जोड़ा हुआ है। जैसा कि इस तथ्य से स्पष्ट है कि यह अधिक पतले और कम सावधानी से बनाये गये अक्षरों में खोदा गया है और इनमें से बहुतों का रूप ढलावदार या बहावदार है।

अशोक का दिल्ली में विद्यमान दूसरा स्तंभ, शम्स-

१. C. ASR, I. ६७, ७३, १६१, २९८; V. १४३; XIV, ७८; XIV. ११०; XX II ५१. C. CII,. I. ३४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इ-सीराज के अनुसार, उसी सुलतान द्वारा मीरठ (मेरठ) से लाया गया था और "शिकार महल" के पास, जो हम जानते हैं कि आधुनिक नगर के उत्तर-पश्चिम की ओर रिज (पहाड़ी) पर बना हुआ था, स्थापित किया गया। लोगों में यह विश्वास चला आता है कि फर्रुखसियर (१७१३-१९ ई० प०) के शासन काल में बारूद के आकस्मिक विस्फोट के कारण यह स्तम्भ नीचे गिर गया था। इस गिरे हुए स्तम्भ का उत्कीर्ण अंश पहले बंगाल की एशियाटिक सोसाइटी के संग्रहालय में था। पर यह टुकड़ा बाद में दिल्ली भेज दिया गया और स्तम्भ को (१८६७ ई० प०) फिर उसकी पहले वाली स्थिति में खड़ा किया गया। इस स्तम्भ पर खुदाई बड़ी अधूरी है जो अंशतः इसके टूट-फूट जाने के कारण, और अंशतः वर्तमान टुकड़ों का तल घिस जाने के कारण अधूरी है।

इलाहाबाद स्तम्भ अब किले में ऐलनबोरो बैरक के पास है। इस पर अशोक के दो गौण प्रज्ञापन भी उत्कीर्ण हैं, और क्योंकि इनमें से एक कौशांबी के अधिकारियों के नाम है, इसलिए प्रतीत होता है कि यह स्तम्भ शुरू में उसी प्राचीन नगर में स्थापित किया गया था जो अब इलाहाबाद से लगभग ३० मील दक्षिण-पश्चिम में जमना के किनारे कोसम नाम से विद्यमान है। इस स्तम्भ पर समुद्रगुप्त की प्रशस्ति भी है। जहांगीर ने अपने मिथ्या-प्रशंसा से पूर्ण लेख द्वारा अशोक के तीसरे और चौथे प्रज्ञापनों को बुरी तरह नष्ट कर दिया है। पर उसके समय से कुछ पहले यह स्तम्भ प्रयाग ले

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आया गया था और अनुमान है कि इसे फीरोज तुग़लक यहाँ लाया था, जो हम जानते हैं कि अशोक के कम से कम दो स्तम्भ उठवाकर दिल्ली लाया था।

उत्तरी विहार के चम्पारन जिले में तीन स्तम्भों पर यह प्रज्ञापन-माला उत्कीर्ण है। लौरिया अरराज (या राधिया) स्तंभ लौरिया ग्राम के निकट अरराज-महादेव के हिंदू मंदि के दक्षिण-पश्चिम में एक मील की दूरी पर, राधिया गांव से पूर्व-दक्षिण-पूर्व की ओर ढाई मील पर और बेतिया जाने वाली सड़क पर, केसरिया स्तूप से २० मील उत्तर-पश्चिम में अवस्थित है। इस स्थान से आगे उत्तर-पश्चिम में नैपाल की ओर बढ़ने पर लौरिया नंदनगढ़ या माथिया का सुन्दर स्तम्भ दिखायी देगा——अशोक के इसी एक स्तम्भ में इसका आरम्भिक स्तंभशीर्ष (कैपिटल) अब भी कायम है। यह लौरिया नामक बड़े ग्राम के पास, माथिया से तीन मील दूर नंदनगढ़ के प्राचीन स्थान के बिलकुल निकट है——नन्दनगढ़ के विलक्षण अवशेष, डा० ब्लौच[1] के अनुसार, मौर्यकाल से पहले के हैं और इसी स्थान पर पिप्पलवन का 'कोयला स्तूप' था। १०७१ (ई० प० १६६०——१) का एक फारसी लेख, जिसमें महिउद्दीन मुहम्मद औरंगजेब बादशाह आलमगीर गाजी का नाम आता है, मीर जुमला की सेना के किसी उत्साही मुसलमान ने खोदा दीखता है——यह सेना उस समय बंगाल से लौट रही थी, और उसने इस काफिर स्मारक को गिराने के

१. ASI-AR, १९०६–७, पृ० ११९।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लिए जो यत्न किये थे, उनके चिह्न इस रूप में अब भी दिखायी देते हैं कि स्तम्भ-शीर्ष के ठीक नीचे तोप के गोले का गोल निशान है। इसके उत्तर-पूर्व में करीब बीस मील पर रामपुरवा ग्राम है जो पिपरिया गांव से लगभग एक मील उत्तर-पूर्व में है।[1] स्व० डा० स्मिथ[2] का विचार था कि चंपारन के स्तम्भ गंगा के उत्तरी तट से नैपाल घाटी को जाने वाले राजमार्ग को सूचित करते हैं।

(आ) गौण स्तंभ प्रज्ञापन

इलाहाबाद वाले स्तम्भ पर दो गौण प्रज्ञापन हैं--रानी का प्रज्ञापन और वह प्रज्ञापन जिसमें संघ में फूट डालने वाले के लिए दंड निर्धारित किया गया है। रानी के प्रज्ञापन का और कोई पाठ नहीं मिलता। पर इलाहाबाद और सांची[3] के (भोपाल राज्य में सांची के महान स्तंभ के दक्षिणी द्वार पर एक गिरे और टूटे स्तम्भ पर उत्कीर्ण) कटे-फटे पाठ के अतिरिक्त, संघ में फूट डालने पर दंड निर्धारित करने वाला प्रज्ञापन सारनाथ स्तंभ[4] पर लगभग पूर्ण रूप में खुदा हुआ है--यह स्तम्भ जो सारनाथ में वनारस से लगभग ३॥ मील उत्तर में है, १९०५ में श्री ओएर्टेल की दृष्टि में आया था।

अशोक के गौण स्तंभों में सबसे महत्वपूर्ण रुम्मिनदेई

१. वहीं, १९०७–८, पृ० १८१।

२. अशोक, पृ० १२०।

३. ए गाइड-टु सांची, पृ० ९०।

४. ASI—AR, १९०४–५, पृ० ६८।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्तम्भ है जो रुम्मिनदेई में पदेरिया से लगभग एक मील उत्तर में और नैपाल की भगवानपुर तहसील में, जो भारत के बस्ती ज़िले के उत्तर में है, भगवानपुर से २ मील उत्तर में है।[1] इस पर उत्कीर्ण स्मारक अभिलेख में कहा गया है कि शाक्य-मुनि भगवान बुद्ध का वहाँ जन्म-स्थान है। इस प्रकार यह बुद्ध का जन्म-स्थान लुम्बिनीवन है। एक ऐसा स्मारक स्तम्भ वह है जो बस्ती जिले के उत्तर में, नैपाल की तराई में, निगलीव गांव के निकट निगलीव सागर नामक तालाव के पश्चिमी तट पर मिला था। यह स्तम्भ अब उपर्युक्त अन्तिम स्तम्भ से लगभग १३ मील उत्तर-पश्चिम में अवस्थित है और इसके लेख में लिखा है कि यह कोनागमन स्तूप के स्थान पर वनवाया गया था।

गुफा लेख

वरावर और नागार्जुनी की प्रसिद्ध गुफाएं गया से ठीक उत्तर में १६ मील दूर, या सड़क के रास्ते १९ मील दूर, फल्गु नदी के वायें या पश्चिमी तट पर दो पृथक् पहाड़ियों में है[2]। बराबर पहाड़ी में चार गुफाएं हैं। उनमें से तीन की दीवार पर अशोक लिपि उत्कीर्ण है जिनमें बताया गया है कि ये गुफाएं राजा पियदसी ने आजीविकों को भेंट की थीं।

---

१. फ्यूहरर की एन० प्रोग्र० रिप० १८९४–९५, पैरा ३; JRAS, १८९७, पृ० ४२९; पृ० ३६५।

२. C. ASR, I. ४४; C. CII., I. ३०–१।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

अशोक के विभिन्न लेखों के प्राप्ति-स्थानों के बारे में इतना बताना काफी है। अब हमें उनसे सम्बद्ध अन्य प्रश्नों पर विचार करना है। पहले, जिन पत्थरों पर वे उत्कीर्ण हैं, उनके क्या रूप हैं ? अशोक उनके बारे में क्या कहता है ? स्तम्भ-प्रज्ञापन ७ के अन्त में वह शिला-स्तम्भ और शिला-फलक की चर्चा करता है। स्पष्ट है कि शिला-स्तम्भ पत्थर के स्तंभों का वाचक है और हम जानते हैं कि उसके बहुत से अभिलेख उन पर उत्कीर्ण कराये गये थे। शिला-फलक का अर्थ है पत्थर की टुकड़ियां, पर शायद भाब्रू प्रज्ञापन के सिवाय, अशोक का कोई भी लेख अब तक पत्थर की टुकड़ियों पर उत्कीर्ण नहीं मिला। सहसराम और रूपनाथ प्रज्ञापनों के अन्त में शिला-स्तंभ और पर्वत शब्द आते हैं। इनमें से पर्वत का अभिप्राय उन शिलाओं से है जिन पर न केवल उसके गौण शिला प्रज्ञापन, बल्कि चौदह शिला प्रज्ञापन भी उत्कीर्ण हैं। और, तथ्य यह है कि चौदह शिला प्रज्ञापनों के धौलि और जौगड़ा वाले पाठों में यह लिखा भी है कि वे एक पर्वत पर उत्कीर्ण कराये गये हैं। दोनों जगह पर्वत का नाम भी लिखा है, पर अब जौगड़ा प्रति वाला ही सुरक्षित है और यह है खपिंगल। इस प्रकार, हम देखते हैं कि अशोक ने अपने अभिलेख तीन वस्तुओं, अर्थात् शिलाओं, पाषाण-स्तम्भ, पाषाण-खंडों या टुकड़ियों पर उत्कीर्ण कराये।

अब हमें दूसरे इस प्रश्न पर विचार करना है : अशोक अपने लेखों के बारे में क्या कहता है ? वह उनका किन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नामों से निर्देश करता है। जिन्होंने चौदह शिला प्रज्ञापनों और सात स्तम्भ प्रज्ञापनों का अध्ययन किया है वे अच्छी तरह जानते हैं कि उसने उन्हें धम्मलिपि कहकर पुकारा है। इस पद का क्या अर्थ है? हम ऊपर देख चुके हैं कि अशोक को अपने धम्म और जीवन के सामान्य आचरण की तुलना करने का बड़ा शौक है। इस प्रकार वह विजय और धम्म विजय की, मंगल और धम्म मंगल की, दान और धम्म दान इत्यादि, की तुलना करता है। हम यह भी जानते हैं कि वह सामान्य महामात्रों और धम्म-महामात्रों में भेद करता है। यही बात धम्मलिपि शब्द के बारे में होगी और इसका प्रयोग उसने सामान्य लिपि से वैशिष्ट्य सूचित करने के लिए किया होगा। अब, लिपि शब्द लेख का वाचक है और इसका इस अर्थ में प्रयोग न केवल पृथक् कलिंग प्रज्ञापनों में अपितु सारनाथ स्तम्भ प्रज्ञापन में भी हुआ है। इस शब्द का प्रयोग, विशेषकर पिछले लेख में, विशेष महत्वपूर्ण है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि यह प्रज्ञापन अपने-आपको एक शासन या आदेश बताता है, पर तब भी यह कहता है कि इस की दो लिपियां रखी जायें—एक राजकर्मचारियों के मार्ग-निर्देश के लिए और दूसरी बौद्ध उपासकों के लिए। यहाँ लिपि का अर्थ 'अभिलेख' के सिवाय और दूसरा नहीं हो सकता। राजा के रूप में, अशोक ने लौकिक या धार्मिकेतर विषयों पर अनेक आज्ञप्तियां जारी की होंगी। और उन आज्ञप्तियों के लेख भी लिपि कहलाएंगे। और फिर, क्योंकि वह धर्म-प्रचारक भी था, इसलिए उसने धम्म की अभिवृद्धि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए भी ऐसी आज्ञप्तियां अवश्य जारी की होंगी। इसलिए इन्हें धम्मलिपि कहना सर्वथा उचित होगा। यह सत्य है कि चौदह शिला प्रज्ञापनों और सात स्तम्भ प्रज्ञापनों को ही धम्मलिपि कह कर पुकारा गया है, पर इसका यह अर्थ नहीं कि अशोक के (शायद गुफाओं वाले लेखों के अलावा) अन्य लेख धम्मलिपि नहीं थे। ये सब पुरालेख धम्म की वृद्धि और प्रचार से संबंधित अभिलेख थे और इन्हें धम्म लिपि कहना सर्वथा उचित है।

तीसरा विचारणीय प्रश्न यह है कि विभिन्न अभिलेख किस-किस समय उत्कीर्ण कराये गये। इसमें, सात स्तम्भ प्रज्ञापनों के बारे में तो हम बिल्कुल ठीक-ठीक कह सकते हैं। स्तम्भ प्रज्ञापन १ शुरू में ही कहता है कि यह धम्म-लिपि अशोक के राज्यकाल के छब्बीसवें वर्ष उत्कीर्ण करायी गयी, और स्तम्भ प्रज्ञापन ६ के अन्त में भी इस उत्कीर्ण कराये जाने का ठीक यही समय लिखा है। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं हो सकता कि इस माला के पहले से छठे प्रज्ञापन तक अशोक के अभिषेकोत्तर छब्बीसवें वर्ष में उत्कीर्ण कराये गये। जहाँ तक स्तम्भ प्रज्ञापन ७ का सम्बन्ध है जो सिर्फ दिल्ली (तोपरा) स्तम्भ पर मिलता है, हम जानते हैं कि इस अभिलेख के अन्त में इसके उत्कीर्ण कराये जाने का समय सत्ताईसवां वर्ष स्पष्ट लिखा है। इससे यह सर्वथा स्पष्ट है कि यह अन्तिम प्रज्ञापन १ वर्ष बाद उत्कीर्ण कराया गया और कि यह बाद में जोड़ा गया है। इसके बाद में जोड़े जाने का पता इस तथ्य से

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भी लगता है कि इस लेख के अक्षर पूर्ववर्त्ती छह प्रज्ञापनों के अक्षरों से सर्वथा भिन्न प्ररूप के हैं, जैसा कि हम उस स्तम्भ का उल्लेख करते हुए पहले ही बता चुके हैं जिस पर यह उत्कीर्ण है। इस प्रकार, यद्यपि इन स्तम्भ प्रज्ञापनों के तो काल के बारे में पूर्ण निश्चय है, पर दुर्भाग्य से, अन्य अभिलेखों के बारे में, यहाँ तक कि चौदह शिला प्रज्ञापनों के बारे में भी, यह बात नहीं कही जा सकती। यह सच है कि इस माला में चार विभिन्न कालों का उल्लेख है (शिला प्रज्ञापन ४, ५, ८, और १३) पर यह कहीं नहीं कहा गया कि ये सारी धम्म-लिपियां या उनका कोई भाग किसी वर्ष-विशेष में उत्कीर्ण कराया गया था। इस माला के विभिन्न भागों में विभिन्न घटनाओं के कालों का निर्देश है, उनके वास्तविक उत्कीर्णन के कालों का नहीं। इनमें से सबसे बाद की घटना अशोक के अभिषेकोत्तर तेरहवें वर्ष की है, और श्री सेनार्ट ने इसे ही चौदह शिला प्रज्ञापन उत्कीर्ण किये जाने का काल बताया है। अन्य भारतीय तथा यूरोपीय विद्वानों ने भी श्री सेनार्ट की ही बात स्वीकार कर ली है। पर इस काल को उत्कीर्ण कराये जाने का काल मानना तर्कसंगत नहीं। इससे तो यही निष्कर्ष निकालना युक्तियुक्त हो सकता है कि उस वर्ष से पहले ये उत्कीर्ण नहीं हुए, न कि यह कि सारे प्रज्ञापन अभिषेक के तेरहवें वर्ष उत्कीर्ण कराये गये। इसलिए हमें इस माला का काल स्वतन्त्र आधारों पर तय करना होगा। यदि यह निश्चित रूप से तय नहीं किया जा सकता तो हम सन्निकटतः

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसे तय करेंगे । हमें इस प्रसंग में जो युक्तिक्रम अपनाना है उसका संकेत ऊपर किया जा चुका है । स्तम्भ प्रज्ञापन ७ में सब विद्वान् उन कार्यों का संक्षिप्त विवरण दिया गया मानते हैं जो अशोक ने धम्म की वृद्धि के लिए अपने राज्य-काल के सत्ताईसवें वर्ष तक किये, और हम अभी देख चुके हैं कि इस प्रज्ञापन का यही काल है । पर इसमें उन धर्मार्थ कार्यों का कुछ भी उल्लेख नहीं जो उसने भारत में और भारत से बाहर किये और जिनका वर्णन शिला प्रज्ञापन २ में किया गया है, और न उन सफलताओं का वर्णन है जो, शिला प्रज्ञापन १३ के कथनानुसार, उसे न केवल अपने साम्राज्य में अपितु उसके पड़ोसी ग्रीक और भारतीय राजाओं के राज्यों में भी अपने धर्मप्रचार कार्यों में प्राप्त हुई थीं । अशोक की दृष्टि में ये दोनों कार्य इतने अधिक महत्त्व के हैं कि यदि उसे उस प्रज्ञापन के काल, सत्ताईसवें वर्ष, से पहले उनका पता होता तो वह स्तम्भ प्रज्ञापन ७ में उनका उल्लेख करने से कभी न चूकता । इसलिए हमें यह अनुमान करना पड़ता है कि शिला प्रज्ञापन २, और १३, और असल में तो समस्त चौदह शिला प्रज्ञापन, सात स्तम्भ प्रज्ञापनों के उत्कीर्ण हो जाने के बाद उत्कीर्ण कराये गये । अन्य दृष्टियों से सोचने पर भी यही निष्कर्ष निकलता है । हम ऊपर देख चुके हैं कि अपने धम्म के प्रचार के लिए अपनाये गये विविध उपायों का वर्णन करते हुए अशोक धम्म-स्तंभों के स्थापन को भी उनमें से एक उपाय बताता है । हमं यह भी देख चुके हैं कि इसके अन्त में उन्हीं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

धम्मलिपियों के बारे में वह कहता है कि मैंने पाषाण-स्तंभों और पाषाण-खंडों पर उन्हें उत्कीर्ण करने का आदेश दिया है। यहां पर्वतों या शिलाओं पर धम्मलिपियां उत्कीर्ण कराने की कोई चर्चा नहीं है। प्रतीत होता है कि अपने राज्य-काल के सत्ताईसवें वर्ष तक, जो स्तम्भ प्रज्ञापन ७ का काल है, उसे यह विचार नहीं सूझा। इससे प्रकट होता है कि उसके सब शिला-प्रज्ञापन, चाहे वे चौदह शिला प्रज्ञापन हों, चाहे गौण शिला प्रज्ञापन, सात स्तम्भ प्रज्ञापन उत्कीर्ण कराने का काम समाप्त हो जाने पर उत्कीर्ण कराये गये।

इस प्रश्न पर विचार करते हुए कि पहले चौदह शिला प्रज्ञापन उत्कीर्ण कराये गये या गौण शिला प्रज्ञापन, यह ध्यान देने योग्य बात है, जैसा कि हम देख चुके हैं, कि सहसराम और रूपनाथ के लेखों में अशोक आदेश देता है कि वह प्रज्ञापन उन सब स्थानों पर उत्कीर्ण किया जाए जहां कोई पाषाण-स्तंभ या कोई पर्वत हो। इससे प्रकट होता है कि शिलाओं या स्तम्भों पर लेख उत्कीर्ण कराने का विचार उसके लिए उस समय नया ही था, क्योंकि अन्यथा उसके ऐसा आदेश जारी करने में कोई औचित्य नहीं हो सकता। इसलिए यह प्रतीत होता है कि स्तम्भ प्रज्ञापन उत्कीर्ण होने के तुरन्त बाद अशोक ने गौण शिला प्रज्ञापन उत्कीर्ण कराने आरम्भ किये और उनके बाद उसने चौदह शिला प्रज्ञापन खुदवाये होंगे। जिन दिनों चौदह शिला प्रज्ञापन खोदे जा रहे थे, उन दिनों शिलाओं और स्तम्भों पर लेख उत्कीर्ण कराने का विचार

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इतना आम-फहम हो चुका था कि अशोक उनमें से किसी का भी कतई उल्लेख नहीं करता और यदि किसी ऐसी वस्तु का उल्लेख करता भी है तो वह यह सामान्य बात कहता है कि वे (चौदह) शिला प्रज्ञापन शिलाओं पर इस कारण उत्कीर्ण कराये गये हैं जिससे वे चिरस्थायी हों।

कम से कम चौदह वर्ष तक बड़े परिश्रम से धर्म-प्रचार करने के बाद अशोक को अपने धम्म-विषयक विविध विचार और उसके प्रचार के लिए किये गये विभिन्न कार्य अनश्वर पाषाण पर खुदवाने का विचार पैदा हुआ। हम पहले देख चुके हैं कि उसे यह विचार क्यों पसन्द आया[1]। उसका स्पष्टतः यही उद्देश्य था कि यदि वह अपने धर्मप्रचार-कार्यों का संक्षिप्त विवरण पत्थर पर उत्कीर्ण करा देगा तो उसके आगे आने वाले वंशज इसे देख तथा पढ़ सकेंगे और इस पर विचार कर सकेंगे, और यह उन्हें सारे संसार में धम्म-विजय करने की प्रेरणा देगा, जिसका अशोक ने इतने आडंबर के साथ आरम्भ किया था। उसकी धम्मलिपियों के विभिन्न भाग न तो चौदह शिला प्रज्ञापनों में और न ही सात स्तम्भ प्रज्ञापनों में, किसी स्वाभाविक क्रम में बंधे हुए हैं। शायद अशोक को अपने प्रचार-कार्य के विवरण को स्थायी रूप देने की इतनी जल्दी थी कि उसने अपने लेखों की माला के विभिन्न अंशों को, विना किसी उपयुक्त क्रम के, इकट्ठा कर दिया। तो भी हम इस बौद्ध सम्राट् के बड़े कृतज्ञ हैं कि उसने, उन

१. ऊपर पृ. ७०।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

विचारों, भावनाओं और प्रेरणाओं को, जिन्होंने उसकी आत्मा को विक्षुब्ध, अनुप्राणित और मार्ग-प्रेरित किया, और सबसे बढ़कर, उसे मानव जाति के न केवल भौतिक अपितु आध्यात्मिक कल्याण की भी अभिवृद्धि के लिए एक चतुर्मुखी और अविश्रान्त स्फूर्ति में परिवर्त्तित कर दिया, चिरस्थायी रूप में भावी संतति तक पहुंचाने का विचार किया और उस विचार को तत्काल कार्यरूप में परिणत कर दिया ।

ख—अनुवाद, टिप्पणियां, आदि

आरंभिक टिप्पणी

उन्नीसवीं सदी के दूसरे चरण से, अशोक के लेखों का अध्ययन बहुत से विद्वानों ने किया है। भारतीय पुरालेखशास्त्र के मार्ग-निर्माताओं, प्रिंसेप, विल्सन और बर्नोफ के परिश्रमों को १८७७ में सर एलेग्जेंडर कनिंगहम ने छोटे रूप में कौर्पस इन्स्क्रिप्शिनम इंडिकेरम, जिल्द १, के नाम से एकत्र प्रकाशित किया। पर वे अपने पाठों की सदोषता के कारण न्यूनाधिक अब उपयोग में नहीं आते। इस जिल्द के प्रकाशित होने के बाद कुछ नये लेख मिले हैं और बहुत से पुराने अभिलेखों का पठन और निर्वचन भिन्न रीति से किया गया है। १९०२ तक प्रकाशित सब प्रकाशनों के निर्देशों की पूरी सूची आर० औटो फ्रांक की 'पाली एंड संस्कृत', स्ट्रासबुर्ग, १९०२, पृ० १—५, में दी हुई है। अशोक के लेख अपने आप में एक साहित्य हैं और बहुत कम विद्वांनों ने उसके सारे

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेखों का संपादन और उन पर टिप्पणी की हैं। सिर्फ निम्न-लिखित पुस्तकें इन लेखों के विद्यार्थी के लिए साधारणतया उपयोगी होंगी।

सेनार्ट, एमिल---ले इंस्क्रिप्स्यों द पियदसी (पेरिस, दो जिल्दों में)। यद्यपि इस संस्करण में पाठों की सदोषता और बाद के आविष्कारों और गवेषणाओं का अभाव है, पर तो भी यह ग्रंथ ऐसा महत्त्वपूर्ण है कि कोई विद्यार्थी इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता।

बूलर, जार्ज---बेइट्रागे जुर एर्कलारुंग डेर अशोक---इंस्क्रिफ्टेन (लीपजिग, १९०९) ZDMG. १८८३-१८९४, से पुनर्मुद्रित। इसमें बहुत से परिष्कृत पठन और संशोधित अनुवाद, तथा उपयोगी टिप्पणियां भी दी हुई हैं। इस ग्रंथ के बिना काम नहीं चल सकता। इसका एक अंश अंग्रेजी रूप में E.I. जिल्द I, पृष्ठ १६-२० और जिल्द II, पृष्ठ २४५-२७४ तथा ४४७-७२, ASSI, जिल्द I, पृष्ठ ११४-१२५ में प्रकाशित किया गया है।

स्मिथ, वी० ए०---अशोक, दि बुद्धिस्ट एंपरर आफ इंडिया (तृतीय संस्करण, १९२०), अध्याय ४-५। पर इसमें सिर्फ अनुवाद और टिप्पणियां हैं, और अभिलेखों का मूलपाठ नहीं है। यह संकलन बड़ी सावधानी से तैयार किया गया है और बड़ा उपयोगी है।

हुल्ट्श, ई०---लेखों का नया संशोधित संस्करण, जो १९१२ में शुरू किया गया था, पर युद्ध के कारण अनिश्चित

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

काल के लिए टल गया था, अब प्रायः पूर्ण हो चुका है और शीघ्र ही विद्वानों को प्राप्त हो सकेगा। इससे पाठ और निर्वचन के अनेक विवाद-ग्रस्त मामलों के तय हो जाने की आशा है।

समय-समय पर विभिन्न विद्वानों के विभिन्न लेख प्रकाशित होते रहते हैं जिनमें अशोक के लेखों के किसी शब्द या संदर्भ पर टिप्पणियां होती हैं अथवा उनसे संबद्ध विशेष प्रश्नों की चर्चा होती है। उनकी संख्या इतनी अधिक है कि उनका यहां उल्लेख नहीं किया जा सकता, पर आगे के पृष्ठों में, जहां आवश्यकता होगी वहां उनका निर्देश किया जाएगा। टी० माइकल्सन के भी कुछ लेख हैं जो इंडो-जर्म० फोर्सखुंगेन, १९०८, १९१०, १९११; अमेरि० जर्न० फाइलौलौजी, १९०९, १९१०; और JAOS, १९११, में प्रकाशित हुए हैं। पर उनमें निर्वचन की अपेक्षा मूलपाठ सम्बन्धी आलोचना और ध्वनिशास्त्र के प्रश्नों की चर्चा अधिक है।

चौदह शिला प्रज्ञापन

(१)

अनुवाद

यह धम्मलिपि[1] देवताओं के प्रिय[2] प्रियदर्शी राजा ने लिखवायी। यहां[3] कोई जीव मारकर बलिदान न किया जाए, न कोई समाज[4] किया जाए : क्योंकि देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी समाज को बहुत बुरा समझता है। पर कुछ समाज ऐसे हैं जिन्हें देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी अच्छा समझता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पहले देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी के ही रसोई-घर के लिए प्रतिदिन हजारों जीव मारे जाते थे ५। पर अब जब यह धम्मलिपि लिखवायी गयी, रसोई के लिए सिर्फ तीन जीव मारे६ जाते थे, अर्थात् दो मोर और एक हरिण, पर वह हरिण भी प्रतिदिन नहीं मारा जाता था। ये तीन जीव भी भविष्य में नहीं मारे जायेंगे।

टिप्पणियां

१. धम्मलिपि शब्द का, जो अशोक के इस तथा अन्य बहुत से लेखों में आता है, अनुवाद कर्न ने 'धार्मिकता-प्रज्ञापन', सेनार्ट ने सिर्फ 'प्रज्ञापन' और बूलर ने 'धार्मिक प्रज्ञापन' किया है। यथार्थतः लिपि का अर्थ लेख या अभिलेख है ('आज्ञप्ति' या 'प्रज्ञापन' नहीं), और सारनाथ वाले स्तम्भ लेख में इसका सिर्फ यह अर्थ है और धम्म का अर्थ भी यहां सिर्फ 'धार्मिकता' नहीं है, बल्कि 'दान और धार्मिकता की वृद्धि करने वाले कार्य' भी है। इस शब्द का अनुवाद न करना अधिक अच्छा है। ऊपर पृ० २६९।

२. पाणिनि के ६.३.२१ पर, जो षष्ठी अलुक्-समास के बारे में है, कात्यायन का यह वार्तिक है: देवानाम्प्रिय इति च। इससे स्पष्ट है कि वार्तिककार के काल में देवानाम्प्रिय शब्दों का प्रयोग होता था और यह एक पद माना जाता था। पाणिनि के ५.३.१४ के वार्तिक भवदादि-योगः पर भाष्य करते हुए पतंजलि ने देवानाम्प्रिय को भवदादिगण में गिना है। इससे ध्वनित होता है कि इस गण के भवत्, दीर्घायुः और आयुष्मत् शब्दों की तरह देवानाम्प्रिय शब्द भी संबोधन की शुभावह रीति के रूप में प्रयुक्त किया जाता था (JBBRAS, XXI, ३९३) पर यह ध्यान देने योग्य बात है कि इतने प्राचीन काल में भी यह व्यंग के रूप में प्रयुक्त होता था, जैसा कि कात्यायन के उपरि-निर्दिष्ट वार्तिक से स्पष्ट है। पर बाद के काल में यह सदा अप्रतिष्ठाकारक

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाव का ही सूचक हो गया। (JRAS, १९०८, पृष्ठ ५०४–५).

यद्यपि शिला प्रज्ञापन ८ की कुछ प्रतियों में जिसे देवानाम्प्रिय कहा गया है, उसे ही और प्रतियों में राजानो कहा गया है, पर इन दोनों को एकार्थक मानना सही नहीं, जैसा कि वी० ए० स्मिथ ने मान लिया प्रतीत होता है (JRAS, १९०१, ४८६ और ५७७)। क्योंकि वैसा मानने पर प्रियदर्शिन् और देवानाम्प्रिय के साथ जुड़ा हुआ राजा शब्द व्यर्थ हो जाएगा। फिर, उसने देवानाम्प्रिय का जो 'हिज़ सेक्रेड मैजेस्टी' अनुवाद किया है, वह भी नहीं जंचता, क्योंकि 'हिज़ सेक्रेड मैजेस्टी' पदावलि का प्रयोग किसी धार्मिक संस्थान के अध्यक्ष, यथा यूरोप के पोप, या भारत के शंकराचार्यों के लिए तो उपयुक्त हो सकता है, पर साधारण तौर से एक लौकिक (सिक्युलर) राजा के लिए इसका प्रयोग उपयुक्त नहीं हो सकता।

३. कुछ लोगों ने 'इह' शब्द का अर्थ 'यहां' अर्थात् इस लोक में, और कुछ ने 'यहां, अर्थात् पाटलिपुत्र में' किया है। पर इसका अर्थ उसका 'प्रासाद और राजकीय संस्थान' होना चाहिए क्योंकि इस प्रज्ञापन में उल्लिखित और सब बातें अशोक से व्यक्तिगत रूप से या उसके राज-परिवार से सम्बन्धित हैं। इसलिए यह माना जा सकता है कि उसने अपने सारे साम्राज्य में जीव-बलि का निषेध न किया होगा, बल्कि सिर्फ अपने और अपने परिवार के प्रसंग में किया होगा।

४. समाज शब्द का वास्तविक भाव विद्वानों को पहली बार तब पता चला जब यह पहली बार JBBRAS., XXI, ३९५ आदि, में बताया गया। इसी विषय पर मेरी एक और विस्तृत टिप्पणी IA १९१३, २५५ आदि, में है। समाज के यथार्थ स्वरूप के बारे में हमारी कुछ ज्ञान-वृद्धि हाल में एफ० डब्लू० टामस ने JRAS, १९१४, ३९२-४, और ७५२ में की है। एन० जी० मजूमदार, IA, १९१८, पृष्ठ २२१–३, भी देखिए। इस शब्द का अर्थ सेनार्ट ने 'आनंदोत्सव

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सभा' (IA, IX. २८६), पिशेल ने 'हांके द्वारा शिकार' (गौट० जेल, अंज०, १८८१, पृ० १३२४), और बूलर ने 'उत्सव सभा' (EI,II. ४६६) किया है। पर इनमें से कोई भी विद्वान अपने अर्थ को किसी साहित्यिक साक्ष्य से प्रमाणित न कर सका था और न यह बता सका था कि क्यों अशोक ने अपने जीव-हत्या-निषेधक एक लेख में कुछ समाजों को निन्दनीय और कुछ को प्रशंसनीय ठहराया है। यह बात ऊपर पृ० २२ और १३८ पर स्पष्ट की जा चकी है।

५. प्रश्न यह पैदा होता है कि यह लेख उत्कीर्ण होने से पहले अशोक के रसोईघर में प्रतिदिन हजारों जीवों का वध क्यों होता था। इस प्रसंग में देखिए IA, १९१३, पृ० २५५ आदि, और ऊपर भी, पृ० २२–३

६. यहां साधारण भूतकाल का रूप आरभिसु (=आर्रभिसु) और पूर्णभूत का रूप आरभरे (=आरभिरे) बिना किसी अर्थभेद के प्रयुक्त किये गये हैं। यह पूर्ण भूत का रूप मनोरंजक है क्योंकि यह साहित्यिक पालि में नहीं मिलता। पर प्रतीत होता है कि यह लोक-भाषा से लुप्त नहीं हो गया था। शिला प्रज्ञापन ८ (गिरनार प्रति) में पूर्ण रूप अयाय भी ध्यान देने योग्य है।

(२)

अनुवाद

देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी के राज्य में सब स्थानों पर, तथा उसके सीमान्तवर्ती राजाओं, यथा चोड़[1], पांड्य, सातियपुत्र, केरलपुत्र और ताम्रपर्णी, योन (ग्रीक) राजा अन्तियोक (एंटियोकस) और अंतियोक के पड़ोसियों,[2] के राज्यों में भी सब स्थानों पर देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी ने दो प्रकार की चिकित्सा[3] —अर्थात् मनुष्यों के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लिए उपयोगी और पशुओं के लिए उपयोगी चिकित्सा-- का प्रबन्ध किया है । मनुष्यों और पशुओं के लिए उपयोगी औषधियां जहां-जहां नहीं हैं, वहां-वहां वे लाकर लगवायी गयीं। जहां-जहां फल और मूल नहीं होते थे, वहां पर वे भी लाकर लगवाये गये । मार्गों में मनुष्यों और पशुओं के सुख के लिए कुएं खुदवाये गये और वृक्षादि लगवाये गये ।

टिप्पणियां

१. ऊपर पृ० ३९ । पांडिय (पांड्य) के लिए CL, १९१८, पृ० १०–१, भी देखिए।

सातियपुत्र के बारे में, आर० जी० भंडारकर ने इस तथ्य की ओर ध्यान खींचा है कि दक्षिण के पठार के पश्चिमी भाग के साथ-साथ कुछ मराठे, कायस्थ और ब्राह्मण परिवार हैं जिनका अल्ल सातपुते है जो इस लेख में आये सातियपुत्र शब्द से व्युत्पन्न प्रतीत होता है। इसलिए सातियपुत्र का स्वतन्त्र राज्य पश्चिमी घाटों के साथ-साथ और नीचे कोंकण तट तक रहा होगा (इंड. रिव्यू, १९०९, पृ० ४०१ आदि)। पर बूलर सातिय शब्द से सातवतो का ग्रहण करता है जिनका उल्लेख ऐतरेय ब्राह्मण ८.१४ में है और जो पाणिनि के ५. ३. ११७ में निर्दिष्ट परश्वादिगण के अन्तर्गत है (बेइट्रागे जुर एर्कलारुंग डेर अशोक-इंस्क्रिफ्टेन, पृ० १३ आदि)। वी० ए० स्मिथ मानता है कि सत्यपुत्र या तो तुलुव देश है और या सत्यमंगलम के आस-पास का प्रदेश है (EHI, १६३, १८५ टि०, ४५९; अशोक, पृ० १६१) । श्री एस० वी० वेंकटेश्वर इसे 'उस देश या जाति का नाम' मानते हैं जिसकी राजधानी कांचीपुरम थी' (JRAS, १९१८, पृ० ५४१–२; I. A., १९१९, पृ० २४) एस० कृष्णस्वामी अय्यंगार के अनुसार, सातियपुत्र शब्द कोचीन के उस प्रदेश का निर्देश करता है जिसमें मातृक (मैट्रियार्कट) या अलिय-

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

संतानम कानून प्रचलित है (बिगनिंग्स आफ साउथ इंडिअन हिस्ट्री, पृ ७३; JRAS, १९१९, पृष्ठ ५८१ आदि)। एक और विचार के लिए, देखिए ऊपर पृ० ४२–४४।

तांबपंनी का अर्थ बहुत समय तक श्रीलंका माना जाता रहा। पर हाल में ई० हुल्ट्श (स्मिथ, IA, १९१८, पृ० ४८ आदि) ने इसे ताम्रपर्णी नदी का वाचक मानने का प्रस्ताव किया है, जो प्राचीन पांड्य राज्य और आधुनिक तिन्नेवेलि जिले में से बहती है। पर यदि तांबपंनी इस प्रज्ञापन में नदी का वाचक होता तो इसका उल्लेख केरलपुत्र के बाद न होकर पांड्य के बाद होता क्योंकि यह नदी भारत की तथा इस राज्य की सीमा बनाती थी। इसी प्रकार शिला प्रज्ञापन १३ में अशोक का पांड्यों से अलग 'ताम्रपर्णी के लोगों' का निर्देश करना उपयुक्त नहीं, क्योंकि पांड्यों में ताम्रपर्णी के लोग तो शामिल थे ही। इसलिए पहले वाली स्थापना ही मान्य है।

२. बूलर सामन्त का अर्थ 'अधीन राजा' करता है। गिरनार वाली के अलावा और सब प्रतियों में यही पाठ है, पर इसमें सामीपम् है। इससे ध्वनित होता है कि यहां सामंत का अर्थ 'पड़ोसी या सीमावर्ती' होना चाहिए––और चाइल्डर की पालि डिक्शनरी में इस शब्द का ठीक यही अर्थ दिया है।

३. सेनार्ट चिकिच्छा का अर्थ 'औषधियां' करता है और बूलर 'आतुरालय (हास्पिटल)' करता है। इसका अर्थ 'इलाज' अधिक उपयुक्त है। इस संदर्भ को अच्छी तरह समझने के लिए देखो ऊपर, पृ० १८५–७।

(३)

अनुवाद

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी ऐसा कहता है :––
अपने अभिषेक के बारहवें वर्ष मैंने यह आज्ञा जारी की :––

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मेरे राज्य में सब जगह युक्त[1], रज्जुक[2] और प्रादेशिक[3] प्रति पांचवें वर्ष अन्य कार्यों के साथ-साथ यह (धर्मानुशासन) बताने के लिए भी दौरा करें[4] "माता पिता की सेवा करना अच्छा है, मित्रों, परिचितों और सम्बन्धियों, ब्राह्मणों और श्रमणों[5] के प्रति उदार होना अच्छा है, जीवों का न मारना अच्छा है, थोड़ा ही व्यय और थोड़ा ही संचय करना[6] अच्छा है।" (मंत्रि) परिषद युक्तों को इस (व्यय और संचय) का, शब्दों और भावनाओं, दोनों के अनुसार, हिसाब रखने के बारे में आज्ञा दे।[7]

टिप्पणियां

१. सेनार्ट ने युक्त को राजुक और प्रादेशिक से पृथक कर लिया है और इसका अर्थ 'श्रद्धालु' किया है। पर बूलर इसे राजुक का विशेषण मानता है और इसका अर्थ 'निष्ठावान्' करता है। जैसा कि पहले सेनार्ट ने संकेत किया था, IA, १८९१, २४६, टि० ५०) गिरनार वाली प्रति में तीन बार 'च' शब्द होने से बूलर का युक्त शब्द का अनुवाद अनुपयुक्त हो जाता है। यह शब्द स्पष्ट रूप से कर्तृ कारक माना जाना चाहिए, और राजुकों और प्रादेशिकों की तरह, युक्त भी अफसर थे। युत (युक्त) के ठीक भाव के लिए देखिए ऊपर, पृ० ५४—५५। जात., जिल्द ५, पृ० ११७, V. २०)

२. राजुकों के लिए, देखिए ऊपर, पृ० ५६—७। पर जायसवाल राजुक शब्द को राजन् से व्युत्पन्न मानता है और इसका अर्थ "शासक या शासक-मंत्री, सारे साम्राज्य में वास्तविक प्रशासन-शक्ति से युक्त परिसा की समिति" करता है (JBORS, १९१८, पृ० ४२)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३. कर्न के अनुसार, प्रादेशिक एक स्थानीय गवर्नर था, और सेनार्ट इससे सहमत प्रतीत होता है। बूलर इस शब्द का अर्थ "अधीन राजा" करता है और उन्हें आजकल के ठाकुरों, रावों और रावलों, आदि का पूर्वज मानता है। क्योंकि प्रादेशिक युक्तों और रज्जुकों के साथ रखे गये हैं, इसलिए वे अशोक के अफसर ही रहे होंगे, उसके अधीन राजा नहीं। यह बात इस तथ्य से भी मेल खाती है कि उन्हें भी अन्य अफसरों की तरह दौरे पर जाना पड़ता था, और दौरों में अपने अन्य राजकार्य के अलावा, धर्मप्रचार भी करना पड़ता था। इसलिए इसकी जो व्याख्या एफ० डब्लू० टामस ने की है वही इस समय सर्वोत्तम मानी जाती है (JRAS १९१४, पृ० ३८३–६; १९१५, पृ० ११२)। ऊपर भी देखिए, पृ० ५५–५६।

४. कर्न, और उसी के अनुसार बूलर, अनुसंयानम् का अर्थ 'निरीक्षण के दौरे पर' करता है। यह सही प्रतीत होता है, और बूलर ने इसके समर्थन में, सेंट पीटर्सबर्ग डिक्शनरी की सहायता से ब्राह्मण साहित्य में से प्रमाण उद्धृत किया है। इस अर्थ के पक्ष में पालि ग्रन्थों के प्रमाणों की भी कमी नहीं। उदाहरण के लिए देखिए, मज्झिम-निकाय, जिल्द ३, पृ० ८, पंक्ति १९; पृष्ठ १७४, पंक्ति ५ और १७। पर सेनार्ट इसका अर्थ 'सभा' करता है। पर यह अर्थ प्रथम तो इस कारण असंभाव्य प्रतीत होता है कि इस अर्थ के पक्ष में कोई प्रमाण नहीं। दूसरे जो निष्क्रम क्रिया अधिकतर प्रतियों में है, उसका कर्म कोई भौतिक वस्तु होनी चाहिए। इस प्रकार हम 'अनुसंयानं नियंतु' तो कह सकते हैं पर 'अनुसंयानं निखमंतु' नहीं कह सकते। हम 'सभां निष्क्रान्तः' प्रयोग अवश्य करते हैं, पर इसी अर्थ में करते हैं कि 'वह सभा-भवन चला गया', इस अर्थ में नहीं करते कि 'वह सभा में गया या शामिल हुआ।' तीसरे, अनुसंयानम् शब्द पृथक् जौगड़ा प्रज्ञापन में आता है पर उसकी धौलि वाली प्रति में नहीं आता। यदि इसका अर्थ सभा है, जैसा कि श्री सेनार्ट मानते हैं, तो इतना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महत्वपूर्ण शब्द किसी भी प्रति में छूट क्यों गया, पर अगर इसका अर्थ सिर्फ 'दौरा या निरीक्षण दौरा' है तो वही भाव निष्क्रम् क्रिया के प्रेरणार्थक रूप से निकल आता है और अनुसंयानम् शब्द का प्रयोग परमावश्यक नहीं रहता। यही शब्द बसढ़ में मिली एक मुहर पर भी पढ़ा गया है, जिसके लेख को मैंने 'वेसालि अनुसंयान कटकारे' [वेसालि (अफसरों) के दौरा कंप से] (ASI. AR, १९१३–१४, पृष्ठ १११ आदि और प्लेट एल) पढ़ा है। जायसवाल अनुसंयान का अर्थ "पद से हटना या सरकारी तबादले पर जाना" करता है और शुक्रनीति का एक प्रमाण पेश करता है, पर वह इस शब्द के इस अर्थ के पक्ष में नहीं है, बल्कि अफसरों का तबादला करने की वांछनीयता के पक्ष में है (JBORS १९०८, पृ० ३६–४०) ।

५. यह एक द्वन्द्व समास है जिसका अर्थ है ब्राह्मण और श्रमण संप्रदायों के सन्यासी और साधु । देखो ऊपर, पृ० १६९–७०

६. 'अपव्ययता अपभांडता साधु' का सेनार्ट ने यह अनुवाद किया है : "व्यर्थ व्यय और वाणी की उग्रता से बचना अच्छा है।" बूलर अपव्ययता को छोड़ देता है । उसके अनुसार, 'अपभांडता साधु' का अर्थ है "नास्तिक आदमियों की भर्त्सना से दूर रहना अच्छा है।" ये दोनों विद्वान् इन दो शब्दों के पहले भाग 'अप' को 'अप' उपसर्ग का 'अभावार्थक' प्रयोग समझते हैं। मैं टामस के इस विचार से सहमत हूं कि (उस द्वारा बताये हुए कारणों से) यह 'अल्प' का तुल्यार्थक है (IA १९०८, पृ० २०) । यदि भांड शब्द को हम भंड भर्त्सनायाम् से व्युत्पादित करें तो निःसंदेह इसका अर्थ भर्त्सना या वाणी की उग्रता होगा, जैसा बूलर और सेनार्ट ने लगाया है; पर क्योंकि अपभांडता अपव्ययता के निकट रखा है, अतः भांड शब्द का इस तरह अर्थ करना चाहिए कि जैसे बहुव्ययता एक पराकाष्ठा है वैसे ही बहुभांडता दूसरी पराकाष्ठा हो। यह तभी हो सकता है जब भांड का अर्थ 'वस्तुएं, संपत्ति' किया जाए। इस

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्रकार अपभांडता का अर्थ है 'अल्प संचय', जैसे अपव्ययता का अर्थ है 'अल्प व्यय ।'

७. यह अशोक के लेखों के सबसे जटिल संदर्भों में से है। सेनार्ट का निर्वचन : "सिद्धान्तों और परिभाषाओं की अधिक विस्तृत शिक्षा निष्ठावानों को देना संघ का कार्य है।" थोड़ा रूपान्तर करके इसे इस प्रकार कह सकते हैं :— "विस्तार से (नैतिकता और इसके विविध नियमों का) आधार और स्वरूप समझाना (अर्थात् सूत्रों के अनुसार और निर्धारित क्रम से समझाना) संघ का कार्य है।" बूलर के अनुसार इस संदर्भ का अर्थ यह है : "तथाच, सब सम्प्रदायों के शिक्षक और साधु, भगवान की उपासना में, शब्दों और भावों के अनुसार जो उचित है, उसकी शिक्षा देंगे।" अब हमें इस संदर्भ का ठीक भाव समझने का यत्न करना चाहिए। पहले तो, यहां युत शब्द का क्या अर्थ है ? स्पष्ट है कि यहां भी इसका वही अर्थ होना चाहिए जो इस लेख में अन्यत्र है। हम देख चुके हैं कि क्योंकि युतों का उल्लेख रज्जुकों और प्रादेशिकों के साथ है जो अफसर थे, इसलिए वे भी एक प्रकार के अफसर ही थे; और हम यह भी देख चुके हैं कि वे किस प्रकार के अफसर थे। इससे 'निष्ठावान्' और 'जो उचित है' अर्थ, जो सेनार्ट और बूलर ने इस शब्द के किये हैं, खंडित हो गये। दूसरे, परिसा शब्द का, जिसे सेनार्ट ने संघ या भिक्षुमंडल का वाचक, और बूलर ने 'संप्रदायों के शिक्षक और साधु' का वाचक माना है, क्या अर्थ है ? यह ध्यान देने योग्य बात है कि परिसा शब्द शिला प्रज्ञापन ६ में भी आया है, और हम आगे चलकर देखेंगे कि वहां इसका अर्थ 'मंत्रि-परिषद्, है जैसा कि जायसवाल ने निश्चित रूप से सिद्ध कर दिया है। यह अर्थ यहां बिल्कुल ठीक बैठता है क्योंकि मंत्रि परिषद का ही युक्तों को आदेश जारी करना उचित हो सकता है । अब 'गणना' शब्द रह गया जिसका अर्थ है 'हिसाब करना, गिनना'। हम देख चुके हैं कि अशोक अपने अफसरों से अल्पव्ययता और अल्पभांडता के गुणों का उपदेश करने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के लिए कहता है। पर यह निर्धारण कैसे हो कि उसकी प्रजा ये उत्तम गुण सीख रही है ? इसलिए यह आवश्यक था कि उसके कुछ अफसर घर-घर जाकर निरीक्षण करें और यह हिसाब लगाएं कि प्रत्येक गृहस्थी ने कितना व्यय किया और कितनी वस्तुओं का व्यय या संचय किया। पर सब गृहस्थियों के लिए एक अपरिवर्त्तनीय नियम बनाना असंभव था। इसलिए कठिनाई पड़ने पर उन्हें मंत्रणा देने के लिए परिषद् को आदेश दिया गया था (ऊपर पृ० ६१)।

(४)

अनुवाद

--- बहुत काल बीत गया, सैकड़ों वर्षों से प्राणियों का वध, जीवों की हिंसा, संबंधियों, ब्राह्मणों तथा श्रमणों का अनादर बढ़ता ही गया। परन्तु अब देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा के धम्माचरण के भेरीनाद द्वारा धम्म की घोषणा होती है, और पहले लोगों को विमानों, हाथियों, अग्नि-स्कंधों और अन्य दिव्य रूपों के दर्शन[1] कराये जाते हैं। जैसा सैकड़ों वर्षों के अन्दर पहले कभी नहीं हुआ--आजकल देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी के धर्मानुशासन से प्राणियों की अहिंसा, जीवों की रक्षा, संबंधियों, ब्राह्मणों तथा श्रमणों का आदर माता-पिता और वृद्धजनों की सेवा, ये तथा अन्य धर्माचरण कितने ही प्रकार से बढ़े हैं। देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा इस धर्माचरण को और भी बढ़ाएगा। और उसके पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र भी इस धर्माचरण को कल्पांत[2] तक बढ़ाएंगे, और धर्म तथा शील का आचरण करते हुए धर्म के अनुशासन का प्रचार करेंगे, क्योंकि धर्मानुशासन ही श्रेष्ठ काम है और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

बिना शील वाले के लिए धर्माचरण बहुत ही कठिन है। इस धर्मानुशासन की घटती न होना, वरन सदा बढ़ती ही होना श्रेष्ठ है। इसी प्रयोजन से यह (धम्मलिपि) लिखवायी गयी है कि लोग इस उद्देश्य की वृद्धि में लगें और उसकी घटती न होने दें। अपने अभिषेक के बारहवें वर्ष देवताओं के प्रिय प्रियदर्शी राजा ने यह प्रज्ञापन लिखवाया।

टिप्पणियां

१. इस संदर्भ के अनेक निर्वचन किये गये हैं, पर उन सब निर्वचनों को इस आधार पर दो भागों में बांटा जा सकता है कि वे इन्हें स्थलीय पदार्थों का वाचक मानते हैं या आकाशीय पदार्थों का। सेनार्ट और बूलर ने पहले प्रकार का निर्वचन पसंद किया है, और कर्न ने तथा कुछ समय तक हुल्ट्श ने, दूसरा ठीक माना है (JRAS १९११, ७८५ आदि)। मैं स्वीकार करता हूं कि मुझे, अधिक स्वाभाविक होने के कारण, पहला निर्वचन मान्य प्रतीत होता है। पर इस संदर्भ का मैं जो वास्तविक अर्थ लगाता हूं, वह सेनार्ट और बूलर के अर्थ से भिन्न है, और IA, १९१३, २५ आदि, में प्रस्तुत किया गया है, और अत्यधिक हर्ष की बात है कि हुल्ट्श ने मेरा विचार स्वीकार कर लिया है (वहीं, १९१३, ६५१ आदि।)

जो विविध अनुवाद प्रस्थापित किये गये हैं, वे निम्नलिखित हैं: कर्न :—"पर अब, जब राजा देवानांप्रिय प्रियदर्शी धर्माचरण करता है, उसकी भेरी धार्मिकता का आह्वान बन गयी है और देवों के रथों की प्रतीतियां, और आकाश में स्वर्गीय हाथियों की और अग्नि-कंदुकों की और अन्य चिह्नों की प्रतीतियां, जनता को दिखायी देती हैं" (IA. V. २६१)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

सेनार्ट :—"पर अब देवताओं के प्रिय राजा पियदसी ने, धर्माचरण में निष्ठा रखते हुए, भेरीनाद (ऐसी रीति से) कराया है कि (यह) धर्म (ही) का नाद बन गया है, और लोगों को अवशेष-पात्रों, हाथियों, मशालों और अन्य स्वर्गीय दृश्यों के जलूसों की सूचना देता है । (वहीं X. ८४)

बूलर :—"पर अब, देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी द्वारा धार्मिक आचरण का परिपालन किये जाने के परिणामस्वरूप, भेरीनाद, या धर्म का नाद सुनायी पड़ा है, और जनता को देवों के रथों, हाथियों और अन्य स्वर्गीय दृश्यों के नजारे दिखाये गये ।" (EI, II. ४६७)

इस संदर्भ पर मेरा निर्वचन प्रकाशित होने के बाद हाल में ही एस० कृष्णस्वामी अय्यंगार ने समीक्षा की है (JRAS, १९१५, पृ० ५२१; IA, १९१५, पृ० २०३) । उनका अनुवाद निम्नलिखित है—"पर देवानांप्रिय प्रियदर्शी द्वारा धर्म (नैतिक नियम) अपना लिये जाने के परिणामस्वरूप भेरीनाद धर्मनाद बन गया है । जनता के लिए प्रस्तुत दृश्य, जलूसों के रथ, हाथी, अग्नि-क्रीड़ा तथा अन्य, देवों के दृश्य ।" मुझे भय है कि यह अनुवाद स्वीकार नहीं किया जा सकता, क्योंकि अञानि शब्द स्पष्ट बताता है कि अशोक अपनी प्रजा को जो विमान, हस्ती और अग्नि-स्कंध दिखाता है वे 'दिव्यानि रूपाणि' थे । इसलिए वे जलूसों के रथ, हाथी और अग्नि-क्रीड़ा नहीं हो सकते, जो लौकिक पदार्थ हैं । एफ० डब्लू० टामस ने भी अग्गि खंध का अर्थ अग्नि-क्रीड़ा किया है (JRAS १९१४, ३९५) पर यह नहीं बताया कि अग्नि-क्रीड़ा से प्रजा में धार्मिकता कैसे उत्पन्न और परिवर्धित हो सकती है ।

इस संदर्भ के विशदीकरण के लिए, ऊपर देखिए, पृ० १२५–७ और १३८–९ । मेरी उपरिनिर्दिष्ट (IA, १९१३, पृ० २५ और ११) टिप्पणी में सिर्फ विमान शब्द की संतोषजनक व्याख्या है । इसके लिए विमान-वत्थु नामक एक पाली पुस्तक की ओर ध्यान खींचा गया था । वही

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

पुस्तक हस्ती, और अगि या जोतिखंध शब्दों की भी व्याख्या करती है। इस पुस्तक से पता चलता है कि जो लोग धार्मिक जीवन बिताते हैं, उनमें से कुछ को परलोक में न केवल विमान या दिव्य महल, बल्कि हस्ती या श्वेत दिव्य हाथी भी प्राप्त होते हैं (पृ० ४, पंक्ति १; पृ०५६, पंक्ति १६ और ३५) तथा अगि या जोतिखंध, अर्थात् विद्युत के समान प्रदीप्त रूप (पृ० ; पंक्ति ९), नक्षत्र, (पृ० ७, पं० २८) या अग्नि (पृ० १२, पं० ३३) भी मिलते हैं। अञ्ञानि च दिव्यानि रूपाणि के अन्तर्गत स्वर्गीय अश्व, पोत, और विमानवत्थु पुस्तक में वर्णित ऐसे ही अन्य यान भी हैं (पृ० १२, पं० २८; पृ० ४, पं० २६)।

२. संवट-कप (=संवर्त्त-कल्प) के लिए, देखिए JRAS, १९११, पृ० ४८५, टि० १)

(५)

अनुवाद

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी यह कहता है : भलाई का काम करना कठिन है, जो प्रथम बार कोई ऐसा काम करता है, वह एक कठिन काम पूरा करता है। मैंने बहुत से भलाई के काम किये हैं। यदि मेरे पुत्र, पौत्र, तथा उनकी भी सन्तानें कल्पांत तक ऐसा करेंगी तो यह एक महान् पुण्य होगा परन्तु जो (अपने धर्म का) थोड़ा भी त्याग करेंगे वे पाप के भागी होंगे। पाप करना सरल है।[1]

प्राचीन समय से धर्म-महामात्र[2] कभी नियुक्त नहीं हुए थे। मैंने अपने अभिषेक के तेरहवें वर्ष धर्म-महामात्र नियुक्त किये हैं। वे सब धार्मिक संप्रदायों में, धर्म की रक्षा और अभिवृद्धि के लिए तथा धार्मिक लोगों[3] के हित और सुख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के लिए नियुक्त किये गये हैं। वे यवनों, कंबोजों, गंधारों[४] तथा पैतृक राष्ट्रिकों और पश्चिमी तट के अन्य लोगों के देश में, ब्राह्मणों और गृहपतियों के, जो भृत्य[५] बन गये हैं, और असहायों तथा वृद्धों के हित और सुख में रत हैं, तथा धर्मपरायण लोगों की बाधाएं[६] हटाने में (भी रत हैं)। (धन का) अनुदान करते हैं, तथा जो व्यक्ति कैद है उसकी, संतानों के बोझ, अत्याचार का शिकार या वृद्ध[७] होने के अनुसार, बाधाएं[८] हटवाते या रिहाई करवाते हैं। वे लोग यहां पाटलिपुत्र में तथा बाहर के सब नगरों में, मेरे तथा मेरे भाइयों, बहनों और अन्य संबंधियों के महलों में सर्वत्र नियुक्त हैं। ये धर्म-महामात्र मेरे सारे राज्य में धर्मयुक्त लोगों को, तथा जो धर्म में अधिष्ठित हैं, धर्म का आश्रय लेना चाहते हैं, या दान करना चाहते हैं, उनको सहायता देने के लिए नियुक्त हैं। इसलिए यह धर्मलिपि लिखवायी गयी है कि यह चिरस्थायी रहे और कि मेरी संतति (मेरा) अनुसरण करे।

टिप्पणियां

१. इस लेख के प्रारम्भिक भाग को उस जगह से अलग कर लिया जाता है, जिस जगह धर्म-महामात्रों की नियुक्ति का उल्लेख है, मानों ये दो भाग असंबद्ध हों। ऐसा करना अहेतुक है। अशोक के प्रत्येक लेख में कोई एक विचार सारे में व्याप्त है जो इसके विभिन्न भागों को जोड़े हुए है। इसलिए आरम्भिक भाग का अनुवाद इस तरह करना चाहिए जिससे यह प्रकट हो कि यह बाद वाले भाग से संबद्ध है। तदनुसार, कलान, या कल्यान का अर्थ 'अच्छा कार्य' नहीं है; बल्कि ऐहिक और पारलौकिक 'मंगल' है। अशोक कहता है कि मैंने इस तरह का बहुत

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

मंगल किया है, और अपने पुत्रों, पौत्रों तथा वंशजों को अपने पदचिह्नों का अनुसरण करने के लिए उद्बोधित करता है। वह उनसे आग्रह करता है कि वे इस कर्त्तव्य को आंशिक रूप से न करके पूरे तौर से करें क्योंकि पाप, अर्थात् ऐहिक और पारलौकिक दुष्कार्य मनुष्यों की स्वाभाविक प्रवृत्ति है । इसलिए मनुष्य को और विशेषकर राजा को, सदा सतर्क रहना चाहिए और प्रजा के प्रति अपने किसी कर्त्तव्य की उपेक्षा न करते हुए अपने पूर्ण कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए। मानसेहरा, धौलि, और कालसी वाली प्रतियों में पापे हि नाम सुपदालये वाक्य है, जिसका मेरी सम्मति में यह अर्थ है—"पाप का अच्छी तरह उच्छेद अपेक्षित है"। इसके बाद अशोक हमें बताता है कि अपनी प्रजा को कल्याण, अर्थात् ऐहिक और पारलौकिक मंगल, प्राप्त कराने की योजना में धर्ममहामात्रों की नियुक्ति भी एक सहायक है, जो प्रजा को यह दोनों प्रकार का मंगल प्राप्त कराने के लिए नियुक्त किये गये थे। कल्याण और पाप के इस वैषम्य के लिए, देखो स्तम्भ प्रज्ञापन ३।

२. बूलर ने धर्म -महामात्र शब्द का अर्थ "धार्मिक कानून का अधिष्ठाता" (EI., II. १६७) और स्मिथ ने "धार्मिक कानून का विनियामक" (अशोक, पृ० १६८) किया है। इसका अनुवाद न करना ही अधिक अच्छा है क्योंकि कोई भी अनुवाद भ्रामक होगा। अशोक के समय से पहले अनेक महामात्र हुए थे, पर वह पहला राजा था जिसने धर्म-महामात्र, अर्थात् धर्म की अभिवृद्धि के लिए महामात्र नियुक्त किये।

३. विभिन्न लेखों में 'च' शब्द का विवेकहीन प्रयोग होने के कारण, विशेषकर गिरनार वाली प्रति में धम्मयुतस के बाद इसका प्रयोग होने के कारण, इस वाक्य का गठन शिथिल हो गया है। तो भी मेरा विचार है कि यहां पर यह आशय है कि धर्म-महामात्र अशोक के राज्य में सब पासंडों और धर्मयुक्तों की देखभाल के लिए थे। पासंड के लिए, देखिए ऊपर, पृ० १७३। इस लेख में धम्मयुत शब्द तीन बार आता है,

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

और बूलर ने इसका हर बार अलग अर्थ किया है। सेनार्ट ने जो आलोचना की है उसका उत्तर देना असंभव प्रतीत होता है। (IA, १८-९१, पृ० २३९ टि० ३०) और वह इसका अनुवाद "(सत्य) धर्म में निष्ठावान" सुझाता है। पर इसका "धर्मपूर्ण, पवित्र व्यक्ति" अनुवाद अधिक अच्छा मालूम होता है। टामस इसका अर्थ "धर्म विभाग के अधिकारी" करता है (JRAS, १९१५, पृष्ठ १०२-३) और स्मिथ "धर्म-विधि के अधीन-अधिकारी" (अशोक, पृ० १७०) करता है। इस प्रकार वे इस शब्द को 'धर्म-युक्त' मानते हैं, 'धर्मयुक्त' नहीं। पर यह प्रक्रिया आपत्ति-योग्य है। पहले तो, अशोक ने धर्म-युक्तों की नियुक्ति का कहीं उल्लेख नहीं किया--यदि उसने उनकी नियुक्ति की होती तो वह उनका उल्लेख अवश्य करता, जैसे कि उसने धर्म-महामात्रों का किया है। और यह मानने के लिए कोई कारण नहीं कि इस तरह के अधिकारी अशोक के काल से पहले से ही विद्यमान थे। दूसरे, यह बात समझ में नहीं आती कि यदि धर्म-युत राजा की प्रजा न होकर उच्च राजकर्मचारी थे तो धर्म-महामात्र धर्म-युक्तों के हित और सुख के लिए क्यों चिन्तित होते और उन्हें उपदेश तक देते। तीसरे, स्तम्भ प्रज्ञापन ७ में, रज्जकों के 'धम्म-युत जन' को उपदेश देने की चर्चा है, जहां यह उन्हीं लोगों का वाचक हो सकता है जो अशोक के धम्म के अनुयायी हैं।

धर्म-महामात्र के दो प्रकार के कार्य थे--एक तो प्रजा के भौतिक सुख के सम्बन्ध में था और दूसरा आध्यात्मिक सुख के सम्बन्ध में। देखिए ऊपर, पृ० ६६ आदि; तथा पृ० १४५ आदि।

४. बूलर की सम्मति में, अपलंता के बाद विराम चिह्न है, और वह योन-कंबोज-गंधालानां को इसके पूर्ववर्त्ती पद के साथ जोड़ता है। पर मैं सेनार्ट के इस विचार से सहमत हूं कि पूर्ववर्त्ती और अनुवर्त्ती को साथ मिलाकर पढ़ना चाहिए। इसके पक्ष में IA, १८९१, पृ० २४०, टि० ३०, में योग्यतापूर्वक कारणों का प्रतिपादन किया गया है। योनों, कंबोजों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गंधारों आदि की पहचान के लिए देखिए ऊपर, पृ० ३० आदि।

५. ब्रमणिभ और इसके रूपभेद, जैसा कि बूलर ने बताया था (VOJ.XII, ७६), साहित्यिक पाली के ब्राह्मनिब्भ (ब्राह्मण-इभ्य) का समतुल्य है, जो महानारद कस्सप जातक में कम से कम तीन श्लोकों में आता है। इस समास के इब्भ शब्द की व्याख्या भाष्य, में 'गहपति' की गयी है। यह वास्तव में जिस सामाजिक वर्ग को सूचित करता है, उसके लिए, देखो ऊपर, पृ० १८४। 'भतमय' (G), भटमय (S.M. &K.), या भटिमय (D), शब्द ने पुरालेखशास्त्रियों को बहुत परेशान किया है, और इसकी अनेक व्याख्याएं की गयी हैं; 'सैनिक और योद्धा'=भट-मर्य (सेनार्ट); 'वैतनिक सेवक'=भृत-मय (बूलर); और सेवक तथा स्वामी=भट-म्-अयेसु (फ्रैंक)। मैं सिर्फ बूलर से सहमत हो सकता हूं। यहां भट का अर्थ योद्धा नहीं हो सकता। गिरनार वाली प्रति में इसका जो रूपांतर 'भत' है, उसके कारण यह अर्थ असंभव है। मय भी मर्य का समतुल्य नहीं हो सकता क्योंकि उस अवस्था में इसका र् शाहबाजगढ़ी और मानसेरा वाली प्रतियों में कायम होता। इसलिए इस शब्द को संस्कृत भृत-मय के समान मानना स्वाभाविक है। पर मैं इस शब्द को ब्रमणिभ का विशेषण मानता हूं और इस सारे का अर्थ 'ब्राह्मण और गृहपति, जो भृत्य थे' करता हूं। यहां ब्राह्मण और वैश्य वर्गों के सब व्यक्तियों से आशय नहीं है, बल्कि सिर्फ उनसे आशय है जो अनाथ और वृद्ध थे। इसमें संदेह करने की आवश्यकता नहीं कि कुछ ब्राह्मण और वैश्य इस गिरी हुई अवस्था में थे। राइस-डेविड्स लिखता है : "जगह-जगह ब्राह्मणों के कृषि करने का, और ग्वालों और गड़रियों के रूप में नौकरी करने का उल्लेख है' (बुद्धिस्ट इंडिया, पृ. ५७)। ऐसी दलित अवस्था में पड़े हुए गृहपतियों के वर्णन के लिए, देखो फिक की 'सोशल आर्गनाइजेशन', आदि, अनुवाद, पृ० २५५-६।

६. पृथक् कलिंग प्रज्ञापन १ में, अशोक अपने कुछ अफसरों को

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

चेतावनी देता है कि उसकी प्रजा के किसी व्यक्ति को 'बंधन' या 'परि-क्लेश' (पृ० ८४, पं० १) में न पड़ना पड़े। उसी प्रज्ञापन के अन्त में, अपनी चेतावनी दोहराते हुए, वह परिबोध और परिक्लेश शब्द प्रयुक्त करता है (पृष्ठ ८६, पं. ७। इस प्रकार परिबोध और बंधन प्रायः एक चीज हैं और इसका अर्थ कैद या बन्धन ही किया जा सकता है। टामस द्वारा JRAS, १९१५, पृ० ९९–१०६ में उद्धृत किये गये संदर्भों में भी यह अर्थ बहुत ठीक बैठता है। गिरनार वाली प्रति में मिलने वाले दूसरे पाठ 'परिबोध' के बारे में, उसका यह विचार सही प्रतीत होता है कि दोनों शब्दों की यह गड़बड़ी उस समय के चलन के कारण हुई है।

७. मैंने इस संदर्भ का ऐसा कोई अनुवाद नहीं देखा जिसमें इसके अनेक भागों को एक दूसरे के साथ सम्यक्तया जोड़ दिया गया हो। इस संदर्भ में धर्म-महामात्रों से किस-किस कार्य की आशा की जाती है, इसके ज्ञान के लिए देखिए ऊपर, पृ० ६७–६८।

८. इस संदर्भ के निर्वचन के बारे में मैं, कुल मिलाकर, सेनार्ट से सहमत हूं। बूलर बंधन-बधस में आये बध शब्द का अर्थ शारीरिक दंड करता है। पर सब लेखों में यह शब्द बध है, वध नहीं। 'वबरयोरभेदः' का नियम अशोक के अभिलेखों में किसी भी तरह लागू नहीं होता। यह पद संस्कृत के 'बन्धन-बद्धस्य' का समतुल्य है और इसका अर्थ है 'बंधन में बंधे हुए, अर्थात् कैदी का'। पटिविधान शब्द शिला-प्रज्ञापन ८ में '(धन का) वितरण या अनुदान' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, और बहुत ठीक बैठता है। बूलर ने अभिकर शब्द अभि + कृ धातु से बनाया है और जातक, IV. १२१, श्लोक ७२, का प्रमाण दिया है जिसमें अभिकिरति शब्द का अर्थ है 'दबा लेता है'। एक और निर्वचन के लिए, देखो JBORS, १९१८, पृ० १४४–६।

 CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(६)

अनुवाद

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी ऐसा कहता है :—— प्राचीन समय से ऐसा पहले कभी नहीं हुआ कि सब समय राजकार्य और राजकीय समाचार राजा के सामने पेश किये जाते हों। इसलिए मैंने यह (प्रबन्ध) किया है कि हर समय और हर स्थान पर, चाहे मैं भोजन कर रहा हूं, चाहे खास महल में, चाहे अन्तःपुर में, चाहे पशुशाला[1] में चाहे घोड़े की पीठ पर[2], और चाहे उद्यान में होऊं, सब जगह राजकीय प्रतिवेदक मुझे प्रजा के कार्य की सूचना दे सकते हैं। सब जगह मैं प्रजा का कार्य करता हूं। और यदि मैंने स्वयं किसी बात के जारी या उद्घोषित करने का आदेश दिया हो, अथवा यदि कोई आपाती कार्य महामात्रों पर आ पड़े, और परिषद[3] में उस पर मतभेद या अस्वीकृति हो जाए तो मैंने आदेश दिया है कि इसकी मुझे सब स्थानों पर हर समय सूचना दी जाए। राजकार्य में मैं कितना ही उद्योग करूं, पर उससे मुझे संतोष नहीं होता। क्योंकि सब लोगों की भलाई करना ही मैंने अपना उत्तम कर्त्तव्य माना है, और यह उद्योग[4] तथा राजकार्य संचालन से ही पूरा हो सकता है। सर्वलोक-हित से बढ़कर और कोई अच्छा काम नहीं है। जो कुछ पराक्रम मैं करता हूं——उसका क्या प्रयोजन है ?——जिससे मैं, प्राणिमात्र का जो ऋण मेरे ऊपर है उससे, मुक्त होऊं और उनका इस लोक तथा परलोक में हित बढ़े। यह धर्मलेख

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इसलिए लिखवाया गया कि यह चिरस्थायी रहे और मेरे पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र सब लोगों की भलाई के लिए इसी प्रकार सदा उद्योग करें। पर अत्यधिक प्रयत्न के बिना यह कार्य कठिन है।

टिप्पणियां

१. वच का ठीक अर्थ अभी स्थिर नहीं हुआ। इसका अर्थ 'गुप्त विश्राम-स्थल' (सेनार्ट), 'शौचालय' (बूलर)' और 'आड़ या टट्टी' (स्मिथ) किया गया है। स्पष्ट है कि पिछले दो ने इसे वर्चस् के समतुल्य माना है, पर इसका अर्थ तो सिर्फ' मल' होता है। जायसवाल (IA, १९१८, पृ० ५३–५५) ने ठीक लिखा है कि कोई भी बुद्धियुक्त राजा अपने अफसरों से यह नहीं कह सकता कि उसे शौचालय में राजकार्य की सूचना दी जाए" और आप कहते हैं कि 'वच' शब्द व्रज के लिए है, और शब्द के इस तरह रूपान्तरित होने की व्याख्या करते हुए बताते हैं कि शिला प्रज्ञापन १३ (शाहबाजगढ़ी) में व्रजन्ति के स्थान पर व्रचंति शब्द आता है। उन्होंने यह भी बताया है कि कौटिल्य के अर्थशास्त्र में व्रज शब्द तीन वार आया है और वहां यह "पशुओं, घोड़ों, ऊंटों आदि के रेवड़' का वाचक है। शिला प्रज्ञापन १२ में 'वचभूमिकः' या चरागाहों के अध्यक्ष अफसरों का उल्लेख है। ऊपर देखो, पृ० ५८। पर जायसवाल इसका थोड़ा भिन्न अर्थ लगाते हैं। जायसवाल की प्रस्थापना को अब पूर्ण रूप में मानने में एकमात्र आपत्ति यह है कि शाब्दिक रूपभेद की कठिनाई पूरी तरह दूर नहीं होती क्योंकि इस उदाहरण में ज के स्थान पर च सिर्फ शाहबाजगढ़ी और मानसेरा प्रज्ञापनों में मिलता है और इसलिए गिरनार तथा अन्य स्थानों के लेखों के 'वच' शब्द को 'व्रज' का स्थानीय मानना तर्कसंगत नहीं। विधुशेखर भट्टाचार्य शास्त्री भी वच को व्रज के समतुल्य मानते हैं, पर वह व्रज का अर्थ सड़क करते हैं

 CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(IA, १९२०, पृ० ५६)। उनकी सम्मति में यह उस समय के लिए है जब राजा थोड़ी देर के लिए सड़क पर घूमने गया हो।

२. बूलर विनीत को 'विनीतक' अर्थात् 'पालकी' मानता है। जायसवाल इसे कौटिल्य के विनय के समतुल्य मानता है और इसका अर्थ सैनिक अभ्यास करता है, और अपने पक्ष के समर्थन में अर्थशास्त्र का एक संदर्भ उद्धृत करता है। जायसवाल के अर्थ के विरोधी तर्क राधागोविन्द बासक ने प्रस्तुत किये हैं (IA. १९१९, पृ० १४–१५)। बासक ने यह भी बताया है कि अमरकोष (२. ८. ५५) में विनीताः साधुवाहिनः आता है, अर्थात् विनीत शब्द आसानी से चढ़ने योग्य या अच्छी तरह सधाये हुए घोड़ों का वाचक है। मेदिनी से इस अर्थ का समर्थन होता है, जिसमें लिखा है 'विनीतः सुवहाश्वे स्यात्'। उसी से वैनीतक शब्द बना है जिसका अमरकोष के अनुसार अर्थ 'परम्परा-वाहन' है। मेरी सम्मति में यह ऐसे किसी भी वाहन का वाचक है जिसमें अच्छी तरह सधाये हुए घोड़े जोड़े जाते हों। मज्झिम निकाय में, जैसा कि विधुशेखर शास्त्री (IA. १९२०, पृ० ५५) ने बताया है, कोसल के राजा पसेनदि और उसके सात रथ-विनीतों के श्रावस्ती से साकेत जाने का उल्लेख है। ये रथ-विनीत दूर-दूर पर स्थित हैं और जब दूसरे घोड़े पर पहुंचते हैं तब पहला वहां छोड़ देते हैं। यह रथविनीत क्या चीज है? वह इसका अर्थ करता है 'रथ के रूप में विनीत'। शायद इसका यह अर्थ करना अधिक ठीक है कि 'रथ के लिए सधाया गया घोड़ा'। इस प्रकार विनीत का वही अर्थ हो जाता है जो कोषों में दिया है।

३. यहां सबसे महत्वपूर्ण शब्द परिसा (परिषत्) है जिसका अर्थ "बौद्ध भिक्षु संघ" (सेनार्ट) और "किसी जाति या संप्रदाय की समिति" (बूलर) किया गया है। जायसवाल का यह विचार ही सही प्रतीत होता है कि यह कौटिल्य के अर्थशास्त्र में वर्णित मन्त्रि-परिषत् (IA, १९१३, २८२ आदि) का वाचक है। यह प्रशासन-संबंधी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रज्ञापन है और इसमें इसी अर्थ की आशा करनी चाहिए। परन्तु इस शब्द के, और इस संदर्भ के, एक और अर्थ के लिए, देखो JASB १९२०, पृष्ठ ३३१ आदि। अगला महत्वपूर्ण शब्द 'निझति' है जो स्तम्भ प्रज्ञापन ७ में भी आता है। उस शब्द का धातु मूल स्तंभ प्रज्ञापन ४ और पृथक् कलिंग प्रज्ञापन १ में भी आता है। पृथक् कलिंग प्रज्ञापन १ में इसका अर्थ निश्चित रूप से "विचार करना" है, पर स्तम्भ प्रज्ञापन ४ में 'मृदु करना, अवरुद्ध करना' है। शिला प्रज्ञापन ६ और स्तम्भ प्रज्ञापन ७ में दूसरा अर्थ अधिक ठीक बैठता है। इसलिए यहां निझति को 'अस्वीकृति' का वाचक माना जा सकता है। इस संदर्भ के पूरे अर्थ के लिए, देखो ऊपर, पृ० ६० आदि

४. बूलर ने महाभारत के शान्ति पर्व के (अध्याय ५८, श्लोक १३–१६) राजधर्म प्रकरण के श्लोक उद्धृत किये हैं जो बृहस्पति के अर्थ-शास्त्र के हैं, और जिनमें सब शासकों को उद्योग करने का आदेश दिया गया है। कौटिल्य में (पृ. ३९) भी यही विधान है।

(७)

अनुवाद

देवताओं का प्रिय प्रियदर्शी राजा चाहता है कि सब जगह सब सम्प्रदायों के मनुष्य निवास करें क्योंकि वे सब संयम और आत्मशुद्धि चाहते हैं। परन्तु भिन्न-भिन्न मनुष्य इन बातों को पूरा या थोड़ा पालन करते हैं क्योंकि भिन्न-भिन्न मनुष्यों की इच्छा और अनुराग भिन्न-भिन्न होते हैं। मनुष्य कितना भी दान करे पर यदि उसमें संयम, आत्मशुद्धि, (कृतज्ञता और दृढ़भक्ति) न हो तो वह निश्चय ही नीच है।[1]

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

टिप्पणियां

१. इस प्रज्ञापन के अन्तिम वाक्य का निर्वचन कुछ कठिन है। यह निचा या निचे शब्द के अर्थ और बल को ठीक-ठीक समझने पर निर्भर है। बूलर इसका अर्थ निम्न प्रकार करता है :—पर विनयी आदमी में, जिसके लिए बहुत उदारता भी असंभव है, आत्म-संयम, हृदय-शुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़ अनुराग प्रशंसनीय हैं।" यह अर्थ ठीक नहीं, क्योंकि पहले तो, 'निचा' का अर्थ विनयी नहीं है, 'नीच व्यक्ति' है। दूसरे, G का निचा शब्द 'निचाय' के लिए नहीं आ सकता। तीसरे, बाढं शब्द यहां क्रिया-विशेषण है, विशेषण नहीं, और इसका अर्थ 'प्रशंसनीय' कभी नहीं हो सकता। एफ० डब्लू० टामस का अनुसरण करते हुए स्मिथ यह अर्थ करता है : "जिस व्यक्ति के लिए अत्यधिक उदारता असंभव है, उसके लिए भी इन्द्रिय-संयम, मनःशुद्धि, कृतज्ञता और दृढ़ता सर्वथा अपरिहार्य हैं।" इस प्रकार टामस नैमित्तिक या आकस्मिक के मुकाबले में निचे-नित्यं अर्थात् 'स्थायी', 'अनिवार्य' अर्थ करता है । यदि यहां निचे शब्द नित्य के समतुल्य होता तो कम से कम K. D. और J में नितिअं होता। इसके अतिरिक्त, यदि यह शब्द विशेषण रूप में प्रयुक्त हुआ होता तो सब लोगों में यह 'निचा' होता जिससे इसका अपने पूर्ववर्त्ती शब्द दिढा-भतिता से मेल बैठ जाता। इस तथ्य से कि G. में निचा है और अन्य प्रतियों में निचे हैं, स्पष्ट प्रकट होता है कि यह कर्तृ-कारक में है——निचा बहुवचन में और निचे एकवचन में। G. में एकवचन यस से सम्बन्धित 'निचा' से परेशान होने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि यह गड़बड़ी अशोक के लेखों में और जगह भी है : उदाहरण के लिए शिला प्रज्ञापन ५ (G) के निम्न संदर्भ को देखिए : मम पुता च पोत्रा च परं च तेन ये मम अपचं आव संवटकपा अनुवतिसरे तथा सो सुकतं कासति, जिसमें बहुवचनांत अनुवतिसरे और एकवचनांत कासति का कर्त्ता एक ही है। अशोक का आशय यह है कि संयम और भाव-शुद्धि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसे श्रेष्ठ गुण हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को इनका अपने अन्दर विकास करना चाहिए। ये गुण, तथा अन्य नियम, प्रत्येक सम्प्रदाय सिखाता है। किसी संप्रदाय का कोई व्यक्ति इन सब गुणों को व्यवहार में लाएगा, इसमें संदेह है। पर उसके लिए इन दो गुणों को अपने अन्दर पैदा करना परमावश्यक है, जिनकी पूर्ति कितनी भी अधिक उदारता प्रदर्शित करने से नहीं हो सकती। यह प्रज्ञापन शिला प्रज्ञापन १२ का प्रतिरूप मालूम होती है जिसमें अशोक स्पष्ट कहता है कि मैं दान और पूजा को उतना महत्व नहीं देता जितना वाणी के संयम, वचगुति, और अन्य संप्रदायों के सिद्धान्तों की जिज्ञासा को देता हूं। इस प्रज्ञापन में भी अशोक दान को उतना महत्त्व नहीं देता जितना संयम को, जो वही चीज है जो वचगुति है, और भावशुद्धि को, जिसका अर्थ 'हृदय की पवित्रता' हो सकता है जिससे किसी अन्य संप्रदाय के प्रति दुर्भावना न रहे।

(८)

अनुवाद

(दीर्घ) काल से राजा लोग विहार-यात्राओं[१] पर जाया करते थे। इनमें वे शिकार तथा अन्य आमोद-प्रमोद करते थे। देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी ने अपने अभिषेक के दस वर्ष बाद संबोधि (बोधिवृक्ष) की यात्रा की। इस प्रकार धम्म यात्रा की प्रथा पड़ी। इन धम्मयात्राओं में ब्राह्मण और श्रमण भिक्षुओं के दर्शन किये जाते हैं और उन्हें सोना दान किया जाता है, जनपदवासियों से मिलना, धम्म-सम्बन्धी अनुशासन और प्रश्न करना होता है। तबसे[३] देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी को दूसरे क्षेत्र में इस प्रकार की यात्राओं में बहुत आनन्द आता है।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टिप्पणियां

१. विहार-यात्रा का वर्णन महाभारत में आता है, ऊपर पृ० १८ ।

२. यहां सबसे दुर्बोध 'अयाय संबोधि' शब्द हैं। इस संदर्भ के विविध पाठों और मेरे निर्वचन के लिए, देखिए IA, १९१३, पृ० १५९ आदि।

३. तदोपया तदौपर्यात् का समतुल्य माना गया है, जिसका अर्थ है, "तब से"। तो क्या यह, कम से कम धौलि और जौगड़ा प्रतियों में तदोपरिया नहीं होना चाहिए था ? भगे अंन का अर्थ बूलर ने 'पिछले आनंदों के वदले में' किया है ।

(९)

अनुवाद

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी ऐसा कहता है : रोगों, विवाहों[1], और पुत्रों के जन्म तथा यात्रा पर मनुष्य अनेक मंगलाचार करते हैं। इन तथा ऐसे अन्य अवसरों पर लोग अनेक मंगलाचार करते हैं। पर स्त्रियां वहुत प्रकार के (पर) क्षुद्र, निरर्थक कृत्य करती हैं। मंगलदायक कार्य अवश्य करने चाहिएं। पर ऐसे मंगल-कार्य का कोई फल नहीं होता। पर उस मंगल-कार्य का वहुत फल होता है जो धम्म-मंगल[2] होता है। उसमें दासों और सेवकों से शिष्ट व्यवहार और गुरुजनों का आदर श्रेष्ठ (समझा जाता है), प्राणियों के साथ आत्मसंयम का व्यवहार अच्छा (समझा जाता है)। ये और ऐसे अन्य कार्य धम्म-मंगल हैं। इसलिए पिता, पुत्र, भाई, स्वामी (मित्र या परिचित, यहां तक कि पड़ोसी को भी) कहना चाहिए : "यह श्रेष्ठ है, यह मंगल तब तक करते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहना चाहिए जब तक वह लक्ष्य पूरा हो। और इसके पूरा हो जाने के बाद मैं इसे फिर करूंगा।"[3]

(G., D, और J. पाठ)

और यह कहा गया है : "दान श्रेष्ठ कार्य है।" पर धम्म के दान या अनुग्रह के तुल्य कोई दान या अनुग्रह नहीं है। इसलिए मित्र, सहानुभूति रखने वाले, संबंधी या साथी को विभिन्न बातों में (एक-दूसरे को) उपदेश करना चाहिए। "यह धर्म है, यह श्रेष्ठ है इससे स्वर्ग प्राप्त किया जा सकता है।" और इसके द्वारा स्वर्ग की प्राप्ति की अपेक्षा और क्या अधिक प्राप्तव्य हो सकता है ?

(K. S. और M. पाठ)

क्योंकि प्रत्येक सांसारिक मंगल-कार्य संदिग्ध प्रकार का है। संभव है कि इससे लक्ष्य-प्राप्ति हो जाए और संभव है कि यह इस संसार में न रहे। पर यह धम्म-मंगल समय से प्रतिबंधित नहीं है। यदि यह लोक में वह लक्ष्य न भी प्राप्त कराये तो भी यह परलोक में अनन्त पुण्य प्राप्त कराता है। पर यदि यह वह लक्ष्य प्राप्त करा दे, तो दोनों यहीं प्राप्त हो जाते हैं, अर्थात् धम्म-मंगल द्वारा इस लोक का लक्ष्य और दूसरे लोक में अनन्त पुण्य की प्राप्ति का लक्ष्य पूरे हो जाते हैं।

टिप्पणियां

१. आवाह-विवाह पद के लिए देखो दीघ-नि०, १. ९९।

२. इस प्रज्ञापन के विभिन्न भागों की व्याख्या के लिए, देखो ऊपर, पृ० ११७, ११८, १८३।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३. यह सिर्फ K. S. और M में पाया जाता है (JRAS. १९१३, पृ० ६५४ आदि)।

(१०)

अनुवाद

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी यश या कीर्त्ति को कोइ बड़ी चीज नहीं मानता। इसे वह जो कुछ भी बड़ी चीज समझता है वह सिर्फ इसलिए कि वर्त्तमान और भविष्य[1] में उसकी प्रजा धर्म को सुनने और धर्म के उपदेशों का पालन करने की इच्छा करे। देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी सिर्फ इस काम में यश या कीर्त्ति चाहता है। देवताओं का प्रय राजा प्रियदर्शी जो कुछ उद्योग करता है वे सब परलोक के लिए हैं, जिससे प्रजा को कम से कम परिस्रव[2] मिले। पर जो अपुण्य[3] है वही परिस्रव है। पर अत्यधिक उद्योग[4] और त्याग के बिना यह छोटे और बड़े अफसरों[5] के लिए करना कठिन है। पर बड़े अफसरों के लिए यह अत्यधिक कठिन है।

टिप्पणियां

१. तदात्त्व=तत्काल, वर्त्तमान काल; आयति= भविष्य; दीघाय= दीर्घकाल से।

२. अप-परिस्रव की स्तम्भ-प्रज्ञापन २ के अप-आसिनव के साथ तुलना करो।

३. अपुण्य पापं या स्तम्भ-प्रज्ञापन ३ का आसिनव है।

४. मैं पहले कह चुका हूं कि अर्थशास्त्र में राजाओं और अधिकारियों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

को पराक्रम या उद्योग करने के लिए कहा गया है। और यह ध्यान देने की बात है कि अशोक भी अपने, अपने पुत्रों और पौत्रों के लिए, शिला प्रज्ञापन ६ में, या अपने अफसरों के लिए इस प्रज्ञापन में, पराक्रम की आवश्यकता बताता है। इसलिए इन दोनों प्रज्ञापनों की तुलना गौण शिला प्रज्ञापन १ से की जा सकती है।

५. यहां सिर्फ G में जन है, अन्य लेखों में इसकी जगह वग है। पर इस प्रज्ञापन के शुरू में सब लेखों में जनो है। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि G. में दूसरी पीछे वाली जगह जनो शब्द भिन्न अर्थ में है, अर्थात् 'वग' शब्द के अर्थ का वाचक, है, अर्थात् 'लोगों का वर्ग' और यह मेरी राय में 'अफसरों का एक वर्ग' है।

(११)

अनुवाद

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी ऐसा कहता है : ऐसा कोई दान नहीं है जैसा धम्म का दान, ऐसी कोई मित्रता नहीं जैसी धम्म के साथ मित्रता, ऐसा कोई सम्बन्ध नहीं जैसा धम्म के साथ सम्बन्ध। धर्म यह है कि दासों और सेवकों से अच्छा व्यवहार किया जाए, पिता और माता की श्रेष्ठ सेवा की जाए, मित्रों, परिचितों, संबंधियों, ब्राह्मणों और श्रमणों को दान दिया जाए, जीवों की हिंसा न की जाए। पिता, पुत्र, भाई, स्वामी, मित्र, परिचित, संबंधी और पड़ोसी को भी यह कहना चाहिए कि ये पुण्य कार्य हैं, इन्हें करना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य को इस लोक में भी सुख मिलता है और इससे परलोक के लिए भी अनंत पुण्य प्राप्त होता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(१२)

अनुवाद

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी सब संप्रदाय वालों का, चाहे वे त्यागी हों चाहे गृहस्थी, सबका विविध दान और पूजा से सत्कार करता है। परन्तु देवताओं का प्रिय इस दान और पूजा को इतना अच्छा नहीं समझता जितना इस बात को कि सब धार्मिक संप्रदायों के लोगों में सारतत्त्व की वृद्धि हो। पर सारतत्त्व की वृद्धि कई प्रकार[1] की है। पर इसका मूल वाणी[2] का संयम है--कैसे ?--अर्थात् लोग मौके-बेमौके अपने संप्रदाय का आदर और दूसरे संप्रदाय की निन्दा न करें। इसके विपरीत, मनुष्यों को अवसर निकाल कर दूसरे सम्प्रदायों का भी आदर करना चाहिए। ऐसा करने से अपने संप्रदाय की उन्नति और दूसरे के सम्प्रदाय का उपकार होता है। इसके विपरीत आचरण से न केवल दूसरे सम्प्रदाय का अपकार होता है, बल्कि अपने संप्रदाय को भी क्षति पहुंचती है। जो कोई अपने संप्रदाय के अनुराग के कारण, इस विचार से कि उसके अपने संप्रदाय का गौरव बढ़े, अपने संप्रदाय की प्रशंसा करता है और दूसरे के संप्रदायों की निन्दा करता है, वह वास्तव में अपने संप्रदाय को बड़ी हानि पहुंचाता है। इसलिए एक-दूसरे के धर्म को सुनने और सुनाने की इच्छा के विचार से 'समवाय'[3] प्रशंसनीय है। क्योंकि देवताओं का प्रिय चाहता है कि सब धार्मिक संप्रदाय ज्ञान से पूर्ण हों और अच्छाई पैदा करें। और जो लोग इस या उस

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

धर्म से प्रेम रखते हैं, उन्हें बता दिया जाना चाहिए कि "देवताओं का प्रिय दान या सम्मान को ऐसा नहीं मानता जैसा सब संप्रदायों के सारतत्त्व की वृद्धि और एक-दूसरे के धर्म के ज्ञान को।" इस उद्देश्य से धर्ममहामात्रों, स्त्र्यध्यक्षों, व्रज-भूमिकों[4] और अन्य अधिकारि-वर्ग की नियुक्ति की गयी है। और इसका यह फल होता है कि अपने संप्रदाय की उन्नति और धम्म का प्रकाश होता है

टिप्पणियां

१. इस प्रज्ञापन को अच्छी तरह समझने के लिए, देखो ऊपर पृ० ११० आदि।

२. वचोगुति और भतिता शब्दों के लिए, शिला प्रज्ञापन ७ से तुलना करो।

३. समवाय शब्द समव्-इ से बनता है जिसका अर्थ है 'इकट्ठे होना'। अशोक का आशय यह है कि यदि विभिन्न संप्रदायों के अनुयायी एक-दूसरे के सम्पर्क में आएंगे तो वे अपने धर्म से दूसरे धर्म की अच्छी बातें सीखेंगे।

४. इन अधिकारियों के कर्त्तव्यों के लिए देखो ऊपर, पृ० ५७ आदि।

(१३)

अनुवाद

अपने अभिषेक के आठ वर्ष बाद देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी ने कलिंग देश को विजय किया। वहां डेढ़ लाख मनुष्य कैद कर बाहर भेजे गये, एक लाख खेत रहे, और

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इससे कई गुने अधिक काल-कवलित हो गये। उसके बाद अब[1] कलिंग देश में देवताओं के प्रिय को धर्मरक्षा, धर्म-लालसा और धर्म-शिक्षण में वहुत उत्साह हुआ। यह देवताओं के प्रिय का कलिंग-विजय पर पश्चाताप है। देवताओं के प्रिय को यह देखकर बड़ा खेद हुआ कि किसी नये देश को विजय करने में कितने लोगों की हत्या, मृत्यु और कैद होती है। पर देवताओं के प्रिय को यह सोचकर और भी दुःख हुआ है कि वहां भी ब्राह्मण, श्रमण, तथा अन्य संप्रदायों के मनुष्य तथा गृहस्थ रहते हैं जिनमें वृद्धजनों की सेवा, माता-पिता और गुरुओं की सेवा, तथा मित्रों, परिचितों, साथियों और संबंधियों तथा दासों और सेवकों से उचित व्यवहार और दृढ़ अनुराग होता है। (युद्धों में) ऐसे कितने ही धार्मिक लोगों की निजी हानि, मृत्यु या प्रियजनों से दूर निर्वासन हो जाता है। और जो अपने जीवन[2] में स्थिर भी रहते हैं और अवट अनुराग रखते हैं, वे भी अपने मित्रों, परिचितों, साथियों और सम्बन्धियों के आपत्ति में पड़ने से आपद्ग्रस्त हो जाते हैं और यह आपत्ति उनकी अपनी हानि हो जाती है। यह विपत्ति सभी को भोगनी पड़ती है, इससे देवताओं के प्रिय को बहुत दुःख होता है। यवनों[3] के प्रदेश को छोड़कर और कोई ऐसा प्रदेश नहीं जहां ब्राह्मण और श्रमण समुदाय न रहते हों, और ऐसा कोई देश नहीं जहां लोग एक न एक सम्प्रदाय में विश्वास न रखते हों। कलिंग देश की विजय के समय जितने आदमी मारे गये, या मरे या कैद किये गये,

उनके शतांश या सहस्रांश को भी आज[४] देवताओं का प्रिय दुःखजनक मानता है। इतना ही नहीं, यदि कोई उसका अपकार करता है तो देवताओं के प्रिय को यथाशक्ति उसे सहना चाहिए। और वनों[५] (के वासियों) के प्रति, जो देवताओं के प्रिय के देश में हैं, वह अनुग्रता प्रदर्शित करता है और उन्हें (कुमार्ग से) रोकना चाहता है। बलवान होते हुए भी देवताओं का प्रिय पश्चात्ताप-युक्त है। (इसलिए) उनसे यह कहा जाता है—क्या? "वे लज्जित हों और उनके जीवन का नाश न किया जाएगा।" ेवताओं का प्रिय सब जीवों के लिए रक्षा, आत्मसंयम, निष्पक्षता और भद्रता की कामना करता है।

पर देवताओं का प्रिय धम्म के द्वारा प्राप्त होनेवाली विजय को सबसे मुख्य विजय समझता है। यह विजय देवताओं के प्रिय को अपने राज्य में तथा सब सीमान्त प्रदेशों में छह सौ योजन तक, जिसमें अन्तियोक नाम का यवन राजा तथा अन्य चार राजा—तुरमय, अंतेकिन, मग और अलिकसु (न्)-दर[६] हैं, तथा दक्षिण की ओर चोल, पांड्य और ताम्रपर्णी तक में प्राप्त हुई है। उसी तरह यहां राजा के राज्य में यवनों और कंबोजों में, नभपंतियों और नाभक में, वंशानुगत भोजों, आंध्रों तथा पुलिंदों में—सब जगह वे देवताओं के प्रिय का धर्मानुशासन मानते हैं। जहां देवताओं के प्रिय के दूत नहीं जाते वहां भी लोग देवताओं के प्रिय के धर्मादेशों और धर्म-विधान को सुनकर धर्माचरण करते हैं और करते

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

रहेंगे। इस प्रकार प्राप्त विजय सर्वत्र प्रेम से सुरभित होती है। वह प्रेम धर्म-विजय से प्राप्त होता है। पर वह प्रेम तुच्छ वस्तु है। देवताओं का प्रिय पारलौकिक कल्याण को ही बड़ा समझता है। और यह धर्मलेख इसलिए लिखवाया गया है कि जिससे मेरे पुत्र, पौत्र और प्रपौत्र नये देश विजय करने की इच्छा त्याग दें और जो विजय सिर्फ तीर से॰ प्राप्त हो सकती है उसमें भी वे सहिष्णुता और मृदु-दंड का ध्यान रखें, और वे धम्म-विजय को ही वास्तविक विजय समझें। यह इह-लोक और परलोक, दोनों के लिए अच्छा है। उनका प्रबल अनुराग पराक्रम से ही हो। यह इहलोक और परलोक दोनों के लिए अच्छा है।

टिप्पणियां

१. अधुना (अब) और अज (आज) से, जिसका नीचे टिप्पणी ४ में उल्लेख है, स्पष्ट प्रकट होता है कि अशोक ने कलिंग में धम्म की सोत्साह परिरक्षा की जो बात कही है वह उस समय की है जिस समय यह प्रज्ञापन प्रख्यापित किया गया।

२. संविधा का अर्थ है 'जीवन की रीति', जीवन व्यतीत करने के साधन (रघुवंश, I. ९४)। इसलिए संविहित का अर्थ 'वे लोग जो किसी जीवन-रीति में स्थिर हैं' होगा।

३. योन शब्द यवन लोगों का, और अतएव उनके प्रान्त का, वाचक है; यह प्रदेश यवन राजाओं के उस प्रदेश से अलग है जिसका इस प्रज्ञापन में आगे चलकर जिक्र है। योन प्रान्त अशोक के साम्राज्य का हिस्सा था जैसा कि शिला प्रज्ञापन ५ से भी प्रकट होता है।

४. 'अज' शब्द टिप्पणी १ के निष्कर्ष को पुष्ट करता है।

५. इस प्रान्त की पहचान के लिए देखो ऊपर, पृ० ४४–४५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh
Indian Antiquary

६. इन तथा बाद वाले नामों के लिए, देखो ऊपर पृ०३० आदि। अ-शशु के एक और निर्वचन के लिए देखो IA, १९१८, पृ० २९७।

७. सरसके = शर-शक्यः (तीरों द्वारा संभव) शयकशि = शल्याकर्षि, जिसका लगभग वही अर्थ है। संभाव्यतः अशोक का यह आशय है कि यदि विद्रोह हो जाए और उसे शस्त्रों द्वारा दबाना पड़े तो उस अवस्था में उसके उत्तराधिकारियों को अधिकतम सहिष्णुता से काम लेना चाहिए और न्यूनतम दण्ड देना चाहिए जिससे यह प्रादेशिक विजय लगभग रक्तहीन हो।

(१४)

अनुवाद

ये धम्मलिपियां देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी ने कहीं संक्षेप में, कहीं मध्यम रूप में, और कहीं विस्तृत रूप में लिखवायी हैं। हर जगह हर चीज नहीं लिखवायी गयी। मेरा राज्य बहुत विस्तृत है, इसमें बहुत से लेख लिखवाये गये हैं और आगे भी बहुत से लिखवाऊंगा। इनमें कुछ बातें, मधुरता के कारण बार-बार लिखवायी गयी हैं। क्यों? जिससे लोग उनका अनुसरण करें। संभव है कि (इन लेखों में) देश के अपरिचित होने के कारण या संक्षेप करने में, या लिपिकार[1] के दोष से कुछ अपूर्णता रह गयी हो।

टिप्पणियां

१. अन्तिम वाक्य के अनेक अर्थ किये गये हैं। "पर संभव है कि यह कुछ चीज, स्थानाभाव के कारण, या किसी अन्य विशेष विचारणीय कारण से, या लेखक की भूल से, अपूर्ण लिखी गयी हो"—बूलर। "संभव है कि किसी वाक्य के कट जाने, या गलतफहमी, या लेखक के दोष से कोई चीज अपूर्ण लिखी गयी हो।—स्मिथ।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

स्तंभ प्रज्ञापन

(१)

अनुवाद

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी कहता है : "मैंने अपने अभिषेक के २६ वर्ष बाद यह धर्मलिपि लिखवायी। धर्म की तीव्र कामना, कठोर परीक्षा[१], अत्यधिक आज्ञापालन, अत्यधिक भय, (और) अत्यधिक उत्साह के बिना इस लोक और परलोक के सुख की प्राप्ति[२] कराना कठिन है। पर मेरे प्रयत्नों से लोगों का धर्मानुराग और प्रेम बढ़ता गया और दिन-दिन[३] बढ़ता जाएगा। और मेरे, उच्च, छोटे[४] या मध्यम अधिकारी स्वयं धर्म का पालन करते हैं, और चंचल मन वालों को धर्म के पालन की प्रेरणा करने के उपयुक्त होने के कारण, उनसे भी धर्म का पालन[५] कराते हैं। सीमान्त प्रदेशों के महामात्र भी ऐसा ही कराते हैं। इन सबके लिए आज्ञा है कि "धर्मानुसार लोगों का पोषण करो, धर्मानुसार शासन का विधान करो, धर्म के द्वारा उन्हें सुख पहुंचाओ और धर्मानुसार शासन करो।"

टिप्पणियां

१. पलिखा = परीक्षा, अर्थात् 'मेरे कार्य धर्मानुसार हैं या नहीं'। सुसूसा और भय राजा प्रियदर्शी के बारे में हैं। उत्साह के बारे में, शिला प्रज्ञापन ६ और D--JSI, I. भी देखिए। ये सब, राजा के अफसरों में होने चाहिए।

२. संपटिपादये—संप्रतिपाद्यम्। यही शब्द नीचे ८वीं पंक्ति में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संपटिपादयति के रूप में आता है। दु-संपटिपादये = 'दुःसाध्य' (बूलर) 'दुष्प्राप्य' (स्मिथ)। संपटिपादयंति—'(मेरे आदेशों का) पालन करते हैं' (बूलर), 'दूसरों को इस मार्ग पर ले जाते हैं' (स्मिथ)। स्पष्ट है कि ये दोनों विद्वान् एक ही प्रज्ञापन में दो भिन्न स्थानों पर आये एक ही शब्द के दो अर्थ करते हैं। इसके अलावा, एक जगह वे इसे साधारणतया अशोक की प्रजा का वाचक मानते हैं और दूसरे स्थान पर उसके अफसरों का वाचक मानते हैं। पर इस शब्द का ऐसा निर्वचन करना चाहिए कि दोनों स्थानों पर एक ही अर्थ हो। प्रज्ञापन के अन्तिम भाग में भी स्पष्ट है कि यहां अशोक साधारणतया अपने प्रजाजनों को संबोधित नहीं कर रहा, बल्कि अपने सब पंक्तियों के अफसरों को संबोधित कर रहा है। इसलिए संपटिपद का अर्थ (इस लोक तथा परलोक की चीजें लोगों को) "प्राप्त कराना" होना चाहिए।

सेनार्ट के अनुसार, दु-संपटिपादये = 'कठिनाई से देने योग्य" और संपटिपादयन्ति —(लोगों को) 'अच्छे मार्ग में ले जाते हैं।' उसने दोनों स्थानों पर इस शब्द को प्रेरणात्मक अर्थ में लिया है और अफसरों के लिए प्रयुक्त किया है, परन्तु एक ही अर्थ में नहीं लिया।

३. सुवे सुवे = 'प्रतिदिन' (देखो धम्मपाद, V. २२९)—सेनार्ट।

४. गेवया "संस्कृत के गेप या ग्लेप धातु से व्युत्पन्न होता है जो धातुपाठ में दैन्ये है। समतुल्य संस्कृत शब्द गेप्य-ग्लेप्य होना चाहिए था जिसका शाब्दिक अर्थ 'गरीब' या 'दुखी' है"—बूलर।

५. चपल का अर्थ है चंचल मनवाला। समादपयितवे समादापेति का अपूर्ण कालिक रूप है और समादापेति सम+दा का प्रेरणार्थक रूप है। समादपयितवे का अर्थ है "स्थायी या अस्थायी रूप से धार्मिक संकल्प अथवा कुछ या सब धार्मिक उपदेशों पर आचरण करने की प्रतिज्ञा करना" —चाइल्डर्स। वह अर्थ यहां बहुत ठीक बैठता है। अशोक का आशय यह है कि मेरे सब अफसर मेरे बताये हुए धर्म के कुछ या सब नियमों का पालन कराने के लिए चंचल मन वालों को प्रेरित करने में समर्थ हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(२)

अनुवाद

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी ऐसा कहता है : धर्म श्रेष्ठ है ? पर धर्म क्या है ? पापों [1] का अभाव, अच्छे काम करना, दया, दान, सत्य, पवित्रता । मैंने अनेक प्रकार से चक्षुदान[2] किये हैं, दोपायों तथा चौपायों पर, पक्षियों और जलीय पशुओं पर मैंने अनेक उपकार किये हैं, यहां तक कि उन्हें जीवन भी प्रदान किया । और मैंने अन्य कितने ही पुण्य के काम किये । मैंने यह धम्मलिपि इसलिए लिखवायी । है कि वे मेरा अनुसरण करें और यह चिरस्थायी[3] रहे । जो इसके अनुसार कार्य करेगा, वह शुभ कार्य करेगा ।

टिप्पणियां

१. अगले प्रज्ञापन में आसिनव शब्द पाप शब्द का साथी माना गया है । इसकी तुलना शिला प्रज्ञापन १० के परिस्रवे से की जा सकती है-- वहां यह अपुंने का समानार्थक माना गया है । इससे आसिनव की सेनार्ट द्वारा आ + स्रु से की हुई व्युत्पत्ति, बूलर की आ + स्नु से की हुई व्युत्पत्ति की अपेक्षा अधिक संभाव्य हो जाती है । इस शब्द के ठीक अर्थ के लिए, देखो ऊपर, पृ० १२७ आदि ।

२. सेनार्ट द्वारा किया हुआ 'चखुदाने' का निर्वचन 'च खु दाने' ठीक नहीं क्योंकि च और खु अव्ययों से वाक्य शुरू नहीं हो सकता, और क्योंकि पाठ में शब्दखण्डों की निरन्तरता के कारण, वे दो वाक्यों के हिस्से नहीं माने जा सकते"--बूलर । चखु--'आध्यात्मिक चक्षु'--बूलर । पर इसे भौतिक अर्थों में लेना अधिक अच्छा होगा, और संभाव्यतः यह उस दंड की क्षमा का निर्देश करता है जो 'आंख के लिए आंख' 'दांत के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लिए दांत' होता था। यह आ-पान-दखिना, 'जीवन दान तक' से ठीक मेल खाता है—बूलर, और 'उन्हें पानी देने तक भी' से नहीं मेल खाता।

३. इसकी तुलना शिला प्रज्ञापन ५ और ६ के अन्तिम भाग से करो।

(३)

अनुवाद

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी कहता है : "(मनुष्य) अपने सिर्फ अच्छे काम देखता है, (वह अपने से कहता है :) 'मैंने यह अच्छा काम किया है'[1]। वह अपना पाप कभी[2] नहीं देखता (और अपने से यह नहीं कहता) 'मैंने यह पाप किया है' अथवा 'यह सचमुच बुरा काम है।' पर यह (ऐसी चीज है) जिसमें आत्म-निरीक्षण कठिन[3] है। तो भी (व्यक्ति को) देखना चाहिए (और अपने-आपसे कहना चाहिए) :' ये (विषय-विकार) प्रचंडता, क्रूरता, क्रोध, घमंड, ईर्ष्या आदि दुर्गुण पैदा करते हैं, और उनके कारण मेरा पतन हो सकता है।[4] यह भी सदा ध्यान रखना चाहिए कि इससे मुझे इस लोक में तथा परलोक में[5] भी लाभ होगा।

टिप्पणी

१. इसकी तुलना शिला प्रज्ञापन ५ के आरम्भिक अंश से करो।

२. नो मिन = नो मनाक्, 'जरा भी नहीं, किसी भी तरह नहीं'—बूलर।

३. पटिवेख, जैसा कि सेनार्ट ने बताया है, पाली का पच्छवेक्खनम्, 'आत्म-निरीक्षण' ही है। उसने चाइल्डर्स द्वारा उस शीर्षक के नीचे उद्धृत विशुद्धि-मग्ग के एक संदर्भ का निर्देश किया है। ऊपर, पृ० १०६ आदि।

४. सेनार्ट इस्या को माने से अलग करता है और इसे इसके बाद

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वाले कालनेन शब्द से मिलाता है। पर बूलर का यह कथन ठीक है कि इस प्रकार इन्हें तोड़ना ठीक नहीं क्योंकि सब प्रतियों में दो शब्दों के बीच में जगह छोड़ी गयी है। पलिभसयिसम् में पलिभासति धातु है --बदनाम करना--सेनार्ट। बूलर इसे परिभ्रंशयिष्यामि का समतुल्य मानता है, जो अधिक ठीक है।

५. माइकल्सन ने 'मन' का अर्थ 'भी' किया है, जो ठीक है।

(४)

अनुवाद

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी ऐसा कहता है: मैंने अपन अभिषेक के छब्बीस वर्ष बाद यह धम्मलिपि लिखवायी। मैंने लाखों व्यक्तियों के ऊपर रज्जुकों को नियुक्त किया है।[१] मैंने उन्हें न्यायिक अनुसंधान और दंड[२] में स्वतन्त्र कर दिया है जिससे वे अपना कर्त्तव्य विश्वास के साथ और निर्भय होकर पूरा करें, जनपदों के लोगों का हित और सुख उत्पन्न करें और (उन पर) उपकार करें। वे सुख और दुःख के मूल कारणों का पता लगाएंगे और जनपदों के लोगों तथा निष्ठावानों[३] को प्रेरणा करेंगे, जिससे उन्हें इस लोक और परलोक में सुख मिले। रज्जुक मेरी आज्ञा का पालन करने को उत्सुक हैं।[४] और क्योंकि रज्जुक मेरी आज्ञा का पालन करना चाहते हैं इसलिए (निम्न) कर्मचारी भी मेरी इच्छाओं और आज्ञाओं[५] का अनुवर्त्तन करेंगे और कुछ (लोगों) को प्रेरणा करेंगे। जिस प्रकार मनुष्य को अपना बच्चा होशियार धाय को सौंपकर संतोष होता है (और वह अपने मन में कहता है),

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

'होशियार धाय मेरे बच्चे का पालन-पोषण करना चाहती है', उसी प्रकार मैंने जनपदवासियों के हित और सुख की कामना से रज्जुकों को नियुक्त किया है जिससे वे निर्भय और निःसंकोच होकर निर्विघ्न रूप से अपने कर्त्तव्य का पालन करें। इस कारण से मैंने न्यायिक अनुसंधान और दंड के बारे में उन्हें स्वतन्त्र कर दिया है। क्योंकि यह वांछनीय है-- क्या ? न्यायिक अनुसंधान की और दंड की एकरूपता। और मैंने यह आदेश भी दिया है: जो लोग कैद हैं, जिन्हें सजाएँ दी जा चुकी हैं और जिन्हें प्राणदंड दिया गया है उन्हें मैंने तीन दिन की मोहलत दी है जो अधिकारपूर्वक और पूरी तरह उनकी अपनी है।[६] या तो (उनके) संबंधी (इस अवधि में) उनके प्राण बचाने के लिए कुछ (रज्जुकों से) दंड कम करा सकें, अथवा (आध्यात्मिक) विनाश से बचने के लिए वे परलोक के लक्ष्य से दान दे सकें और उपवास कर सकें।[७] कारण कि मेरी इच्छा है कि कैद के दिनों में भी[८] वे परलोक के सुख के लिए यत्न कर सकें, और कि अनेक प्रकार के धार्मिक आचरणों, आत्मसंयम और उदारता की मनुष्यों में अभिवृद्धि हो।[९]

टिप्पणी

१. आयत' शब्द स्तम्भ प्रज्ञाप्ति ७ (२) पंक्ति i और SE.I पंक्ति ४ में भी आता है। सेनार्ट का यह विचार ठीक मालूम होता है कि यह आयत्त और आयुत्त शब्दों की गड़बड़ी का एक उदाहरण है।

२. अतपतिये, जो आत्मपत्य के समतुल्य है, आधिपत्य की तरह बनायी हुई संज्ञा है। बूलर के अनुसार, अभिहार का अर्थ 'सम्मान, उपहार'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है, और उसने जातक, जिल्द ५, पृ० ५०, श्लोक १४३ तथा पृ० ५९, पंक्ति २८ का निर्देश किया जिसका टीकाकार ने 'पूजा' अर्थ किया है। पर, जैसा कि सेनार्ट ने प्रदर्शित किया है, इसी प्रज्ञापन में आगे अभिहाल और दंड को वियोहाल-समता और दण्ड-समता के साथ रखा गया है। इसलिए यहां अभिहार व्यवहार का तुल्यार्थक होना चाहिए। और फिर, क्योंकि व्यवहार का दंड के साथ, और उससे वैषम्य प्रदर्शित करते हुए, उल्लेख है, इसलिए इसका अर्थ सिर्फ 'कानूनी विवाद' या 'मुकदमा' नहीं हो सकता, बल्कि 'मामले की न्यायिक प्रक्रिया, परीक्षा या अनुसंधान' होगा। अशोक के इस कथन का कि मैंने रज्जुकों को व्यवहार और दंड में स्वतन्त्र कर दिया है, आशय ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है। ऊपर, पृ० ७०–२।

अस्वथ अश्वस् से बना है और इस के बारे में एफ० डब्लू० टामस की टिप्पणी के लिए देखो JRAS. १९१५, पृ० १०६ और आगे।

३. इस प्रज्ञापन के 'धम्मयुतेन च वियोवदिसंति जनं जानपदं' की तुलना स्तंभ प्रज्ञापन ७ के 'हेवं च हेवं च पलियोवदाथ जनं धम्मयुतं' से की जा सकती है। इससे प्रकट होता है कि पहले में आये धम्मयुतेन शब्द का अर्थ "धर्म के सिद्धान्तों के अनुसार" (बूलर) नहीं हो सकता, बल्कि "उसी समय जिस समय निष्ठावान्" (सेनार्ट) अधिक ठीक है।

४. सेनार्ट लघंति का शुद्ध रूप चघंति बताता है। यह स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि सब प्रतियों में यह लघंति है। बूलर लघंति को संस्कृत 'रघंते', वे शीघ्रता करते हैं, उत्सुक हैं, का रूप मानता है। पर सेनार्ट का पटिचलंति को परिचरंति मानना सही प्रतीत होता है, जिसका अर्थ है 'सेवा करना, आज्ञा मानना'। शिला प्रज्ञापन २ के अन्त में गिरनार वाली प्रति में आये परिभोगाय शब्द की तुलना अन्य प्रतियों के पटिभोगाय से करो।

५. छंदंनानि को बूलर तत्पुरुष समास मानता है जो पुलिसानि

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

के साथ है और जिसका अर्थ छंदं जानंति--इति छंदज्ञाः, 'इच्छा को जानने वाले' है। सेनार्ट इसे द्वन्द्व 'समास छन्दश्च आज्ञा च' मानता है और पटिचलिसंति का कर्म बताता है। बूलर को इस निर्वचन पर इस आधार पर आपत्ति है कि स्त्रीलिंग 'आ' के नपुंसक 'अ' में रूपांतरित हो जाने का कोई उदाहरण नहीं मिलता। पर हम जानते हैं कि इन शिलालेखों की भाषा में लिंगों की बड़ी गड़बड़ी है। रूपनाथ गौण शिलालेख में काल शब्द विकृत होकर काला हो गया है। यह बड़ा स्पष्ट उदाहरण है, पर यह सिर्फ एक उदाहरण है, जिसमें 'पुंल्लिग 'अ' के रूप स्त्रीलिंग 'आ' की तरह बने हैं। इसी प्रकार यह क्यों न मानलें कि स्तम्भ प्रज्ञापन ४ में एक उदाहरण मौजूद है, यद्यपि यह सिर्फ एक उदाहरण है, जिसमें स्त्रीलिंग आ के रूप नपुंसकलिंग की तरह बने हैं। फिर, छन्दंनानि और सब लेखों में पुलिसानि से पृथक् है, पर कम से कम एक लेख में पटिचलिसंति से जुड़ा हुआ है। इससे पता चलता है कि छंदंनानि पटिचलिसंति का कर्म है, पुलिसानि का विशेषण नहीं। यदि सेनार्ट की प्रक्रिया को मान लें तो इसका अर्थ भी सर्वथा स्पष्ट है। यदि रज्जुक, जो बहुत ऊंचे अफसर थे, अशोक का आज्ञापालन करते हैं, तो पुरुषों अर्थात् छोटे अफसरों को तो उनका अनुसरण करना ही चाहिए। पर बूलर हमें यह मनवाना चाहता है कि पुरुष यद्यपि छोटे अफसर हैं, पर रज्जुकों को उन्हें आदर्श मानकर उनका अनुकरण करना चाहिए।

सेनार्ट चघति को चग्घति का विकार और जाग्रति का रूपांतर मानता है, जैसे पति-जग्गति, 'देखरेख करना'। ग्रियर्सन इसे चघ 'उठना, चढ़ना' धातु से व्युत्पादित करता है, जो छत्तीसगढ़ी बोली में है और इसे संस्कृत चर्घ 'जाना' से बना मानता है (JPTS, १८९१-३, पृ० २८ और आगे)। कर्न चघ क्रिया की व्याख्या हिन्दी 'चाहना' से करता है और बूलर इस विचार से सहमत है और साथ यह भी कहता है कि चाह शब्द भारत की सब भाषाओं में है और इसलिए आर्यों की प्राचीन भाषा में यह अवश्य रहा होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

६. योते शब्द को कर्न ने, ठीक ही, संस्कृत यौतुक शब्द से जोड़ा है, और यूरोपीय विद्वान् इसे 'मोहलत' के अर्थ में लेते हैं। पर यौतुक का अर्थ मोहलत नहीं होता बल्कि 'वह चीज जो एक मात्र और अधिकार-पूर्वक किसी व्यक्ति की हो' होता है। यह अर्थ यहां लागू भी हो जाता है। अशोक का आशय यह है कि जिन कैदियों को प्राणदण्ड दिया गया है, वे अधिकार के रूप में तीन दिन की मोहलत ले सकेंगे।

७. यह इस प्रज्ञापन का सबसे उलझनदार संदर्भ है। सेनार्ट : "मेरे अफसर उन्हें चेता देंगे (निझपयिसंति) कि वे न अधिक न कम (नाति-कावकानि) जीएंगे (जीविताये तानं)। अपने जीवन-काल (नासंतं) के बारे में इस तरह चेताये गये (निझपयिता) वे, अपने भावी जीवन (पालत्कं) की दृष्टि से दान (दानं) दे सकते हैं (दाहन्ति) या उपवास कर सकते हैं (उपवासं वा कियाच्छंति)।"

बूलर : "उनके संबंधी (नातिका) उनमें से कुछ को (कानि) गंभीर चिंतन कराएंगे (निझपयिसंति) और इन लोगों की जीवन-रक्षा के लिए (जीविताये तानं), या प्राणदण्ड पाये हुए (नासंतं) को गंभीर चिन्तन कराने के लिए (निझपयिता) वे परलोक की दृष्टि से दान देंगे या उपवास करेंगे।" बूलर अपने अनुवाद की व्याख्या करते हुए कहता है : "तीन दिन की मोहलत में, संबंधी लोग दंडप्राप्त अपराधियों को अपने विचार ऊंची बातों में लगाने के लिए प्रेरित करेंगे, और वे धार्मिक दान (लाजुकों को घूस नहीं) देंगे और उपवास करेंगे, और यह आशा करेंगे कि या तो दंडित व्यक्तियों के प्राण न लिये जायं, और या, जिन लोगों ने मरना है, उनके हृदय कोमल हो जाएंगे और स्वर्ग की ओर प्रवृत्त हो जाएंगे।

कुछ वर्ष पहले अपनी एम० ए० कक्षाओं के लिए मैंने इस संदर्भ का निम्न अनुवाद किया था : "उनके संबंधी उनमें से कुछ को, अपनी जीवन-रक्षा के लिए, धम्म-चिन्तन कराएंगे (निझपयिसंति) और मरने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

वालों (नासंतं) को आत्मचिन्तन कराने के लिए, वे परलोक पर दृष्टि रखकर दान और उपवास करेंगे।" उस समय मेरा आशय यह था कि अशोक ने सिर्फ उन कैदियों को मोहलत दी थी जिन्होंने मृत्यु-दण्ड मिलने पर भी, उसका धर्म अंगीकार कर लिया था। और यह भाव वही प्रतीत होता है जो JBORS. VI. ३१८ आदि, में प्रकाशित लेख में लिया गया था। पर अब मैं इस संदर्भ का और ही अर्थ करता हूं: "(उनके) संबंधी कुछ (रज्जुकों) को (प्राणदण्ड पाये हुए लोगों की) जीवन-रक्षा के लिए प्रसन्न करेंगे; या अंत, अर्थात् नाश, को टालने के लिए, वे परलोक पर दृष्टि रखते हुए दान देंगे या उपवास करेंगे।" इस बात पर बहुत कुछ निर्भर है कि हम निझपयिसंति का क्या अर्थ करते हैं। यदि हम इस शब्द को नि + ध्यै धातु से बना हुआ मानें, जैसे एफ० डब्लू० टामस ने माना है (JRAS. १९१६, पृ० १२० और आगे) तो वह निर्वचन ठीक होगा जो मैंने पहले प्रस्तुत किया है। परन्तु लूडर्स ने अयोघर-जातक (जातक, जिल्द ४, श्लोक ३३२ और ३३४) में आये हुए इस शब्द का उल्लेख किया है, जिसमें 'कोमल करना, रोकना' भाव है, और जो एक जगह तो विशेष रूप से, राजाओं द्वारा दिये गये दंड के लिए प्रयुक्त हुआ है। यह अर्थ अधिक ठीक बैठता है, और इससे संदर्भ का अधिक स्वाभाविक निर्वचन हो सकता है। अशोक इस आरोप से भी मुक्त हो जाता है कि उसने अपने धम्म के लिए न्याय के उद्देश्य को ही निराकृत कर दिया।

८. निलुधसि पि कालसि का अर्थ सेनार्ट ने "अपनी कैद के दिनों में", बुलर ने 'अपनी कैद के दिनों में भी', लूडर्स ने 'एक सीमित समय में भी' और टामस ने "यद्यपि उनका मृत्यु का समय अपरिवर्त्तनीय रूप से निश्चित है (क्योंकि उसमें निझति नहीं है)" किया है (JRAS, १९१६, पृ० १२३)। मनु, ८, ३१० से तुलना करो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

(५)

अनुवाद

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी ऐसा कहता है :-- अपने अभिषेक के छब्बीस वर्ष बाद मैंने निम्नलिखित जीवों[1] का वध निषेध किया--शुक, सारिका, अरुन[2] चक्रवाक, हंस, नंदिमुख[3], गेलाट, जतूका (Flying foxes), अंब्राकपीलिका, कच्छपी, अस्थिहीन मत्स्य, वेद-वेयक, गंगा-पपुटक, संकुजमछ, कछुआ और सेही, खरगोश जैसी गिलहरी, बारासिंगे, सांड, घर के कीट, गेंडा, श्वेत कपोत, ग्राम कपोत, और ऐसे सब चौपाये जो खाये न जाते हों[4] और अन्य किसी काम न आते हों। गर्भिणी या स्तनंधय शिशु वाली भेड़, बकरी और सूकरी और उनके छह महीने से छोटे बच्चे। मुर्गों की वध्रि न की जाए। जिस भूसे में कीड़े पड़ गये हों, वह जलाया न जाए। व्यर्थ या जीव-जंतुओं को मारने के लिए जंगल न जलाये जाएं। एक जीव को दूसरा जीव न खिलाया जाए। तीनों ऋतुओं की पूर्णिमा, और तैष की पूर्णिमा के दिन आसपास मछली न मारी जाए और न बेची जाए--अर्थात् (पखवारे के) चौदहवें और पन्द्रहवें दिन और (अगले पखवारे के) पहले दिन, और उपवासों के दिन। इन दिनों नागवन में, या मीनाशयों में, अन्य जीव भी न मारे जाएं। हर पक्ष के आठवें, चौदहवें और पन्द्रहवें दिन, तिष्य और पुनर्वसु के दिन, तीनों ऋतुओं की पूर्णिमाओं के दिन, और अन्य त्योहारों पर बैलों, मेंढों, सूअरों और अन्य जानवरों

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

की वध्रि (बधिया) न की जाए। तिष्य, पुनर्वसु और ऋतुओं की पूर्णिमाओं के दिन, और प्रत्येक ऋतु की पूर्णिमा वाले पक्ष में घोड़ों और बैलों को दागा न जाए। छब्बीस वर्ष पूर्व अपने अभिषेक के बाद के समय में मैंने पच्चीस बार बंदियों की मुक्ति करायी।

टिप्पणियां

१. जात का शब्दार्थ है 'उत्पन्न व्यक्ति'। यहां इसका अर्थ 'जीव' किया गया है।

२. अलुन एक अलग नाम माना गया है। इसे अनठिकमच्छे और संकुजमच्छे की तरह चक्रवाके का विशेषण मानना अधिक उपयुक्त है।

३. इस प्रज्ञापन में वर्णित विभिन्न जीवजातियों के सिलसिले में मनमोहन चक्रवर्ती की पुस्तिका, एनिमल्स इन दि इंस्क्रिप्शन्स आफ पियदसी, जो एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल के मेमोइर के रूप में प्रकाशित हुई है, उपयोगी है। मनु ११. १३६–७ से भी तुलना करो ध्यान देने की बात यह है कि अशोक ने जिन जीवों के वध का निषेध किया है, वे वे हैं जो न खाये जाते हैं और न किसी और काम आते हैं। इसलिए जतूका का अर्थ (बंगला) चाम्चिका (चमगादड़ की एक किस्म), करना चाहिए, जिसका मांस नहीं खाया जाता —न कि चमगादड़, जिसका मांस कम-से-कम छोटी जाति तो खाती ही है। बूलर ने अंबाकपीलिका का अर्थ माता-चींटी ठीक ही किया है, अर्थात् रानी-चींटी, संस्कृत का पिपीलिका शब्द पाली में किपिल्लिक है। दाडी = (संस्कृत) दुडी = एक विशेष प्रकार की कछुई। अनठिक—अनस्थिक—अस्थिरहित, सेनार्ट और बूलर के अनुसार, अस्थिरहित मछली एक विशेष मछली (Prawn) होती है। संकुज-मच्छे का अर्थ वह मछली है जो अपने-आपको भीतर सिकोड़ सकती है। कफट = कमठ = कछुआ (सेनार्ट) संयक = (संस्कृत) शल्यक = सेही। पन्नसस का शब्दार्थ है एक खरगोश जैसा

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

प्राणी जो वृक्षों के पत्तों में रहता है और बूलर ने इसे सफेद पेट वाली लाल गिलहरी का वाचक माना है जो पश्चिमी घाट के वनों में होती है और जिसका शरीर त्वचा हटाने पर बिल्कुल खरगोश जैसा लगता है। सिमले = सृमर = बारासिंगा। 'संडके' भाषा के सांड शब्द का वाचक है, , अर्थात् 'वह वछड़ा जो स्वतन्त्र छोड़ दिया गया है, और इसलिए अवध्य है'। ओकपिंड को सेनार्ट उक अपिंड का रूप मानता है जिनके बारे में महा-वग्ग में लिखा है कि वे भिक्षुओं की भोजन सामग्री खा जाते हैं और, बुद्ध-घोष के अनुसार, वे बिल्ली, चूहे, छिपकली और नेवले' हैं। यह अर्थ बहुत ठीक बैठता है क्योंकि ये प्राणी न खाये जाते हैं और न किसी और काम आते हैं। इसलिए उनका सिर्फ इस कारण नाश न करना चाहिए कि वे घर की वस्तुएं नष्ट करते हैं। पलसते = (पाली) पलासादो या परसतो = गेंडा (बूलर)। ऊपर, पृ० १७९ आदि।

४. पटिभोग निःसंदेह परिभोग है। यहां अशोक का "आशय उन सब प्राणियों के वध का निषेध करना है जिनकी खाल समूर, पंख आदि, काम नहीं आते, और जो खाये नहीं जाते।" ऊपर पृ० १५१ आदि।

५. चातुम्मासि (= संस्कृत चातुर्मासी, ग्रीष्म, शिशिर और शरद् ऋतुओं में से प्रत्येक का पूर्ण चं मा है। यह प्रत्येक ऋतु के पहले मास की पूर्णिमा है। तिसा पुन्नमासि तैष या पौष की पूर्णिमा है। पोसथ शब्द बौद्ध पाली उपोसथ और जैन प्राकृत पोसह का मध्यवर्त्ती है। यह ब्राह्मणों के पर्व-दिनों के समकक्ष है और प्रत्येक पक्ष के आठवें और पन्द्रहवें दिन का वाचक है। इस प्रकार पियदसी ने ५६ दिन मछली बेचने का निषेध किया। (१) तीनों ऋतुओं में से प्रत्येक के पहले महीने में, और तैष या पौष मास में छह, अर्थात् शुक्ल पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी और पूर्णिमा, और कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा, अष्टमी और अमावस्या—इस प्रकार कुल २४; (२) शेष आठ महीनों में चार, अर्थात् प्रत्येक पक्ष की अष्टमी और पूर्णिमा या अमावस्या —इस प्रकार कुल ३२। इस तरह २४ + ३२ = ५६ दिन अशोक ने मछली मारने और बेचने का निषध किया।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

६. राजा अनेक अवसरों पर बंदियों को मुक्त करते हैं। ऐसा एक अवसर राजा का जन्म-दिन है जब, अर्थशास्त्र (पृ० १४६) के अनुसार उसे उन सब कैदियों को मुक्त कर देना चाहिए जो बच्चे या बूढ़े, रोगी या असहाय हों। यह बात यहां बिल्कुल ठीक बैठती है, प्रथम तो इस कारण कि इस प्रज्ञापन में, जिसका अभिप्राय संपूर्ण हत्या का निषेध करना नहीं है बल्कि अंधाधुन्ध और अनावश्यक हत्या और हानि को रोकना है, सब कैदियों को मुक्त करने का उल्लेख नहीं माना जा सकता, बल्कि सिर्फ ऐसे कैदियों का उल्लेख माना जा सकता है जिनको कैद रखना अनुचित और अनावश्यक क्रूरता होगा। दूसरे, क्योंकि छब्बीस वर्ष में पच्चीस बार कैदियों की मुक्ति का उल्लेख है, इसलिए बहुत संभाव्यतः यह अशोक के जन्म-दिन पर कैदियों की रिहाई का निर्देश करता है, और यह भी प्रकट करता है कि उसके लेखों में निर्दिष्ट अभिषेक वर्ष उसके राज्यकाल के व्यतीत वर्षों के सूचक न होकर चालू वर्षों के सूचक हैं। (ऊपर, पृ० ११)

(६)

अनुवाद

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी ऐसा कहता है : "अपने अभिषेक के बारह वर्ष बाद मैंने लोगों के हित और सुख की वृद्धि के लिए ये धम्मलिपियां लिखवायीं, जिससे उस (आचरण) को छोड़कर (अफसर) इसे और धर्म की वृद्धि को पोषित करें।[1] (यह देखकर कि) "जनता का सुख और हित इसमें है," मैं उनकी परीक्षा करता हूं,[2] उनकी भी जो मेरे पास हैं और उनकी भी जो दूर हैं, जैसे मैं अपने संबंधियों की परीक्षा करता हूं। क्यों ? जिससे मैं (प्रजा में से) कुछ

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोगों को सुख पहुंचा सकूं और मैं इसके अनुसार ही आचरण करता हूं। इस तरह मैं सब वर्गों (के अफसरों) की परीक्षा करता हूं। मैंने सब संप्रदायों का अनेक प्रकार से आदर किया है, पर (दूसरे संप्रदाय में) स्वयं आगे बढ़ने[3] को मैं मुख्य चीज समझता हूं। यह धम्मलिपि मैंने अपने अभिषेक के छब्बीसवें वर्ष लिखवायी।

टिप्पणियां

१. पापोव के लिए, देखो JASB, १९२०, पृ० ३३६–७ में एच० के० देव। इस क्रिया का कर्त्ता निकाय है जो आगे आया है, पर यहां अध्याहृत किया जाता है। निकाय, जो शिला प्रज्ञापन १२ के अन्त में भी आता है, अफसरों की श्रेणियों का वाचक है।

२. पटिवेख धातु का अर्थ पटिवेखा से निर्धारित होता है जो स्तम्भ प्रज्ञापन ३ में आता है।

३. पचूपगमन = प्रत्युपगमन = स्वागत के लिए आगे बढ़ना। इस अंश की तुलना शिला प्रज्ञापन १२ के सारांश से करो।

(७)

अनुवाद

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी ऐसा कहता है : "प्राचीन काल में भी ऐसे राजा थे जो यह सोचते थे कि मनुष्यों में धम्म की वृद्धि कैसे हो। पर मनुष्यों में धम्म की उचित वृद्धि नहीं हुई।" इस पर देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी ऐसा कहता है : "मेरे मन में यह विचार आया : प्राचीन राजाओं की कामना थी कि प्रजा में धर्म की समुचित वृद्धि हो। पर प्रजा में धर्म की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

समुचित वृद्धि नहीं हुई । तो लोगों को धर्म के अनुकूल कैसे बनाया जाए ? लोगों में धर्म की समुचित वृद्धि कैसे हो ? मैं किस प्रकार उनमें धार्मिक वृद्धि का उत्थान कर सकता हूं ।" इस पर देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी यह कहता है : "मेरे मन में यह विचार आया कि मैं धर्म की प्रज्ञप्ति कराऊँ और लोगों को धर्म सम्बन्धी शिक्षा देने की आज्ञा दूँ जिसको सुनकर मनुष्य उसका पालन करेंगे । धर्म की उन्नति के साथ-साथ उनकी महान उन्नति होगी । इस प्रयोजन से मैंने धर्म पर कितने ही प्रज्ञापन निकलवाये और अनेक प्रकार से लोगों को धार्मिक शिक्षा दिलवायी । बहुत से लोगों पर मैंने अपने अफसर व्युष[1] नियुक्त किये हैं । वे धर्म का प्रचार और उपदेश करेंगे । लाखों आदमियों के ऊपर रज्जुक नियुक्त किये हैं । उन्हें भी यह आदेश दिया गया है : "धर्मनिष्ठ आदमियों को इस-इस तरह उपदेश करो ।"

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी इस प्रकार कहता है : "सड़कों पर मैंने बड़ के पेड़ लगवाए हैं । उनसे मनुष्यों और पशुओं को छाया मिलेगी । मैंने आम के बाग लगवाये हैं । मैंने आठ-आठ कोस[2] पर कुएँ खुदवाये हैं, और मैंने विश्राम-गृह बनवाये हैं । मैंने मनुष्यों और पशुओं के आराम के लिए स्थान-स्थान पर बहुत से आरामगाह बनवाये हैं, परन्तु यह सब प्रबन्ध कोई बड़ी बात नहीं है । ऐसे सांसारिक सुख बढ़ाने के कार्य तो मेरी तरह कितने ही पूर्ववर्ती राजाओं ने भी किये थे । मैंने यह सब काम इसलिये किया कि लोगों में भी धर्म के

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ऐसे आचरण करने की प्रवृत्ति बढ़े ।"

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी इस प्रकार कहता ह : "मैंने विविध धर्म कार्यों के लिए धर्म-महामात्र नियुक्त किये । वे साधुओं और गृहस्थियों के सब सम्प्रदायों के लिए नियुक्त किये गये हैं । मैंने यह प्रबन्ध किया है कि वे संघ के कार्य की व्यवस्था करेंगे । इसी प्रकार मैंने यह व्यवस्था की कि वे ब्राह्मण आजीविकों, निर्ग्रन्थों और विविध संप्रदायों की व्यवस्था करेंगे । अनेक महामात्र मनुष्यों की विविध श्रेणियों और बहुत से निश्चित कार्यों के लिए हैं पर मैंने धर्म-महामात्रों की नियुक्ति सिर्फ इन तथा और सब संप्रदायों के लिए की है ।"

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी इस प्रकार कहता है : "ये तथा अन्य मुख्य कर्मचारी[3] मेरे तथा रानियों के द्वारा दिये गये दान का ठीक-ठीक प्रबन्ध करते हैं, और यहां तथा जनपदों में, मेरे सारे अन्तःपुर में उन्होंने अनेक प्रकार से संतोषजनक कार्य[4] किये हैं, और मैंने यह प्रबन्ध किया है कि वे मेरे पुत्रों और अन्य देवीकुमारों द्वारा दिये हुए दान का ऐसे ढंग से वितरण करें कि धर्म की उन्नति हो और लोग धर्म का पालन करें । और इस प्रकार लोगों में धर्म की उन्नति और धर्म का पालन बढ़ेगा जिससे दया, दान, सचाई, पवित्रता, नम्रता और भलाई की वृद्धि होगी ।"

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी ऐसा कहता है : "मैंने जितने अच्छे काम किये, लोगों ने उनका अनुसरण किया और वे (भविष्य में भी) वैसा ही करेंगे । इन कामों से उनकी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उन्नति हुई और माता-पिता तथा गुरुजनों की शुश्रूषा, वृद्ध-जनों के अनुसरण और ब्राह्मणों और श्रमणों, गरीबों और दुखियों तथा दासों और नौकरों के साथ भी सद्व्यवहार बढ़ा है।"

देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी कहता है : "मनुष्यों में यह धार्मिक उन्नति दो कारणों से हुई, अर्थात् धर्म संबंधी पाबन्दियों से और (पूर्ण) निषेध[५] से और इस विषय में धर्म की पाबन्दियों का उतना महत्त्व नहीं जितना (पूर्ण) निषेध का । धर्म की पाबन्दियां वे हैं जो मैंने लागू की हैं अर्थात् इन-इन प्राणियों का वध न किया जायगा और मेरे द्वारा लागू किये गये अन्य अनेक धार्मिक नियम हैं। परन्तु (पूर्ण) निषेध द्वारा, जैसे (सब) प्राणियों की हिंसा का निषेध और जीवमात्र की अ-हत्या, से धर्म की अधिक वृद्धि हुई है। यह लेख इसलिए लिखवाया गया है जिससे मेरे पुत्र और पौत्र इन कार्यों को तब तक जारी रक्खें जब तक सूर्य और चन्द्र कायम रहें और इस प्रकार मेरा अनुसरण करें।

इस प्रकार मेरा अनुसरण करने से इस लोक और परलोक का सुख मिलना निश्चित है। यह धर्मलिपि मैंने अपने अभिषेक के २८ वर्ष बाद लिखवायी है।

इसके बारे में देवताओं का प्रिय कहता है कि यह धर्मलिपि जहां-जहां शिला-स्तम्भ या शिलाफलक हों, वहां-वहां उत्कीर्ण करायी जाए जिससे यह चिरस्थायी रहे।"

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

टिप्पणियां

१. यहां यथा के स्थान पर संभावित सही पाठ व्युठा के लिए देखिए IA, १९१२, पृष्ठ १७३।

२. अठकोसिक्यानि के लिए देखो फ्लीट का नोट, JRAS, १९०६, पृष्ठ ४० और आगे। निंसिधिया के लिए, EI, २, २७४।

३. सेनार्ट ने मुख का अर्थ बिचौदिया किया है और बूलर ने मुख्य राजकर्मचारी। एफ० डब्लू० टामस ने उन अनेक स्थानों की ओर हमारा ध्यान खींचा है जिन पर कौटिल्य अर्थशास्त्र में मुख्य शब्द आता है (JRAS १९१५, पृष्ठ ९७-९९)।

परन्तु उसने मुख्य शब्द को मुख समझ लिया है। अर्थशास्त्र से बूलर के पाठ की पुष्टि होती मालूम होती है।

४. बूलर तुठायतनानि को तुष्टयायतनानि मानता है, अर्थात् 'संतोष के जनक', 'धार्मिकता के अवसर'। क्योंकि आयतन शब्द आ + यत, यत्न करना, से बनता है, इसलिए इसका अर्थ 'प्रयत्न' अधिक ठीक है।

५. निझति के लिए स्तम्भ-प्रज्ञापन ५ के नीचे टिप्पणी ७ का अन्तिम अंश देखिए। इस संदर्भ के निर्वचन के लिए, देखो ऊपर, पृष्ठ १५१।

गौण शिलालेख

क—पृथक् कलिंग प्रज्ञापन

(१)

अनुवाद

देवों के प्रिय के आदेश से तोसली (या समापा) के महामात्रों को, जो नगर के न्याय-शासक हैं, इस प्रकार सम्बोधित किया जाए: मैं जो कुछ ठीक समझता हूं, उसे कार्य-रूप में परिणत करना चाहता हूं और उसका (उचित) साधनों से सूत्रपात करता हूं और मैं इसे, अर्थात् तुम लोगों को दी हुई आज्ञा को, अपनी अभीष्ट-सिद्धि का साधन समझता हूं। तुम

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लोगों को सहस्रों मनुष्यों के ऊपर इसलिए नियुक्त किया गया है जिससे हम सत्पुरुषों के स्नेह के पात्र हो सकें। सब मनुष्य मेरी सन्तान के समान हैं। जिस तरह मैं चाहता हूं कि मेरी सन्तान इस लोक और परलोक में सब प्रकार का सुख प्राप्त करे, ठीक उसी प्रकार मैं सब मनुष्यों के लिए मंगल और सुख की कामना करता हूं। परन्तु तुम इस बात को अच्छी तरह अनुभव नहीं करते। कोई-कोई (अफसर) अनुभव भी करता है, पर वह भी कुछ ही अंश में समझता है, सारा नहीं, इसलिए इस बात को ध्यान रखो कि आचार का नियम भी सुनिश्चित कर दिया गया है। कई बार लोगों को कैद या परेशानी आ पड़ती है। तब उन्हें अकारण कैद या मृत्यु प्राप्त होती है[1] और बहुत लोगों को घोर यातना दी जाती है। इसलिए तुम्हें तो मध्य मार्ग पर रहने की कामना करनी चाहिए। ईर्ष्या, अधैर्य, निष्ठुरता, जल्दबाजी, अकर्मण्यता और मूढ़ता जैसी प्रवृत्तियां होने पर कोई व्यक्ति शिष्ट आचरण नहीं कर सकता। इसलिए तुम्हें यह कामना करनी चाहिए कि ये प्रवृत्तियां तुम्हारी न हों। और इसका मूल उद्यम और धैर्य है। आचरण का नियम यह है कि जो परिश्रम से थक गया है उसे उठकर आगे बढ़ना चाहिए और मनुष्य को पुरुषार्थ करना, आगे बढ़ना और उन्नति करना चाहिए। तुमको आचरण के इस नियम पर विचार करना चाहिए, इसलिए (अपने आपसे) कहो तथा और कुछ मत सोचो: "देवों के प्रिय के आदेश इस प्रकार हैं। उनकी पूर्ति से बहुत लाभ है; न करने से बहुत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हानि, जो लोग इनकी पूर्ति अच्छी तरह नहीं करते, उन्हें न स्वर्ग मिल सकता है और न राजा की कृपा" इस प्रकार मुझ द्वारा निर्धारित यह कर्त्तव्य दो-गुना लाभदायक है। तुम्हारे मन में संशय क्यों होता है ? यदि तुम इसकी अच्छी तरह पूर्ति करोगे तो तुम्हें स्वर्ग मिलेगा और तुम मेरे ऋण से मुक्त हो जाओगे।

और यह लेख तिष्य नक्षत्र के दिन सबको सुनना चाहिए, और तिष्य दिनों के बीच में प्रत्येक पर्व के दिन भी सुनाना चाहिए, चाहे एक ही (अफसर) क्यों न हो। और इस प्रकार आचरण करते हुए (मेरे आदेशों को) पूरा करने का यत्न करें। यह लेख यहां इसलिए लिखवाया गया है जिससे नगर के न्याय-शासक आचार के निर्धारित नियम पर चलें और किसी नागरिक को अकारण कैद और अकारण परेशान न किया जाए और इस प्रयोजन के लिए मैं प्रति पांचवें वर्ष[२] कोमल तथा शान्त प्रकृति वाले दयालु अफसर भेजा करूंगा। मेरे ध्येय से परिचित होने के कारण वे मेरे आदेशों के अनुसार कार्य करेंगे, परन्तु उज्जैन से कुमार इन अफसरों को भेजेगा और तीन-तीन वर्ष के अनन्तर भेजा करेगा। इसी प्रकार तक्ष-शिला से भी भेजे जायेंगे। जब ये महामात्र दौरों पर जाएंगे तब अपने अन्य कार्यों के साथ-साथ, इन बातों का भी ध्यान रखेंगे और राजा के आदेशों के अनुसार कार्य करेंगे।

टिप्पणियां

१. यह प्रज्ञापन का सबसे कठिन सन्दर्भ है । अशोक का आशय

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

यह प्रतीत होता है कि जब नीचे उल्लिखित अफसरों के किसी दोष से कोई व्यक्ति कैद या परेशान होता है तब वह परेशानी अकारण ही कैद में, या कैद मृत्यु में परिवर्तित हो जाती है।

२. ऊपर पृष्ठ ६६–६७।

(२)

अनुवाद

देवों के प्रिय की आज्ञा से कुमार और महामात्रों से यह कहा जाय : मैं जो कुछ (मन में) सोचता हूं उसे कार्यरूप में परिणत करना चाहता हूं और उचित साधनों से उसका सूत्रपात करता हूं और मैं इस अभीष्ट की सिद्धि के लिए मुख्य साधन तुम लोगों को दी हुई आज्ञा को समझता हूं। सब मनुष्य मेरे सन्तान के समान हैं। जैसे मैं अपनी सन्तान के लिए यह चाहता हूं कि वह इस लोक और परलोक के मंगल और सुख से युक्त हो, ठीक वैसे ही मैं सब मनुष्यों के लिए चाहता हूं।

अगर तुम यह पूछो कि मेरी पड़ोसियों के प्रति क्या इच्छा है जिससे तुम्हें यह पता चल जाय कि अपने अविजित पड़ोसियों के बारे में राजा हमसे क्या चाहता है तो उसका उत्तर यह है : उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि वे मुझ से न डरें और वे मुझ पर विश्वास करें और उनको मुझसे सुख मिलेगा, दुःख नहीं। उन्हें यह भी समझ लेना चाहिए कि राजा यथासम्भव उन्हें क्षमा करेगा परन्तु उन्हें मेरे कहने से धर्म का अनुसरण करना चाहिए जिससे इस लोक और परलोक का लाभ हो। इस उद्देश्य से ही मैंने तुम्हें यह आज्ञा दी है। तुम्हें आज्ञा देकर और अपनी इच्छा, नहीं

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

नहीं, अटल संकल्प और प्रतिज्ञा, बताकर क्या मैं (उनके प्रति) अपने ऋण से मुक्त हो सकूँगा ? इस प्रकार ऐसा आचरण करते हुए तुम्हें अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए और उनमें विश्वास पैदा करना चाहिए जिससे वे यह समझ सकें कि राजा हमारे लिए पिता के समान है। वह हमसे वैसे ही सहानुभूति रखता है, जैसे अपने से। हम भी राजा के लिए उसके सन्तान के समान हैं। इस प्रकार तुम्हें आज्ञा देकर और अपनी इच्छा और अपना अटल संकल्प और प्रतिज्ञा जतलाकर मैं इस कार्य के लिए अपने स्थानीय मन्त्रियों की तरह [1] तुम्हारे साथ रहूंगा। तुम उनमें विश्वास पैदा कर सकते हो और उन्हें इस लोक तथा परलोक का मंगल तथा सुख प्राप्त करा सकते हो। ऐसा करने से तुम्हें स्वर्ग का लाभ होगा और तुम मेरे प्रति अपने कर्त्तव्य का पालन करोगे।

और यह लेख इस प्रयोजन से लिखवाया गया है कि जिससे महामात्र उन पड़ोसियों में विश्वास उत्पन्न करने के लिए और उनमें धर्माचरण की प्रवृत्ति लाने के लिए आचरण के निर्धारित नियमों पर दृढ़ रहें। यह प्रज्ञापन हर चौथे महीने पुष्य नक्षत्र के दिन सुनाया जाय, और बीच-बीच में भी सुनाया जाय चाहे एक ही अफसर हो। इस प्रकार कार्य करते हुए मेरे आदेशों की पूर्ति का यत्न करो।

टिप्पणियां

१. देसावुति के एक जटिल पद है और इसने विद्वानों को परेशान किया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सेनार्ट : "इस ध्येय की पूर्ति के लिए मैं तुममें ऐसे व्यक्ति रखूंगा जो चुस्ती से मेरे आदेशों का पालन करने के योग्य हों।"

बूलर : "जहां तक इस बात का सम्बन्ध है, मैं सब देशों में अधीक्षक रखूंगा"। स्पष्ट ही है कि इस प्रसंग में बूलर को (तु) फाक शब्द का ध्यान नहीं रहा। आयुक्त का अर्थ है मंत्री या अभिकर्त्ता या स्थानापन्न। अशोक का आशय यह है कि वे उसके स्थानीय प्रतिनिधि हैं जो सीमान्त निवासियों के प्रति उसके आशय के अनुसार कार्य कर सकते हैं।

गौण शिलालेख

(१)

ब्रह्मगिरि

सुवर्णगिरि से कुमार[1] और महामात्रों की ओर से इसिला के महामात्रों से उनके स्वास्थ्य का समाचार पूछा जाय और इसके बाद उनसे कहा जाय : "देवों के प्रिय की आज्ञा है कि ढाई वर्ष से कुछ अधिक हुआ जब मैं उपासक हो गया था, परन्तु मैंने अधिक उद्योग नहीं किया। एक वर्ष से अधिक हुआ जबसे मैं संघ में[2] आया हूं और तब से मैंने उद्योग किया है, परन्तु इस काल में, मैंने सारे जम्बूद्वीप में[3] जो लोग अलग थे, उन्हें देवों से मिलाया। (R.—इस बीच में देवों को, जो अलग थे, सारे जम्बूद्वीप में मनुष्यों से मिलाया गया) क्योंकि यह उद्योग का फल है। यह सिर्फ बड़ों[4] को ही नहीं प्राप्त होता है, बल्कि यदि कोई निम्न पदधारी भी उद्योग करे तो उसके लिए भी लोगों को बहुत स्वर्गीय सुख प्राप्त कराना संभव है। इस प्रयोजन से यह प्रज्ञापन कराया

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गया है, अर्थात् जिससे ऊंचे और नीचे अफसर यह उद्योग करें कि मेरे सीमान्त निवासी इसे जानें और यह उद्योग चिर-स्थायी हो और इस लक्ष्य की उन्नति होगी। इसकी अवश्य खूब उन्नति होगी और कम से कम डेढ़ गुना उन्नति होगी और यह प्रज्ञापन २५६ व्युष्ट[५] में कराया गया है"।

सहसराम

यह प्रज्ञापन २५६ व्युष्टों से कराया गया है क्योंकि २०० तथा ५६ व्यक्ति दौरे पर गये हैं (विवुथ–व्युष्ट)[५] और इसे शिलाओं पर खुदवाओ और जहां शिलास्तम्भ हैं वहां भी खुदवाओ।

रूपनाथ

इस लेख को शिलाओं पर खुदवाओ। यहां और दूर-दूर, जहां-कहीं शिलास्तम्भ हैं, वहां भी खुदवाओ और यह मौखिक आदेश लेकर तुम सब अपने अपने क्षेत्राधिकार में दौरे पर जाओ। यह प्रज्ञापन २५६ व्युष्टों से कराया गया है और यह संख्या इतने ही व्यक्तियों के दौरे पर जाने को सूचित करती है।

टिप्पणियां

१. वियेना ओर. जर. १२, ७५–७६ में बूलर ने खंडहाल जातक (जातक संख्या ५४२) के बल पर निश्चित रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि अय्यपुत्त शब्द का अर्थ राजकुमार है।

२. और अधिक स्पष्टीकरण के लिए, देखो ऊपर पृष्ठ ७७–८०।

३. ऊपर पृष्ठ १३५; IA, १९१२, पृष्ठ १७०–१। इसके साथ सहदेव-मनुष्याः अस्मिल्लोके पुरा बभूवुः—आपस्तंबीय धर्मसूत्र, पृष्ठ ७६ (बो० संस्कृत सीरीज)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

४. यहां ऊंचे और नीचे शब्दों का प्रयोग ऊंचे और नीचे अफसरों के लिए किया गया है। इस प्रज्ञापन की तुलना शिला प्रज्ञापन १० से करनी चाहिए और ऊपर टिप्पणी संख्या दो पढ़ो।

५. IA, १९०८, पृष्ठ २१; J.A., मे-जुई, १९१०; JRAS १९१३, पृष्ठ ४७७; तथा J.R.A.S १९१०, पृष्ठ १४२ और १३०८; १९११, पृष्ठ ११४४; १९१३, पृष्ठ १०५३; JA--जन०--फरवरी १९११। मेरे निर्वचन के लिए, देखो IA, १९१२, पृष्ठ १७१-३।

पुस्तक-सूची

बूलर, जी०--IA, १८९३, पृ० २०९-३०६; १८९७, पृ० ३३४। EI, जिल्द ३, पृ० १३५-४२।

शास्त्री, एच० कृष्ण--दि न्यू अशोकन एडिक्ट आफ मस्की (हैदराबाद आर्कियोलौजिकल सीरीज, नं० १)।

हुल्ट्श, ई०--ZDMG, जिल्द ७०, पृष्ठ ५३९-४१।

(२)

अनुवाद

देवताओं का प्रिय यह भी कहता है : "पिता और माता की सेवा करनी चाहिए इसी प्रकार प्राणियों पर दया करनी चाहिए। सत्य बोलना चाहिए।" धर्म के ये गुण हैं, जिन पर आचरण करना चाहिए। इसी प्रकार शिष्य को गुरु का आदर करना चाहिए और मनुष्य को अपने सम्बन्धियों से उचित व्यवहार करना चाहिए (मनुष्य के मन की) यह स्वाभाविक प्राचीन रचना[१] है और यह चिरस्थायी है। इसलिए इस पर आचरण करना चाहिए।

पड लिपिकार ने यह लिखा है।

टिप्पणी

१. ऊपर, पृष्ठ १७५।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भाब्रू लेख

अनुवाद

मगध का राजा प्रियदर्शी संघ का अभिवादन करता है और संघ की कुशलता की कामना करता है। हे भदन्तगण, आपको मालूम है कि मेरे मन में बुद्ध, धर्म और संघ के प्रति कितना मान और श्रद्धा है। वैसे तो भगवान बुद्ध ने जो कुछ कहा है, अच्छा ही है, परन्तु हे भदन्तगण, इस महान धर्म की चिरस्थायिता के लिए जो मैं उचित समझता हूं, उसकी घोषणा करना चाहता हूं। हे भदन्तगण, वे ये धर्म ग्रन्थ हैं : (१) विनय समुकसे, (२) अलियवसानि, (३) अनागतभयानि, (४) मुनि गाथा, (५) मोनेयसूते, (६) उपतिसपसिन, और (७) मिथ्या के बारे में भगवान् बुद्ध का राहुल को उपदेश[१]। हे भदन्तगण, मैं चाहता हूं कि भिक्षु और भिक्षुणियां इन ग्रंथों को लगातार सुनें और विचारें। इसी प्रकार उपासक पुरुष और स्त्रियां करें। मैंने यह लेख इसलिए लिखवाया है जिससे लोग मेरे अभिप्राय को समझें।

टिप्पणी

१. ऊपर, पृष्ठ ८७–८९; JRAS १८८९, पृष्ठ ६३९; १९०१, पृष्ठ ३११, ५७७; १९११, पृष्ठ १११३; १९१३, पृष्ठ ३८५; १९१५, पृष्ठ ८०५; IA, १८९१, पृष्ठ १६५; १९१२, पृष्ठ ३७; १९१९; पृष्ठ ८; JA, मे-जुई १८९६। मैक्सवालेसर, डास एडिक्ट वौन भाब्रा (मेटिरिलियेन जुरकुण्ड डेस बुद्धिस्मास; ई. ल्यूमेन डास भाब्रा एडिक्ट डेस कोनिग्स अशोक (जेइट. इन्डोल, ईरान, अक्तूबर २, १९२३, पृष्ठ ३१६ और आगे)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

गौण स्तम्भ लेख

रुम्मिन्देइ (पदेरिया लेख)

अनुवाद

अपने अभिषेक के वीस वर्ष बाद देवताओं का प्रिय राजा प्रियदर्शी स्वयं यहां आया और उसने अर्चना[1] की। क्योंकि यहां शाक्य मुनि बुद्ध का जन्म हुआ था, इसलिए उसने वहां एक बहुत ही बड़ी पत्थर की दीवार[2] बनवाई और एक स्तम्भ स्थापित कराया। क्योंकि यहां भगवान का जन्म हुआ था, इसलिए लुम्मिनी गांव के धार्मिक कर माफ कर दिये गये और मालगुजारी[3] के रूप में वह सिर्फ आठवां हिस्सा देगा।

टिप्पणियां

१. ऊपर, पृष्ठ ७६।

२. पहले विद्वानों ने सिलाविगडभीचा को बड़े विचित्र शब्दों में विभाजित किया था, पर सबसे पहले सर रामकृष्ण भण्डारकर ने यह सिद्ध किया कि यह वस्तुतः एक पद है जिसका अर्थ है पत्थर की बनी हुई बाढ़ या रेलिंग।

JB BRAS, जिल्द दस, पृष्ठ ३६६, टिप्पणी १४) फ्लीट बहुत अंश तक उनसे सहमत है (JRAS १९०८, पृष्ठ ४७६–७ और पृष्ठ ८२३) में स्वयं इन अक्षरों को सिला-विगड़-भीचा (शिला-विकट भित्तानि) का निरूपक मानता हूं, जिसका अर्थ है बड़ी-बड़ी पत्थर की दीवारें, जैसी एक दीवार वासुदेव संकर्षण के सम्मान में नगरी में बनाई गई थी। (MASI, नं० ४, पृष्ठ १२९। पूर्ववर्त्ती व्याख्याओं के लिए, देखो EI, जिल्द ५, पृष्ठ ५; S.B. Pr.A.W १९०३, पृष्ठ ७२४; IA, १९०५, पृष्ठ १; १९१४, पृष्ठ १९–२०)।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

३. पहले पहल एफ० डब्लू० टामस ने 'बलि' का ठीक-ठीक अर्थ 'धार्मिक कर' लगाया था (JRAS, १९०९, पृष्ठ ४६६–७) उसके 'अठभागीय' के सही निर्वचन के लिए, देखो JRAS, १९१४, पृष्ठ ३९१–२ ।

पुस्तक सूची

बूलर, जी--EI, जिल्द ५, पृ० ४ और गये ।

स्मिथ, वी० ए०–IA, १९०५, पृष्ठ १ और आगे; तथा तराई, नैपाल, की प्राचीन वस्तुओं पर मुखर्जी की रिपोर्ट, कलकत्ता, १९०१, की भूमिका ।

फ्लीट, जे० एफ़०--JRAS, १९०८, पृष्ठ ४७१ और आगे ।

कारपेन्टियर, जे०–IA, १९१४, पृष्ठ १७ और आगे ।

निगलीव लेख

अनुवाद

देवताओं के राजा प्रियदर्शी ने अपने अभिषेक के चौदह वर्ष बाद बुद्ध कोनाकमन के स्तूप को दूसरी बार बड़ा करवाया और अपने अभिषेक के (बीस) वर्ष बाद वह स्वयं इस स्थान पर आया, उसने पूजा की और (एक शिला स्तम्भ) बनवाया ।

सारनाथ स्तम्भ का लेख

अनुवाद

देवताओं के प्रिय राजा प्रियदर्शी की आज्ञा है :

·····पाटलिपुत्र····संघ में कोई फूट न डाले पर जो कोई संघ में फूट डाले, चाहे वह भिक्षु हो या भिक्षुणी, उसे श्वेत वस्त्र पहना दिये जायं और ऐसी जगह रहने के लिए बाधित किया जाय जो (भिक्षुओं का) निवास-स्थान[1] नहीं है। यह आदेश

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

भिक्षुओं और भिक्षुणियों के संघों को सुना दिया जाय।

देवताओं का प्रिय इस प्रकार कहता है : "ऐसा एक लेख सभा-भवन में रख दिया जाए जिससे तुम उसे देख सको[2] और एक प्रति ऐसी जगह रखो जहां उपासक पहुंच सकें, और उपासक प्रत्येक उपवास के दिन आयें और उस आदेश को पढ़ें। और उपवासों के दिन, जब महामात्र बारी-बारी से अपने मुख्यालय पर आएं, तब उन्हें इस आदेश को पढ़ना और समझना चाहिए और जहां तक तुम्हारा अधिकार क्षेत्र[3] है, तुम्हें वहां तक, यह आदेश लेकर दौरा करना चाहिए। इसी प्रकार सब किलों में और जिला नगरों[4] में तुम्हें अन्य कर्म-चारियों को यह आदेश देकर दौरे पर भेजना चाहिए।"

टिप्पणियां

१. बौद्ध भिक्षुक का वेश पीले रंग का होता है और जब उसे श्वेत वस्त्र दिये जाते हैं तो इसका यह अर्थ है कि उसे संघ से बाहर कर दिया जाता है। (ओल्डनबर्ग का विनयपिटक, जिल्द ३, पृष्ठ ३१२, पंक्ति १८; तथा JASB, १९०८, पृष्ठ ७–१०)। अनावासे के विषय में, बुद्धघोष की व्याख्या SBE, १७, पृष्ठ ३८८, टिप्पणी १ देखिए।

२. राजा निश्चय ही महामात्रों को सम्बोधित कर रहा है, भिक्षुओं को नहीं, जैसा कि कुछ विद्वानों ने समझ लिया है। 'संसरण' का शब्दार्थ है 'राजमार्ग,' 'मिलन', इत्यादि और बहुत संभाव्यतः यहां यह शब्द जिला कचहरी का वाचक है जो राजमार्ग पर भी होती है और मिलने का आम स्थान भी होती है। एफ० डब्लू० टामस ने चुल्लवग्ग में इस शब्द का जो निर्देश बताया है (JRAS, १९१५, पृष्ठ १०९–१११) वह कचहरी के भवन के प्रामाणिक रूप का वाचक भी हो सकता है।

३. आहार शब्द का अर्थ है जिला, और इस अर्थ में इसका पुराने

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

लेखों में बहुत जगह प्रयोग मिलता है। विवासयाथ और इस संदर्भ के साधारण निर्वचन के लिए देखो, IA, १९१२, पृष्ठ १७२।

४. प्रत्येक ज़िले (आहार) में एक से अधिक ताल्लुके (विषय) होते हैं। प्रत्येक ताल्लुके का मुख्य नगर किले की तरह होता होगा, EI, ८, १७१।

पुस्तक सूची

वोजेल, जे० पी एच०-- EI, जिल्द ८, पृष्ठ १६६ और आगे।

वेनिस, आर्थर-----JASB, १९०७, पृष्ठ १ और आगे।

सेनार्ट, ई०--कौंप्तेस रेंदुस द लाकादमी इन्स्क्रिप्स्यों, १९०७, पृष्ठ २५।

बौयर--JA, जिल्द १०, (१९०७), पृष्ठ ११९।

सांची का स्तम्भ लेख

[इस लेख की अनुलिपि (Facsimile) EI, २ में पृष्ठ ३६९ के सामने वाली प्लेट में देखी जा सकती है। इसके साथ बूलर का एक लिप्यन्तर (Transcript) भी है जिसे प्रोफेसर हुल्ट्श ने पुरातत्व विभाग द्वारा प्रस्तुत सामग्री की सहायता से हाल में ही बहुत शुद्ध कर दिया है। उसका संशोधित पाठ JRAS, १९११, पृष्ठ १६७–९ में विद्यमान है।]

अनुवाद

भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए एक मार्ग निर्धारित कर दिया गया है। जब तक सूर्य और चन्द्रमा प्रकाशमान हैं, तब तक मेरे पुत्र और पौत्र बने रहें, जिससे जो कोई संघ को तोड़े, चाहे वह भिक्षु हो या भिक्षुणी, उसे सफेद कपड़े पहनाकर संघ से बाहर कर दिया जाय क्योंकि मेरी यह कामना है कि संघ अपने मार्ग पर चलता हुआ चिरस्थायी हो।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

इलाहाबाद स्तम्भ का लेख

(इसमें भी संघ में फूट डालने का दंड बताया गया है और यह पिछले दो का प्रतिरूप है। इस लेख का बहुत कम हिस्सा संरक्षित है और इससे जो एकमात्र नया तथ्य प्रकट हुआ है वह यह है कि इसमें अशोक का कौशाम्बी के महामात्रों के नाम एक आदेश है जिससे स्पष्ट प्रकट होता है कि यह स्तम्भ शुरू में कहां लगाया गया था।)

ख—रानी का प्रज्ञापन

अनुवाद

देवताओं के प्रिय के आदेश से सब जगह के महामात्रों से कहा जाय कि मेरी द्वितीय रानी जो भी दान करे, चाहे वह आम्र उद्यान हो, फलोद्यान हो, भिक्षुक घर हो, या जो कुछ भी उस रानी का दान हो, वह सारा तीवर की माता द्वितीय रानी कारुवाकी का ही समझा जाय।[1]

टिप्पणी

१. अपनी द्वितीय रानी के दान की इस तरह सूचना देकर अशोक स्पष्ट रूप से राज्य परिवार के अन्य सदस्यों के अनुकरण के लिए एक आदर्श पेश कर रहा है। देखो ऊपर, पृष्ठ १४७ और आगे।

पुस्तक सूची

बूलर, जी.—IA, जिल्द १९, पृष्ठ १२४–१२६।
हुल्ट्श, ई.—JRAS, १९२१, पृष्ठ १११३—४।

बराबर पर्वत के गुफा लेख

अनुवाद

क—यह गुफा राजा प्रियदर्शी ने अपने अभिषेक के बारह वर्ष पश्चात् आजीविकों को दान दी।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

ख––खलतिक पहाड़ की यह गुफा उसने अपने अभिषेक के बारह वर्ष पश्चात् आजीविकों को दी।

ग––राजा प्रियदर्शी ने अपने अभिषेक के उन्नीस वर्ष बाद ख(लतिक पहाड़) में –––।

पुस्तक सूची

बूलर, जी०––IA जिल्द २०, पृष्ठ ३६४।

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

राजकीय संग्रहालय पुस्तकालय, लखनऊ
विभाग G
पुस्तक क्रम संख्या 192
State Museum Library, Lucknow

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

provision of no more than Rs. 1125 crores was made in the State sector. Out of this, Rs. 825 crores has been assumed as internal generation from depreciation and retained profits — this is really pathetic planning when the latest estimates of the cumulative losses of the STUs is in the region of over Rs. 1000 crores!

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh

What is even more ironical is that the STUs, which have a social service objective, are also subject to the high incidence of taxation. According to a study of STU performance, out of the gross operating margin of just 5.7% of the total revenue, a taxation element of 18% and interest obligation of 5% remain to be met. It would be futile, under such circumstances, to expect any business to generate resources internally for funding replacement let alone growth.

It is paradoxical that while concessions are being confe... today by way of reduced import levies and excise du...

Unified integrated polic...

I would hasten to ad...

...n accused of war crimes

...Times against their wills and massacred ... West Africa from 1942-45 and ... Secretary for Air in 1945.

...ave to their

...descendant of ...t, educated at ...ught up in Bri... ...y accused Mr ...ng thousands of ...be repatriated ...the end of the

...claims to have ...ce of Mr Mac... ...ity of ordering ...housands of ...en ...red to the

...er ...cked into ... Yugoslavia

...and Home Guards and Ustashi.

Tito's Communist partisans regarded many of them as German collaborators and all of them as sworn enemies opposed to their plan for a Communist state.

Count Tolstoy says that at the time Mr Macmilian was a young Minister resident outside Naples, in charge of repatriations. He claims that when the Foreign Office heard of the repatriations they said it had been a "ghastly mistake" and disposed of relevant documents.

Mr Macmillan served as Minister Resident at Allied HQ in North-...

...public policy with which ... concerned.

They reason that since he chose to take no action against Count Tolstoy over his Cossack allegations, it is unlikely that he will act over his latest charge.

(By arrangement with The Daily Telegraph, London).

Mr Ram Naresh Yadav, all India organising secretary of Lok Dal said on Wednesday that his party and Congress-J would jointly contest elections to the block Samitis and Zila Parishads in the State.

Road Transport Industry: excessive taxation/levies and la... co-ordinated policies

...at is needed is higher allocation of resources; ...investment; lower taxation and levies; adequate credit ... Transport Undertakings and private operators.

During last year, when the commercial vehicle industry had taken massive strides for increasing productive capacity with large capital investments, the banking system, virtually stopped availability of credit to small and medium size truck operators, who are almost solely dependent on credit from commercial banks. Even though credit relaxations were announced subsequently, there are still several vexatious problems faced by the indigent customers in securing loans, such as the maximum limit of loans; the criteria for concessional credit etc., — all of which have impeded the smooth flow of funds.

Severe funds constraint inhibit State Transport Undertakings from meeting demand for passenger transport

The problems faced by the State Transport Undertakings (STUs) have been no less unfortunate. It is well known that it is not the lack of demand for public transportation that has contributed to the reduction in purchase by the Transport Undertakings. The demand has been depressed due to lack of adequate financial outlays for this sector. Having taken the step of nationalising passenger transport, almost completely, it is imperative that the perspective plan for passenger transportation should consider provision of...

...the effects of increased inf... Government action, be it in... increase in administered pr...

Concessional assistance t... alternate source of financ...

Thirdly, in addition to ... commercial banking syste... more positive assistance t... provide an alternate financ... Currently, the hire purcha... cash credits and public de... sources of funding and the... provide a reasonable sourc... operator. Keeping the end... companies need to be ass... of finance.

The credit requirement... receiving attention at the ... We hope that through fo... body, their capital require...

It is my earnest view th... industry and the banking... policy that will not on...

CC-0. Agamnigam Digital Presevation Foundation, Chandigarh